आधुनिक भारतीय इतिहास

एक प्रगत अध्ययन

भाग 3

(1920-1947)

जी० एस० छाबड़ा

अनुवादक

एस० डी० द्विवेदी



स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्राइवेट लि०

नई दिल्ली □ बंगलौर □ जालंधर

वितरक
स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्राइवेट लि०
□ एल 10, ग्रीन पार्क एक्सटेंशन, नई दिल्ली 110016
□ 24 रेसकोर्स रोड, माधव नगर, बंगलौर 560001

एस० के० घई, मनेजिंग डाइरेक्टर, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्राइवेट लि०, एल 10, ग्रीन पार्क एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित एवं न्यू इंडिया प्रिंटिंग प्रेस, खुरजा 203131 द्वारा मुद्रित।

मेरी पत्नी

राज

को समर्पित

द्वितीय सस्करण की भूमिका

प्रथम सस्करण के निकलने के उपरान्त, यह सस्करण जब छपने के लिये प्रेषित किया जा रहा है उस समय तक दृष्टि म आने वाली नई खोजो से पर्याप्त रूप मे पूरित करते हुये इसे एक नवीन रूप प्रदान किया गया है। वतमान अध्यायो को बढाने एव सुधारने के साथ ही इसम कुछ नये अध्याय भी जोडे गये हैं। लेखक इस बात के लिये आश्वस्त है कि भारत के इतिहास के लिये पाठक इस ग्रन्थ म तत्कालीन शोधो का समावेश भी पायेंगे।

जी० एस० छाबड़ा

प्रथम सस्करण की भूमिका

राष्ट्रीय स्वाधीनता हेतु गन्तव्य की प्राप्ति के लिये मध्य श्रेणी ने जो आदोलन प्रारभ किया, वही बाद म ब्रिटिशो के विरुद्ध शक्तिशाली जन-आदोलन के रूप म बदल गया। एसा गाधी के राजनीति म प्रवश काल से 20वी सदी के दूसरे दशक से घटित होना प्रारभ हुआ जिन्होने इस आदोलन को अहिंसा और असहयोग का जादुई स्वरूप प्रदान किया। गाधी को अपने उद्देश्य पूर्ति म सदा सफलता नही मिली वे प्राय असफल भी हुये और महान भूलें करते रहे। भारत के कुछ आलोचको ने उन्हे साधारण मानव स्वभाव से दूर एक 'अस्पष्ट रहस्यवादी' की सज्ञा दी। उनके ऊपर यह भी आरोप लगाया गया कि उन्होने भारत को आजादी की ओर जाने म शीघ्रता लाने के स्थान पर देर ही लगाई। फिर भी 1920 से 1947 के मध्य का यह काल, जिसका विवरण यह पुस्तक प्रस्तुत करती है गाधी युग के नाम से जाना जाता है क्योकि इस काल मे भारतीय दृष्टिपटल पर वे न छाये ही रहे बल्कि उन्होने देश के भाग्य का निर्देशन भी किया। इस काल मे भारत की राजनैतिक मांगे बढती ही रही। 1935 के सवैधानिक सुधारो तथा भारतीय समस्या के समाधान हेतु नियुक्त मिशनो और समितियो ने जो रिपोट दी उसके बाद अतत 1947 मे ब्रिटिशो ने भारत छोडा और इस तरह भारत ने विश्व के स्वाधीन सप्रभु राष्ट्रो की बिरादरी म स्थान प्राप्त किया। यह सब और बहुत कुछ इस पुस्तक का वर्ण्य विषय है।

जी० एस० छाबडा

विषय सूची

1

विस्काउण्ट चेम्सफोर्ड

(1916-1921)

असहयोग

1920 से भारतीय राष्ट्रीय आदोलन के इतिहास मे एक नवयुग का सूत्रपात होता है। इसी वप गाधी जी ने भारतीय राजनैतिक क्षेत्र मे प्रवेश किया, जिन्होंने अपने नवीन प्रयोगा के माध्यम से अत्यधिक दवाव और कठिनाई की स्थिति उत्पन्न कर देश को 1947 म स्वतत्र कराया। देश मे उनके असहयोग की चर्चा करने मे पूव उनके अन्य अनुभवा की सक्षिप्त पूवगाथा यहा शिक्षाप्रद होगी।

दक्षिणी अफ्रीका मे उन्हाने अपने सत्याग्रह अस्त्र का प्रथम प्रयोग ट्रासवाल के एशिया विरोधी कानून के विरुद्ध किया जिसम उन्हे सफलता भी मिली और प्रसिद्धि भी। गोपाल कृष्ण गोखले उनसे प्रभावित हुए और उन्होन गाधी जी को अपनी सहानुभूति और समथन प्रदान किया। 1914 मे गाँधी जी जब भारत वापस लौट तो उन्होने गोखले की 'भारत सेवक समाज' नामक सस्था की सदस्यता ग्रहण की। इससे यह सिद्ध है कि गाधी जी भारतीय राजनीति मे उदारवादी विचारधारा के समथक थे। उस समय गाधी ने अपने को ब्रिटिश साम्राज्य का स्वामिभक्त नागरिक स्वीकार किया। तत्कालीन प्रथम विश्व युद्ध मे उन्होंने भारत सरकार के ऐम्बुलन्स कोर मे अपनी सेवायें अर्पित की और सैनिको की भर्ती मे भी काफी सहयोग किया। इस सबसे उपकृत हो ब्रिटिश अधिकारियो ने उन्हे 'कैसरे हिन्द' की उपाधि प्रदान की।

1919 म रौलट बिल के विरुद्ध सत्याग्रह का प्रयोग करने से पूव उन्हान इस अस्त्र का प्रयोग भारत म कई अवसरा पर किया और इसको तकनीकी दृष्टि से सही किया। इस देश मे उन्हाने अहमदाबाद के निकट साबरमती नदी के किनारे एक सत्याग्रह आश्रम स्थापित किया। बिहार के चम्पारन जिले मे किसाना की स्थिति की जानकारी के लिए उनकी यात्रा जहा पर यूरोपीय मालिका के अधीन शोपित नील की खेती करने वाल कृपका की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ सभवत उनके सत्याग्रह का सवमे प्रथम व महत्वपूण प्रयोग था।

कमिश्नर के उस आदेश की कि वे जिला तुरन्त छोड दें, उन्होने अवहेलना की और उन्हे मजिस्ट्रेट की अदालत म पेश होना पडा। वे अपनी कार्यवाही की सजा भुगतने को तैयार थे पर बिहार के लेफ्टीनेन्ट गवनर न हस्तक्षेप करके उन्हे सूचनायें प्राप्त करने की छूट प्रदान की जिसके फलस्वरूप प्रान्तीय विधायिका ने 'अग्रेरियन बिल' पारित किया और इसके अतगत किसानो की बहुत सी कठिनाइया दूर हो गई। गाधी की यह सफलता जहा एक ओर उनम सत्याग्रह की सफलता के प्रति आश्वस्तता का कारण बनी, वही दूसरी ओर तमाम महत्वपूर्ण भारतीय नताओ ने इस सफलता के लिए उनकी प्रशसा भी की जिससे उनके इस नवीन अस्त्र का लोहा मानने का रास्ता साफ हो गया।

पर सत्याग्रह के इस प्रारम्भिक प्रयोग ने गाधी को ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति असहयोगी नही बनाया। वे व्यवस्था की कुछ निश्चित बुराइयो के विरुद्ध सघषरत थे और उनका उद्देश्य देश की व्यवस्था को समाप्त करना नही था। सरकार के साथ सहयोग की उनकी प्रवत्ति का परिचय उनके ब्रिटिशो के प्रति ईमानदारीपूण सोद्देश्यता से स्पष्ट होता है जिसके कारण 1919 के सुधारो को उन्होने अखिल भारतीय काग्रेस से स्वीकृति प्रदान कराई। नवम्बर 1918 मे उदारवादियो न इस दल का छोडकर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के नेतृत्व म नेशनल लिबरल फेडरेशन' नामक एक दल बना लिया। दूसरी ओर 1919 की अमृतसर काग्रस भी इन सुधारो को स्वीकार करने को तैयार नही थी। तिलक ने इन सुधारो को 'असतोषजनक और निराशापूण —सूर्यहीन उषा' का विशेषण प्रदान किया और श्रीमती बेसण्ट ने इस "इगलण्ड द्वारा न देने के तथा भारत द्वारा इसे न स्वीकार करने के योग्य' बताया। गाधी के प्रयासो के फलस्वरूप ही काग्रेस ने नवीन सविधान को आजमाना ही स्वीकार नही किया बल्कि ई० एस० माटेग्यु को इस सुधार ऐक्ट के सम्बन्ध म किये गये परिश्रम पर धन्यवाद ज्ञापन भी किया।

पर शीघ्र ही स्थिति म परिवतन हुआ और वह व्यक्ति जो सरकार का विश्वस्त सहयोगी था वह उसका कटु असहयोगी हो गया और उसने सत्याग्रह के तेज हथियार का प्रयोग उसक विरुद्ध किया जिसके फलस्वरूप देश म क्रान्ति हो गई। गाधी ने अपने यग इडिया म ब्रूम्सफील्ड के समक्ष जिसन उनके विरुद्ध राजद्रोह का मुकदमा देखा इस तरह के परिवतन का कारण स्पष्ट किया। उन्होने बताया कि पहली कष्टप्रद घटना मेरे समक्ष रौलट ऐक्ट के रूप म आई जिसने जनता की स्वतन्त्रता का अपहरण कर लिया। पुन जलियावाला बाग की नरमेध की घटना स पजाब म आतक का प्रारम्भ हुआ और इसकी पराकाष्ठा रेगने के आदेश लोगो को कोडे लगाने और अन्य

अपमानजनक कार्यों से हुई। मैंने यह भी पाया कि प्रधानमत्री द्वारा दी गई तुर्की के प्रतिष्ठा के प्रति भारतीय मुसलमानो और उनके इस्लाम सवधी पवित्र धार्मिक स्थलो के प्रति दिये गये आश्वासन भी पूरे नही किये गये।" यहा यह शिक्षाप्रद होगा कि हम उपरोक्त घटनाओ की सक्षिप्त व्याख्या करें जिसने गाधी को असहयोगी बना दिया।

स्वामिभक्ति से विद्रोह की ओर

प्यारे मोहन के अनुसार, "इगलड की आजादी के समय भारत ने दौडकर उसकी विश्वस्तता एव स्वामिभक्तिपूर्वक सहायता की। विवाद की आवाज को दबा दिया गया और जनता की कठिनाइयो को एक ओर कर दिया गया।"[1] अथवा जैसा कि लाड हार्डिज ने कहा कि भारत ने 'गोरा के लिए अपना खून बहा दिया" और धन और जन से उनकी पूरी सहायता की। और इस क्षेत्र पर और प्रातो से अधिक पजाब ने उनके लिए किया।

ब्रिटिश साम्राज्य के लिये युद्ध करने हेतु 10 लाख भारतीय समुद्र पार भेजे गये जिस पर 31 मार्च 1919 तक इस युद्ध का व्यय का भाग भारतीयो के हिस्से मे 1278 लाख पौण्ड आया। युद्ध मे भेजे गये भारतीय सनिको मे 60% पजाबी थे और व्यय हुए धन मे भी पजाब ने धनी प्रातो से होड लेते हुए धन की अदायगी की। पजाब मे भर्ती बढाने के लिए हर प्रयास किया गया। 1914 के अतिम 4 महीनो मे जब 21 हजार लडाकू सैनिको की भर्ती के लिए गृह सरकार से आदेश मिला तो 28 हजार सनिको की भर्ती की गई जिनमे से 14 हजार केवल पजाब के थे। इसके अतिरिक्त 3 हजार नपाल, 3 हजार सीमा व सीमापार से और 8 हजार शेष भारत से थ।

1915 मे 93 हजार सैनिक भर्ती किये गये जिसमे य 46 हजार पजाब 14 हजार नेपाल 6 हजार पठान क्षेत्र से तथा 28 हजार शेष भारत से थे। युद्ध के प्रथम दो तथा एक तिहाई वर्षों म लगभग सवा लाख पजाबियो को अति प्रतिष्ठा प्रदान की, वे "लडने वाला मे श्रेष्ठ जाति के हो गय"[2] और उनकी सख्या युद्धकाल बढने के साथ ही बढती गई।

"युद्ध की घोषणा के बाद पजाब की विधायिका ने अपनी प्रथम बैठक म एक स्वर से प्रात के लोगो की ओर से सम्राट के प्रति भक्ति की घोषणा की और सम्राट के प्रति सेवा का निश्चय दुहराया। यह सेवा सम्राट के साम्राज्य के शत्रुओ के विरुद्ध समर्पित की गई। इस विधानसभा मे मुसलमान, हिन्दू और

1 मोहन प्यारे एन एकाउ ट आफ द पजाब डिस्आडर्स एण्ड वर्किंग आफ मार्शल ला प 121।

2 ओडायर सर एम० इडिया ऐज आई नो इट प 216 222।

सिख वग के चुने हुये और नामित सदस्य सम्मिलित थे। इस प्रस्ताव न पूरे प्रात के लोगो की स्वामिभक्तिपूण भावना का परिचय दिया।"[1]

युद्ध म लाहौर की तुलना म अमृतसर न अधिक बलिदान किया। इसका इतना प्रभाव था कि कसूर मे एक भाषण म, सर एम० ओडायर ने, जो पजाब का लेफ्टीनेन्ट गवनर था यह घोषणा की कि युद्ध म उसकी सेवाओ के आधार पर वह अपनी सरकार का केन्द्र लाहौर से हटाकर अमृतसर करेगा। यह पजाबियो के लिए इनाम होगा और लाहौर वालो के लिए एक दड जिन्होने सेना म भर्ती मे सरकार का बडा असहयोग किया।

पर शीघ्र ही स्थिति म परिवतन हुआ। पजाब 1919 आते-आते स्वामिभक्ति से विद्रोह के क्षेत्र म बदल गया और अमृतसर का वह नगर जिस पर सर डायर को इतना घमड था वही पहला विद्रोह स्थल सिद्ध हुआ। पजाब म इन विद्रोहो के कई आधार बताय जाने लगे जिनम से कुछ का समथन सर डायर स्वय करते थे।

प्रारम्भ मे तो यह विश्वास किया जाता था कि भारत म ब्रिटिश राज्य को गिराने का एक बहुत बडा षडयन्त्र चल रहा है तथा भारतीय सेना को फुसलाने की चेष्टा हो रही है। यह सोचा जा रहा था कि इस षडयन्त्र के लिय बाल्शेविक रूस धन दे रहा है और इसकी शाखायें पूर देश म फैल चुकी है। पजाब चकि विजेताओ का प्रात है इस कारण षडयन्त्र यहा पर अधिक तीव्र है। पर चूकि बाल्शेविक सिद्धात के लिये कोई प्रमाण नही मिल पाये इसलिए यह बात जहा की तहा धरी की धरी रह गई।

इसके बाद यह कहा जाने लगा कि अफगानी तत्वो का हाथ है पर प्रमाणो के अभाव मे यह सिद्धात भी आगे नही बढ पाया। इसके बाद गाधी पर आरोप लगाया गया कि वे ही मुख्य षडयन्त्रकर्ता हैं जो अपराधपूण ढग से सरकार को आतकित करना चाहते है जिससे सरकार रौलट ऐक्ट वापस ले ले। पजाब के लेफ्टीनेन्ट गवनर ने गाधी के पजाब प्रवेश पर प्रतिबध लगा दिया। उसे उसके एक हिन्दू मित्र ने सूचित किया था कि, गाधी यह कहते हुय सुन गये है कि ब्रिटिश अपने विजय के नशे म चूर हैं और अपने को विश्व का नियता समझने लगे हैं पर उनके पास एक ऐसा अस्त्र है जो उन्हें घुटने टकने के लिये बाध्य करेगा। सच म उनका वह अस्त्र सत्याग्रह का था।'[2] पर यह सिद्धात भी सफल नही हुआ।

उसके बाद स्थानीय रूप से विरोध करने वालो को षडयन्त्रकारी बताया गया जिसका नाय प्रान्तीय स्तर का नही था पर जिनकी कायवाहिया प्रान्तीय

1 वही प 253।
2 वही प 363।

स्वरूप ग्रहण कर रही थी। एसे लोगो मे नाम था—लाला हरकिशनलाल लाला दूनीचन्द डॉ० किचलू, डॉ० सत्यपाल, मि० लाभसिंह और दीवान मगल सेन। पर यह मत भी इसलिये जोर नही पकड पाया क्याकि लाड हटर की समिति की छानबीन से यह बात गलत सिद्ध हो चुकी थी। और इन सब बातो के परिणामस्वरूप नैराश्य म षडयत्र की बात को ही पूणतया गलत मान लिया गया।

पर सव स्वीकृत मत यह था जिसे 14 अप्रल 1919 के प्रस्ताव के द्वारा भारत सरकार ने भी समथन प्रदान किया कि रौलट ऐक्ट के विरुद्ध कायवाहिया ही इन विद्रोहो की जड मे हैं। पर सही कारण यह था कि उस समय पूरा वातावरण ही विस्फोटक था और रौलट ऐक्ट के प्रति विद्रोह ने इस म आग म घी की तरह काम किया। इसके अतिरिक्त भी कई विध्वसकारी शक्तिया कायरत थी।

पजाब से भारतीय सेना के लिए अत्यधिक भर्ती की गई थी। जैसा कि हमने देखा है कि पजाब ने पूरे देश मे भर्ती की गई सेना का 60% अपन यहा स योगदान किया। इसका अथ यह है कि यदि इसकी 1911 के जनगणना के अनुसार पजाब की 2 करोड जनसख्या न (देश की पूरी जनसख्या का 1/15वाँ भाग) युद्ध के लिए ब्रिटिशो के पक्ष मे लडने हेतु अपने यहाँ से 4,60,000 उत्तम लोगो को सेना मे भर्ती करा दिया। सेक्रेट्री आफ स्टेट ने स्वय स्वीकार किया कि, "बहुत से परिवारा मे कोई रोटी कमाने वाला या एक भी रोटी कमान वाला नही रहा।" पजाबिया ने किसी राष्टीय उद्देश्य के लिए लडाई नही की। दासता के बधन और मजबूत कर दिये गये और 7 अप्रैल 1919 को सर ओडायर ने यह स्वीकार किया कि 'इसके कारण मुल्तान क्षेत्र तथा शाहपुर मे कई जगहा पर गभीर विद्राह और व्यवस्था समाप्त करने वाले झगडे हुए हैं।"[1]

पजाब म भर्ती की विधि, जो क्रूर सर ओडायर के शासन न अपनाई वह भी एतराज के लायक थी। सर ओडायर न पजाब के प्रत्येक जिले के लिए सेना म भर्ती की एक निश्चित सख्या निर्धारित कर दी जिसके आधार पर जिलाधिकारिया को विशेष योग्यता प्रदान की गई। जो अधिकारी जितन ही अधिक सैनिक भर्ती कराता उसकी उतनी ही उन्नति हो जाती थी। जिन गावा से कम सैनिक भर्ती होते वहा के नागरिका को झूठे पुलिस केसा म फसा दिया जाता था। इस तरह पजाब के भर्ती के सैनिक पारितोषिक और प्रतिष्ठा अजन हेतु क्रय व विक्रय की वस्तु हो गये और इस तरह इस क्षेत्र म विस्तृत व्यापार प्रारम्भ हुआ। जो लाग स्वतत्रता प्रेमी व राष्ट्रवादी थ उन्होंने य चीजें

1 वही पृ० 365।

पसन्द नही थी।

भारत म युरोपीय अलौकिक शक्ति वाल माने जात थे। पर भारतीय सनिको न युरोप म उन्ह लगडे अधे और भिखारी के रूप म भी देखा तो उनका भ्रामक भाव समाप्त हुआ। बहुत स भारतीय सैनिको को फ्रास के पुरुषो और स्त्रियो ने जान बचान वाले सैनिको के रूप म पाया था। पर जब व अपने देश वापस आय तो उन्होंने उसी तरह के पुराने घमडी और दभी साहब के सामने अपने को पाया।

युद्ध ऋण एकत्रित करने म अति क्रूरता का प्रदशन किया गया। जिलो के राजस्व अधिकारियो न इसकी वसूली के लिए गावो पर बडा दबाव डाला। बस अधिकारी अपने सहायको को इस धन वसूली के लिए बाध्य नही करते थे तो भी उनका परामशमात्र ही उनकी निगाहो म उन्ह ऊँचा बनाय रखने के लिए उन्हे जबरदस्ती धन वसूली के लिय बाध्य करता था और पुन अपढ आदमी सरकार द्वारा ऋण प्राप्ति की बात को समझ नही पाता था। उसके लिए यह तथाकथित सरकार का दिवालियापन था जो जनसाधारण व्यक्ति से भी ऋण माग रही थी।

इसके अतिरिक्त आर्थिक कारण थे। वस्तुओ के दाम बढ रहे थे। 1912 म जो गेहूँ एक रुपये का 12 सेर 4 छटाक के भाव स बिक रहा था उसका भाव 1919 मे 5 सेर 9 छटाक का हो गया। मकई का भाव 1912 म 16 सेर 3 छटाक का था जो 1919 म 6 सेर 6 छटाक का हो गया। वस्तुओ के भावो के शत प्रतिशत बढने की तुलना म मजदूरी म केवल 50% की वृद्धि हुई।

इसके अतिरिक्त सेना म नागरिको की अत्यधिक भर्ती ने काम करने वालो की सख्या म कमी कर दी जिससे प्रति एकड उपज मे कमी आ गई। बाहर से मगाई जाने वाली वस्तुयें महगी हो गइ। इन्फ्लूएन्जा फल गया। मानसून ने सहायता नही की और सच्चाई तो यह थी कि रेलवे कमचारी हडताल करने ही वाले थे कि अशाति का बोलबाला हो गया। बेकन न ठीक ही लिखा था कि "रोटी के लिए होन वाला विद्रोह सबसे भयानक होता है।"

पजाब को आशा थी कि युद्ध म ब्रिटिशो की विजय वरदान सिद्ध होगी पर ऐसा नही हुआ। खून जनसाधारण का बहा, जबकि पद गरिमा व गौरव पूजीपतियो व उच्च सरकारी अधिकारियो के भाग म गई जिन्होने सनिको की भर्ती म महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। पर युद्ध के बाद स्वतत्रता प्राप्ति की जगह उन्ह मिला रौलट एक्ट।

इस तरह जब रौलट ऐक्ट पारित हुआ उसी समय स्थिति विस्फोटक हो गई थी। इसकी धारायें इतनी बेहूदी थी कि कोई भी स्वाभिमानी

भारतीय इनके साथ अपने को सुविधा से जोड नही सकता था । यह भारतीय स्वामिभक्ति के माथे पर एक कलक का टीका था जिसे भारतीयो ने इतनी विश्वस्तता से सिद्ध किया था । इसके विषय मे ब्रिटिश सम्राट ने भारतीय राजाओ और जनता को एक सवाद मे सम्बोधित करते हुए कहा था कि "भारत ने मेरे और मेरे साम्राज्य के प्रति मेरे विश्वास के अनुसार काय किया है जिससे उसकी स्वामिभक्ति के प्रति मेरा विश्वास और दढ हो गया है ।"

युद्ध काल मे ब्रिटिश सरकार को भारत द्वारा कठिनाई मे डालने की कोई इच्छा नही थी और इसी कारण बिना किसी आपत्ति के उसने 'डिफेंस आफ इडिया एक्ट' की धाराये स्वीकार कर ली थी । पर युद्ध के समाप्त होने के एक वष पूव ही उसके ऊपर रौलट ऐक्ट की बौछार कर दी गई । युद्ध काल मे ब्रिटिश सरकार ने कुछ आपातकालीन अधिकार प्राप्त कर लिए थे जिसे वे रौलट ऐक्ट के अन्तगत बनाये रखना चाहते थे । इसके लिए उन्होने बहाना यह बनाया कि देश म कुछ गुप्त रूप से काय करने वाले आतकवादियो ने जन्म ले लिया है जो विदेशी शक्ति की सहायता स सरकार को गिराना चाहते है । पर भारत मे भूतपूव सेनापति सर आमूर न भी एसे किसी कदम को उठाने की आवश्यकता से इन्कार किया था ।

रौलट एक्ट

इस ऐक्ट के बेहूदपन का परिचय इसकी विभिन्न धाराओ स प्राप्त हो सकता है । यह ऐक्ट पाच भागो मे बाटा गया था—

भाग 1—यह भाग उस परिस्थिति मे काम मे लाया जाता था जब कौसिल मे गवनर जनरल इस बात से सतुष्ट हो कि देश के किसी भाग मे आतक फल गया है और जनहित म अपराधो को रोकने के लिए शीघ्रता म मुकदमो को निपटाने की आवश्यकता है ।

ऐसे मुकदमे विशेष रूप से बनाये गये ट्रिब्युनलो मे चलते थ । न्यायाधीशो म मतान्तर होने पर किसी को मौत की सजा नही दी जा सकती थी । पर आशा यह थी कि सदेहपूण अपराधो म ही मतान्तर होगा । इस ऐक्ट का एक अतक्पूण भाग यह था कि इस ट्रिब्युनल के निणय के विरुद्ध कही अपील नही हो सकती थी ।

मुकदमा गुप्त रूप से चलता था जिसका अथ यह था कि जनता या अपराधी के सम्बन्धी को यह अवसर प्रदान नही किया जाता था कि वह अपने रक्षाथ कोई व्यवस्था कर सके ।

इस दुर्भावनापूण ऐक्ट की अति यह थी कि स्थानीय सरकारो को यह

अधिकार दे दिया गया कि वे इस ऐक्ट की धारा के अनुसार ऐक्ट के पारित होने के पूर्व के मुकदमों को भी इस एक्ट के दायरे में ले सकते थे।

भाग 2—इस धारा में निरोधात्मक व्यवस्था थी। यदि कौंसिल में गवर्नर जनरल इस बात से संतुष्ट होता कि किसी क्षेत्र में ऐसी स्थिति है जिसमें कानून और व्यवस्था के प्रति सावधानी बरतना आवश्यक है तो वह इस ऐक्ट की इस धारा के अंतर्गत कार्यवाही प्रारम्भ कर देता।

इसके अनुसार यदि कोई स्थानीय सरकार यह अनुभव करती कि कोई व्यक्ति विशेष महत्वपूर्ण अपराधी है तो वह उससे संबंधित कागजात उच्च न्यायालय में बैठने योग्य किसी न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत कर देती। पर संबंधित व्यक्ति को मुकदमे में पैरवी करने का अवसर नहीं दिया जाता था और न ही स्थानीय सरकार न्यायाधीश के मतानुसार काम करने को ही बाध्य थी।

न्यायाधिकारी का मत पाने के बाद स्थानीय सरकार लिखित रूप में उस व्यक्ति का ऐसा इकरारनामा लिख कर देने के लिए कह सकती थी कि वह अनुसूचित अपराध न करे। उसे अपने बदले हुए पते की सूचना सरकार को देने को कहा जाता उस सरकार के निर्देशानुसार एक निश्चित क्षेत्र में रहने को कहा जाता और एक वर्ष तक उस क्षेत्र के पुलिस स्टेशन पर समय समय पर जाने को कहा जाता। इन आदेशों को लागू करने के बाद स्थानीय सरकार इस मामले को दो सेशन न्यायाधीशों व एक सम्राट की सेवा में कार्य न करने वाले व्यक्ति के पास छानबीन करने और अपना मत देने के लिये भेज सकती थी।

यह छानबीन भी गुप्त रूप से की जाती थी जिसमें संबंधित व्यक्ति को उपस्थित होने का अवसर नहीं दिया जाता। इसके लिये उसे सूचना तक नहीं दी जाती थी।

पर इस रिपोर्ट के आधार पर भी स्थानीय सरकार कार्यवाही करने को बाध्य नहीं थी और वह उस व्यक्ति पर एक वर्ष की कार्यवाही और बढ़ा सकती थी। इस तरह एक व्यक्ति को बिना मुकदमा चलाये सजा दी जा सकती थी।

भाग 3—जन सुरक्षा के लिए खतरा उत्पन्न करने वाली उपरोक्त परिस्थिति उत्पन्न होने पर इस भाग की धारा काम में लाई जाती थी। इसके अन्तर्गत किसी भी व्यक्ति को संदेह पर सीधे कैद किया जा सकता था और जेलखाने भेजा जा सकता था। ऐसे व्यक्ति के घर की तलाशी ली जा सकती थी और उसके बाद भाग 2 के अनुसार कार्यवाही की जा सकती थी।

भाग 4—इस भाग की धारायें अधिक कठोर थी।

भाग 5—इस भाग के अंतर्गत "इस ऐक्ट के अंतर्गत कोई भी प्रसारित आज्ञा किसी न्यायालय में नहीं ले जायी जा सकती थी।"

यह आश्वासन कि इस ऐक्ट का प्रयोग जन सुरक्षा में ही किया जायगा सही नहीं सिद्ध हुआ। सरकार का यह कहना था कि ऐक्ट की कार्यवाही केवल आतंकवादी और क्रांतिकारी अपराधों तक ही सीमित थी, पर सरकार ने ऐसे अपराधों को परिभाषित नहीं किया जिसके फलस्वरूप इसकी धाराओं की कार्यवाहियां मूर्खता का भी लाघ जाती थीं। एम० ए० जिन्ना ने लिखा कि यह एक ऐसा प्रयास है जिसके अंतर्गत 'यह शांतिकाल के लिए एक निश्चित रूप से घृणित और अवपीडक कार्य या जिसके फलस्वरूप न्यायिक शक्ति का कार्यपालिका का अनुगामी बना दिया गया था।"[1]

इस कार्यवाही का स्वाभाविक परिणाम विरोध सभाओं का आयोजन और प्रस्तावों का प्रेषण था। पर जहां अन्य प्रांतों में इसके फलस्वरूप विद्रोह हुये पंजाब में एक भी हिंसा की घटना नहीं हुई। 6 अप्रैल को वह पराकाष्ठा का दिवस देखने को मिला जब लाखों लोग विरोध सभाओं में सम्मिलित हुये और तब भी एक हिंसा की घटना नहीं हुई।

पर ओडायर का क्रूर शासन इस विरोध भाव को भी कठोर हाथों से दबाना चाहता था। डायर को पढ़े लिखे लोगों से अधिक घृणा थी और उसने ऐक्ट के पारित होने से पूर्व ही प्रांत के समाचार पत्रों का गला दबाने का प्रयास किया था उनकी स्वतन्त्र आलोचना की शक्ति को आगे बढ़ने से रोका था और पंजाब को शेष भारत की धारा से अलग कर दिया था। मुसलमान तुर्की के भाग्य और खिलाफत के कारण वैसे भी आवेश में थे। सरकार के विरुद्ध असंतोष का एक विशेष वातावरण था और उसके प्रति अविश्वास था। जब लोगों ने इस ऐक्ट के प्रति विरोध व्यक्त किया तो उसने अपनी सरकार के विरुद्ध चुनौती के रूप में इसे लिया। जैसे जैसे विरोध और जुलूस शांतिपूर्ण ढंग से बढ़ता गया डायर हिंसात्मक रुख अपनाता गया। जनता के बीच स्वतंत्रतापूर्वक भाषण और डा० किचलू और डॉ० सत्यपाल जैसे लोगों का स्वतंत्र लेखन प्रतिबंधित कर दिया गया। उसने 4 अप्रैल को एक आदेश प्रसारित किया जिसके अंतर्गत गांधी के पंजाब में प्रवेश को रोक दिया गया। पर गांधी को यह आदेश तब दिखाया गया जब वे पंजाब सीमा पर 'पालवाल' नामक छोटे स्टेशन पर पहुँचे। गांधी ने जब शिष्टता से आदेश मानना अस्वीकार कर दिया तो उन्हें कैद करके बम्बई भेज दिया गया। यह घटना 9 अप्रैल

---

1 देखें स्वर मारिस एण्ड अप्पादोराइ ए स्पीचेज ऐण्ड डाकूमेण्टस आन द इण्डियन कान्स्टीच्यूशन (2 भाग), भाग 1 बनर्जी ए सी इण्डियन कान्स्टीच्यूशनल डाकूमेण्ट्स 3 भाग भाग 3 1949 पृ 158 67।

की हुई और इसकी सूचना लाहौर 10 अप्रैल को पहुँची। लोग स्तंभित रह गय। आधे घण्टे मे पूरे नगर म पूर्ण हडताल हो गई और सरकार की इस कार्यवाही के विरुद्ध विरोध व्यक्त करने के लिए एक भीड एकत्रित हो गई पर गोली चलाकर भीड को तितर बितर कर दिया गया।

पूरे पजाब म विद्रोह की यह निशानी थी। जिस तिथि को लाहौर मे गोली चलाकर भीड को तितर बितर किया गया था, उसी दिन अमृतसर म एक भीड एकत्रित हुई और वह ब्रिटिश कर्मचारियो व गैर कर्मचारियो के निवास क्षेत्र ये सिविल स्टेशन होकर जाने का प्रयास करने लगी। पर इस भीड को नगर और सिविल स्टेशन को जोडने वाले रेलवे के निकट पुल पर एक छोटी ब्रिटिश सैनिक टुकडी न रोक दिया। इस भीड न जो विनाशलीला उपस्थित की और तबाही मचाई उसके दुहराये जान की आवश्यकता नही है। इसम सदेह नही कि क्रोध म तमाम लोग अपने मस्तिष्क का सतुलन खो बठे। लाखो रुपया का सरकारी धन बर्बाद कर दिया गया। कुछ युरोपिया को कत्ल कर दिया गया और उनकी सम्पत्ति को आग लगा दी गई। पर विदेशी सरकार का प्रतिशोध और अधिक क्रूर था।

1921 म पजाब विधायिका के एक सरकारी सदस्य जोसफ ने कहा यदि आपके घर म आग लगी हो और आप अग्निशामक इजिन बुलवायें और वह आग बुझान क निए इतना तेज पानी फेंके कि आपका सभी फर्नीचर और कारपेट बर्बाद हो जाय तो बाद म यह विवाद करना किसी मतलब का नही है कि कितना बाल्टी पानी आग बुझान के लिए पर्याप्त होता।[1] पर यह कोई उचित तर्क नही था।

जलियावाला बाग की घटना

चूकि विरोध जुलूस निकलना जारी रहा इसलिए *13 अप्रल 1919* को पूरे प्रान्त के प्रतिनिधि अमृतसर म जलियावाला बाग म एकत्रित हुये। एक दिन पूर्व नगर निवासियो को सभा न करन के लिए सचेत किया गया था। पर खुराफाती ब्रिगेडियर जनरल डायर के अनुसार उन्होंने उसकी अनसुनी कर दी। उसी के ही शब्दो म '13 अप्रल को सायकाल 4 बजे पुलिस न मुझे सूचित किया कि उपरोक्त स्थान पर लोग एकत्रित हो रहे हैं। मैने नगर द्वारा नाकेबदी के लिए सनिक टुकडियाँ भेजी, (जिससे कि 10 तारीख की तरह भीड ब्रिटिश निवासो पर पुन आक्रमण न कर दे) और 25 राइफलें 9 वी गुरखा और 54 वी सिख एफ० एफ० के 25 राइफिल टुकडी एव 59 राइफिल एफ० एफ० को लेकर जा सब मिलाकर 50

1 लेजिस्लेटिव कौंसिल रिपोर्ट पजाब *1921*।

राइफिलें होती थी तथा 40 गोरखा का उनकी खुखरी सहित मे जलियावाला बाग मे एक ऐसी मकरी गली से पहुचा जिसके कारण हमे अपनी हथियार लैंस कार को पीछे ही छोडना पडा। वहा पहुँचने पर मैने एक घनी भीड देखी जो लगभग 5 हजार रही होगी (जो वहा उपस्थित थे उनका कहना है कि यह 15 से 20 हजार के बीच रही होगी)। एक ऊँचाई पर एक व्यक्ति उन्हे सबोधित कर रहा था और अपने हाथ हिला हिलाकर कुछ समझा रहा था।'

'मैने अनुभव किया मेरी सेना छोटी है और हिचकिचाहट म आक्रमण सभव है। मैंन तुरन्त गोलिया चलाईं और भीड को तितर बितर किया। मुझे लगा कि भीड के 200 300 लोग गोली से मारे गये। मेर दल ने **1650 राउन्ड गोलियाँ चलाइ।"[1]**

मारे गये लोगा की यह सख्या बहुत ही कम है। और साथ ही इस घटना मे घायलो की सख्या भी बहुत थी। रूपट फर्नी लिखता है कि जनरल डायर "जब बाग से वापस लौटा तो वहा का दश्य दिल हिला देने वाला था। कम से कम 15 हजार भारतीय या तो मारे गये थे या छोटे या बडे घावा के कष्ट से कराह रह थे। इनम बहुत स तो बच्चे थे। बीस हजार से अधिक लोगो ने तो इस मौत के घेरे से निकलन की चेष्टा की बाद के 2½ घटा म जब तक कफ्यु रहा गलियो म भी ढूढ-ढूढ कर उन्हे मार डाला गया। व भारतीय जो उस रात बाग वापस लौट जिससे कि वे अपन सबधियो या मित्रा की तलाश कर सकें या घायलो को राहत द सकें उनकी भी मौत का खतरा था।"[2]

पजाब के सैंकडो नायको का, जिन पर उस दिन गोली चलाई गई, उनका खून आज भी उस बाग के पौधो म दौडता है और हमे पजाब के उन स्वतन्त्रता प्रेमी पुत्रा के दुख आर बलिदान की कहानिया बताता है जिन्होने अपने जीवन का बलिदान किया।

पर विदेशी प्रतिशोध की यह समाप्ति नही थी। 14 अप्रल को गुजरानवाला मे एक भीड पर हवाई जहाज से मशीनगनो मे गोली वर्षा की गई। गुजरानवाला, गुजरात लायलपुर गुरदासपुर और प्रान्त मे अन्य स्थाना पर विद्रोह को क्रूरता से दबाया गया। 15 अप्रैल को अमृतसर और लाहौर मे माशल ला लगा दिया गया जिसके अत्याचारा के विषय म काफी

1 डायस टस्टोमनी टु द हटर कमिटी—मो फर्नी रिपोट मसेकर एट अमृतसर लदन, 1963, प 17 24 108 11 दत्ता बी एन—जलियावाला बाग लुधियाना 1969 पृ 111 118 भी देखें।

2 फर्नी रुपट पूर्वोद्धत पृ 25।

कहा भी गया है और लिखा भी। इस संबंध में हंटर कमेटी की रिपोर्ट को संदर्भित किया जा सकता है—

"जहां तक मार्शल लॉ का संबंध है और तत्संबंधी आदेश व मुकदमों का जो लोगों के विरुद्ध उसकी अवधि के कारण चलाने पड़े, हम यह सोचते हैं कि तमाम महत्वपूर्ण मामलों में यह दुर्भाग्यपूर्ण था। मार्शल लॉ अपने स्वरूप में अत्यधिक सख्त था ... कुछ पारित आदेश अन्यायपूर्ण थे। इनसे कोई अच्छा उद्देश्य पूरा नहीं होता था और हमारे मतानुसार जनता की कठिनाइयों पर चार्जों से विजय पाने के लिए इनसे कुछ नहीं किया गया था।"[1]

आगे वे फिर संदर्भ देते हैं—

1. जनरल डायर का रेंगने का आदेश जिसकी किसी ने भी तरफदारी नहीं की।

2. जनरल कैम्पबेल का सलामी आदेश जिसमें गुजरांवाला के लोगों को कहा गया कि वे ब्रिटिश अधिकारियों से जहां भी मिलें उनसे उसी तरह से सलाम करें जैसे वे भारतीय उच्चवर्ग के लोगों से मिलने पर करते हैं। इसमें भारतीय परम्परा को अपनाया जाय।

3. कर्नल फ्रैंक जानसन ने यह आदेश दिया कि लाहौर के 10 कालेजों में से 4 कालेजों के छात्र जिन्होंने बलवा में भाग लिया था वे दिन में 4 बार उपस्थिति दें जिससे वे षड्यंत्र में सम्मिलित न हों।

4. उसी अधिकारी ने एक कालेज के 50 से 100 लड़कों को 24 घंटे के लिए किले में बंद किया जिन्होंने मार्शल लॉ की प्रतियाँ फाड़ डाली थीं।

5. लाहौर में लोगों को सबके सामने कोड़े लगाये गये और सामान्यतया अन्य स्थानों पर भी लोगों पर कोड़े बरसाये गये।

6. 'कसूर में कैप्टेन डावटन ने हास्यास्पद दंडों की व्यवस्था की जैसे अपराधियों को माथे से भूमि छूने को कहना और उछल कूद करने को कहना। यह करने के बाद उन्हें कोड़े, श्रम दंड और कद से छूट जैसी साधारण पर कठोर दंड से मुक्ति मिल जाती थी।'

पर और अधिक रुचिकर बात यह थी कि जिन्होंने इस आंदोलन में महती भूमिका अदा की उन्हें कत्ल करने के बाद और जिन्होंने इस आंदोलन में कम महत्वपूर्ण भाग लिया था उन्हें न्यायालयों के माध्यम से दंडित कराने के बाद जब अमृतसर नगर में हुई हानि के लिए उन लोगों को भी हर्जाना देने को बाध्य किया गया जिनका इस आंदोलन से कोई ताल्लुक ही नहीं था।

1. देखें ओडायर पूर्वोद्धृत पृ 302-03 वाली एस डी एडविन मांटेग्यू पृ 206-09 मुकर्जी हीरेन्द्र नाथ इंडियाज स्ट्रगल फार फ्रीडम पृ 110।

बीस लाख छप्पन हजार रुपये का हर्जाना लगाने का निश्चय किया गया जिसमे से 1,43 000 रु० पुलिस के लिए और शेष जिनकी हानि हुई थी उनके लिये था। अमृतसर नगरपालिका इसे अस्थायी उच्च चुगियो द्वारा वसूलने वाली थी और अचल सपत्ति की बिक्री पर अलग से एक उच्च अधिभार लगाया जाने वाला था। यह हर्जाना जिला मजिस्ट्रेट द्वारा सेक्शन 15 ए (2) (c) के पुलिस ऐक्ट के अतगत लगाया जाना था जिसम परिवतन या तो क्षेत्रीय कमिश्नर कर सकता था या स्थानीय सरकार। इसी तरह पुलिस को देय हर्जाना भी जिला मजिस्ट्रेट द्वारा सेक्शन 15 (4) के पुलिस ऐक्ट के अनगत लगाया जाना था।

सर रवीन्द्र नाथ टैगोर ने सरकार के इन अमानवीय कार्यो के विरुद्ध अपने नाइटहुड का परित्याग कर दिया और एक पत्र म वाइसराय को लिखा, "अब एसा समय आ गया है जब प्रतिष्ठा का तमगा इन अपमानजनक कार्यवाहिया के सन्दभ मे पहनना असगत लगता है।" सर शकरन नायर ने वाइसराय के कायपालिका के सदस्यता से इन्कार कर दिया। इस सबके कारण सरकार के जलियावाला बाग की दुघटना पर पदा डालने के काय पर बडी आच आई। इसी के कारण सरकार को अक्टूबर 19 9 मे लाड हण्टर के अधीन एक जाच समिति बठानी पडी जिसकी रिपोट का प्रकाशन माच 1920 मे हो पाया। रिपोट म अपराध करने वाला को मुक्त करने का शमनाक प्रयास किया गया तथा उनका तिरस्कार भी नही किया गया। ब्रिटिश ससद के हाउस आफ लाड्स के सदस्या ने जनरल डायर को ब्रिटिश साम्राज्य का नायक ही नही स्वीकार किया बल्कि उसे 12000 पौण्ड व एक तलवार भेट मे दी। हीरेन्द्र नाथ मुखर्जी ने ठीक ही कहा कि, " साम्राज्यवाद का असली चेहरा अब भारतीयो के लिए बेनकाब हुआ और हम अपन मस्तिष्क से इस क्रूरता और नरमेध को कभी नही निकाल सके।"[1] श्रीमती एनी बसेन्ट हटर कमेटी के समक्ष सनिक अधिकारियो की गवाहिया पढकर दग रह गइ। हाउस आफ लाड स की कायवाही ने तो उनका माथा शम से नीचा कर दिया।

इसी बीच काग्रेस ने अपनी छानबीन की एक अलग समिति बनाई जिसमे गाधी, पडित मालवीय, पडित मोतीलाल नहरू और अन्या को रखा गया। इस कमेटी ने अमृतसर के सैनिक अधिकारिया के क्रूर व्यवहार की आलोचना की और मरे हुए व घायल लोगो के परिवार के लिए हर्जाने की माग की तथा अपराधियो को दड देने को कहा। इस रिपोट पर न तो ध्यान दिया गया और न उसकी परवाह की गई। इसी बीच सरकार ने इडेमनिटी ऐक्ट पारित कर दिया जिसके अतगत गोली चलाने वाले सभी लोग दोषमुक्त हो

1 मुखर्जी हीरेन्द्र नाथ इण्डियाज स्ट्रगल फार फ्रीडम पृ 110।

गये। इस तरह यह वह एक घटना थी जिसने सरकार के ईमानदारी से काय करने के प्रति विश्वास को गांधी जी के मन से तिरोहित कर दिया और फल स्वरूप उन्हे असहयोगी बना दिया।

खिलाफत आदोलन

युद्ध की समाप्ति पर भारत के मुसलमान तुर्की के प्रति होने वाले दुर्व्यवहार से परेशान थे। पर उनका भय उस समय जाता रहा जब ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने यह आश्वासन दिया कि उससे एशिया माइनर और थ्रेस के धनी मानी क्षेत्रो का न तो अपहरण ही किया जायगा और न उसके विरुद्ध प्रतिशोध की नीति ही अपनाई जायगी। सतुष्ट मुसलमानो ने इसीलिए ब्रिटिश युद्ध योजनाओ म दिलोजान से सहायता की। पर जसे ही युद्ध समाप्त हुआ यह स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश प्रधानमंत्री द्वारा दिया गया वादा पूरा नही किया जायगा। इस स्थिति म गाधी मुसलमानो क समथन मे जुटे जिससे हिंदू मुस्लिम दूरी म भी कमी आय। 24 नवम्बर 1919 को गाधी के नेतृत्व म दिल्ली मे एक खिलाफत सम्मेलन हुआ जहां से एक शिष्टमडल मि० अन्सारी के नेतृत्व म गवनर जनरल से मिलने को भेजा गया पर इसका कोई सुपरिणाम नही हुआ। मौलाना मुहम्मद अली और उनके भाई शौकत अली को 1920 म इगलड भेजा गया, पर इसस भी कुछ हासिल नही हुआ। जब मई 1920 म सेवरे की सधि घोषित हो गई तो भारतीय मुसलमानो का भय सच सिद्ध हुआ। 10 अगस्त 1920 मे होने वाली सधि म पूण एशिया माइनर और थ्रेस को तुर्की से छीन लिया गया। उसके अरब प्रात इगलड व फ्रास के हाथ चले गये। तुर्की का सुलतान मुसलमानो का आध्यात्मिक नेता कदी की तरह जीवन बिताता अपने खिलाफत के प्रतिष्ठापूण पद को गवा बैठा। 'तुर्की के साम्राज्य को इसी तरह बर्बाद करने की योजना ही बनी थी जिससे वह केवल एक भूतकालीन शौय के रूप मे शेष रह जाय। और इसने भी गाधी को ब्रिटिश का असहयोगी बना दिया।[1]

इन परिस्थितियो म मई 1920 मे गाधी क परामश पर अखिल भारतीय खिलाफत समिति ने उनके असहयोग आदोलन की योजना को अपना लिया। ऐसा ही चार महीने बाद कलकत्ता के कांग्रेस सम्मेलन ने भी किया। चूंकि उदारवादियो ने इसे 1912 मे ही छोड दिया था इसलिये यह सस्था अतिवादियो के नियत्रण मे थी। पर फिर भी गाधी के असहयोग के प्रस्ताव की स्वीकृति आसानी से नही हुई। इसका विरोध प० मालवीय श्रीमती एनी बेसण्ट,

1 कवीश्वर सान्याल सिंह इण्डियाज फाइट फार फ्रीडम 1936 प 17।

सी० आर० दास वी० सी० पाल और जिना ने किया। पर अतत असहयोग के पक्ष मे सात मतो के वहुमत से प्रस्ताव पारित हो गया। इस परिस्थिति ने गाधी को काग्रेस सगठन का अति महत्वपूर्ण व्यक्ति सिद्ध कर दिया और दिसबर 1920 मे नागपुर मे जब इसका सम्मेलन हुआ तो प्रचण्ड बहुमत से उनकी योजना को पुन स्वीकृति प्रदान की गई। के० एम० मुशी ने लिखा है कि नागपुर का काग्रेस सम्मेलन "राजनतिक सगठन से अधिक एक ऐसा धार्मिक सम्मेलन लगता था जिसमे एक नये मसीहा के आगमन का स्वागत किया जा रहा था।"[1]

1920 का काग्रेस का नागपुर सम्मेलन, भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम के इतिहास मे, तीन कारणो से एक महत्वपूर्ण घटना थी। प्रथम, इस समय से राजनतिक सुविधा प्राप्त करने के लिए पुराने सवधानिक पथ का परित्याग कर दिया गया और अब उद्देश्य की प्राप्ति के लिये हर सम्भव शातिपूर्ण और वैधानिक रास्ता अपनाने का निश्चय हुआ। दूसरे, ब्रिटिश साम्राज्य के अतगत स्वशासन के उद्देश्य का परित्याग कर दिया गया और "यदि सभव हो तो ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तगत और यदि आवश्यक हो तो इसके बाहर स्वराज" को गतव्य निश्चित किया गया और तीसरे 31 जुलाई 1920 को तिलक की मत्यु के बाद गाधी काग्रेस के नेता हो गये और अपने नये नये प्रयोगो के आधार पर काग्रेस की नौका अपनी मत्यु तक खेते रहे।

असहयोग आदोलन

नागपुर म असहयोग के सम्बन्ध मे जो प्रस्ताव पारित हुआ उसके दो भाग थे। प्रथम देश से यह आग्रह किया जाना था कि वह निम्नलिखित का बहिष्कार करे—

(1) 1919 के गवनमेण्ट ऑफ इडिया ऐक्ट के अधीन होने वाले चुनाव का

(2) सरकार द्वारा स्थापित न्यायालयो का,

(3) सरकारी और सहायता प्राप्त स्कूलो एव न्यायालयो का

(4) विदेशी माल का

(5) नामित पदो से इस्तीफा दे दिया जाय और सरकारी पद व प्रतिष्ठा को वापस कर दिया जाय

(6) कोई सरकारी दरबार म उपस्थित न हो तथा सरकारी अधिकारियो

1 मुशी क एम पूर्वोद्धत भाग 1 प 23। मि जि ना व कुछ अय लोगो ने इस सम्मेलन के बाद काग्रेस का त्याग कर दिया। उनका निश्चित मत था कि ऐसा असवधानिक आदोलन निश्चित ही अत्यधिक हिंसा को आमत्रित करेगा।

के स्वागत म किये जाने वाले सरकारी या असरकारी कायक्रमा म सम्मिलित न हुआ जाय

(7) सनिक मजदूर और लिपिक क रूप म काय करने वाले वे लोग जो मेसोपोटामिया भेजे जा रहे हा व जान से इकार कर दें। इसके अतिरिक्त यह निश्चय हुआ कि—

(अ) सरकारी न्यायालयों का स्थान लेने के लिए प्राइवेट न्यायालय स्थापित किए जायें

(ब) शिक्षा के लिए स्कूल और कालेज स्थापित किए जायें,

(स) हाथ से कताई और बुनाई प्रारम्भ की जाय और पूण स्वदेशी अपनाई जाय,

(द) छुआछूत की बुराई स सघप किया जाय।

1921 के प्रारम्भ से असहयोग आन्दोलन अपनी पूण तीव्रता से प्रारम्भ हुआ। मोतीलाल सी० आर० दास, विट्ठल भाई राजेन्द्र प्रसाद वल्लभ भाई पटेल जसे लोगो न अपनी चलती वकालत छोड दी। गवनमेण्ट स्कूल और कालेज म पढन वाले न रहे और उनके स्थान पर बगाल नेशनल विश्वविद्यालय दिल्ली का जामिया मिलिया, नेशनल मुस्लिम युनिवर्सिटी (अलीगढ), लाहौर का नेशनल कालेज, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ आदि म शिक्षा दी जाने लगी। स्वदेशी कपडे का प्रयोग बढा और विदेशी कपडे का घटा। बीस हजार चरखे बनाय गये और लगभग 40 लाख लोग काग्रेसी वालटियर हो गये। चरखा को काग्रेस झण्डे मे भी स्थान मिला। लोग कितने उत्साह मे थे इसी स स्पष्ट है कि भाव 1921 म जब काग्रेस ने एक करोड रुपये की आवश्यकता बताई ता यह धन शीघ्र ही वसूल हो गया। एक लाख रुपया वार्षिक सेठ जमनालाल बजाज ने प्रक्टिस करने वाले वकीला के लिये देने की घोषणा की। उपाधियाँ वापस कर दी गइ और न्याया लयो का परित्याग किया जाने लगा। काग्रेस न चुनावा म भाग नही लिया जिसस अवसरवादियो व सरकार भक्तो का चुनाव हो गया। 774 सीटा मे से 6 सीटो पर कोई न लडा।

चेम्सफोड सरकार न बदले की भावना से काम लिया और इस आदोलन को दवाने के लिए कठोर कदम उठाय। सेडीसस मीटिंग्स ऐक्ट पारित किया किया गया और बहुत से नेता जेल म बद कर दिय गय। पर इससे आदोलन और हिंसात्मक हो गया। इसी समय चेम्सफोड पद मुक्त हा गया और वायसराय के रूप म रीडिंग उत्तराधिकारी हुआ। उसके काल मे हिंसा परा काष्ठा की पहुच गई। 20 अगस्त 1921 का मालाबार म मोपलो न घनघोर बदला लेकर प्रशासन को कुठित कर दिया। मोपला विद्रोह का एक दुर्भाग्य

शाली पक्ष यह भी था कि इसके शिकार बहुत से हिंदू भी हुए। मोपला विद्रोह इतना सफल था कि सरकारी शासन के स्थान पर खिलाफत गणतंत्र की स्थापना कर दी गई। 17 सितम्बर 1921 को अलीभाइयों को पकड़कर सरकार ने कार्यवाही प्रारम्भ की। कांग्रेस की कार्यसमिति ने इसकी आलोचना की और इसके विरोध में भारत में राजकुमार वेल्स के आगमन पर उस समय देशव्यापी हड़ताल का निश्चय किया जब वे नवीन संविधान के प्रारम्भ का उद्घाटन करने वाले थे। 17 नवम्बर को जैसे ही वेल्स बम्बई पहुँचे नगर के हड़ताल ने उसका स्वागत किया। पर इस हड़ताल के कारण दुर्भाग्य से कुछ सहयोगियों और असहयोगियों के बीच हिंसात्मक झगड़े भी हुए जिससे गांधी को एक शिक्षा मिली और उन्होंने कटु शब्दों में इन घटनाओं की निंदा की।[1] सरकार भी कठोर हो गई और उसने खिलाफत संगठन को अवैध घोषित कर दिया। गोली और लाठी की बौछार होने लगी और जनसभाओं पर रोक लगा दी गई। पर सरकार विरोधी कार्यवाहियाँ अब भी चलती रहीं।

दिसम्बर 1921 में राजकुमार कलकत्ता आने वाले थे। इसके पूर्व लार्ड रीडिंग ने कांग्रेस से समझौता करने का प्रयास किया पर कांग्रेस ने अली भाइयों को छोड़े जाने से पूर्व कुछ भी मानने से इंकार कर दिया। के० एम० मुंशी के अनुसार लार्ड रीडिंग ने कहा कि 'कलकत्ता में राजकुमार के पहुँचने के एक सप्ताह पूर्व वहाँ एक गोलमेज सम्मेलन बुला ली जाय जिसमें वह ब्रिटिश सरकार का प्रतिनिधित्व करेगा और भारत गांधी जी सहित अन्य राजनीतिज्ञों के नेतृत्व में बात करेगा।' रीडिंग ने आगे कहा कि "इस सम्मेलन में ब्रिटिश सरकार की ओर से प्रान्तीय स्वशासन को स्वीकार कर लिया जायगा तथा केन्द्र सरकार में भी द्विशासन की संभावना पर विचार करेगा। सभी राजनैतिक बंदियों को मुक्त कर दिया जायेगा।'[2]

तमाम नेताओं ने गांधी से इसे स्वीकार कर लेने को कहा पर गांधी ने आधे दर्जन मौलवियों के प्रभाव में यह कहकर इसे अस्वीकार कर दिया कि जब तक खिलाफत आन्दोलन के बंदी नहीं मुक्त किए जायेंगे इस बात को नहीं स्वीकार किया जायेगा। यह दुर्भाग्यपूर्ण था। सी० आर० दास क्रोध से भरे उनकी बगल में ही थे। उन्होंने कहा कि 'जीवन का एक अभूतपूर्व अवसर खो दिया जा रहा है।" जो भी हो 1921 का अंत आते-आते अहमदाबाद में कांग्रेस का सत्र हुआ जिसमें यह निर्णय किया गया कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन को प्रारम्भ किया जाय और असहयोग आन्दोलन को और भी तीव्र

1 सीतारमय्या पी वी हिस्ट्री आफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस भाग 1 पृ 221।
2 मुंशी पूर्वोद्धृत भाग 1 पृ 23।

बनाया जाय। कांग्रेस की सम्पूर्ण कार्यकारिणी शक्ति एक व्यक्ति, गांधी को पूर्णतया सौंप दी गई। इस तरह यह आंदोलन सरकार की क्रूर नीति की छाया में तीव्रतर होता गया। जहां-जहां राजकुमार गये खाली सड़कों में उनका स्वागत किया और उनके स्वागत में किये गये सभी कार्यक्रमों में लोगों ने भाग नहीं लिया। लगभग 30 हजार राष्ट्रवादियों को जेल में डाल दिया गया जिनमें मोतीलाल नेहरू, लाजपतराय, अब्दुल कलाम आजाद, अली भाई एवं अन्य लोकप्रिय नेता सम्मिलित थे। लोकप्रिय नेताओं में गांधी मात्र बाहर थे।

आंदोलन का स्थगन

पर यह आन्दोलन ऊपर से सफल दिखाई पड़ने के बावजूद तेजी से टुकड़े टुकड़े हो रहा था। गांधी का नारा अहिंसात्मक असहयोग का था पर कांग्रेसी कार्यकर्ताओं के लिए यह मुश्किल में अहिंसात्मक था। जब सभी नेता जेल में ठूस दिये गये तो अनुशासनहीनता का वेग और असंगठन का भाव तीव्रतर हो गया। पंडित नेहरू[1] ने लिखा है कि संघर्ष का सिद्धांत व उद्देश्य निश्चित नहीं हुआ था और एक अस्पष्ट स्वराज जिसके पीछे कोई स्पष्ट आदर्श न हो और वह भी अहिंसात्मक विधि पर आधारित हो, लोगों का लोकप्रिय उत्साह अर्जित नहीं कर सकता था। सरकार की ओर से भयानक रूप से दबाव ने इस ओर अनुत्साहित कर दिया। इस आंदोलन के प्रभाव को मोपला[2] विद्रोह ने और हीनता प्रदान कर दी। पर मोपला विद्रोह मात्र हिंसात्मक ही नहीं था। 26 अगस्त 1920 को एक मुस्लिम कट्टर पंथी ने उत्तर प्रदेश में मेरी के डिप्टी कमिश्नर मि० आर० डब्लू० डी० विलोबी की हत्या कर दी। हिंदू मुस्लिम समूह में दरार नजर आने लगी और इसकी संभावना लगने लगी कि पूरे देश में साम्प्रदायिक व वर्ग संघर्ष प्रारम्भ हो जायगा। स्थिति उस समय और दयनीय हो गई जब अहमदाबाद के कांग्रेस सत्र के बाद फरवरी 1922 में गोरखपुर जिले के एक गांव चौरी चौरा में सामूहिक हिंसा भड़क उठी। यहां पर काफी लोगों का कांग्रेसजनों का समूह लगभग एक हजार किसानों की सहायता से अधिकारियों से भिड़ गया। इस पर जब पुलिस ने गोली चलाई तो उन्होंने प्रतिशोध में 21 पुलिस वालों और एक सब इंस्पेक्टर को थाने में ही घेर कर जला दिया। इस घटना ने गांधी जी को आतंकित कर दिया जिस पर उन्होंने घोषणा कर दी कि जनता अभी अहिंसात्मक आंदोलन के योग्य नहीं है। उन्होंने आंदोलन को स्थगित कर देने की घोषणा की।

---

1 नेहरू ज० एन० आटोबाईग्राफी पृ० 269।

2 इण्डियन को स्टीच्यूशनल डाकूमेन्ट्स 1757 93 (तीन भाग) भाग 3 1917 1939 एडिटेड बाई ए० सी० बनर्जी 1949 पृ० 164।

काग्रेस के कायकर्ताओ के लिए यह घोषणा अत्यधिक आश्चयपूण घटना थी। माती लाल नहरू, सी० आर० दास, लाजपत राय, अली भाई और जवाहर लाल नेहरू सरीखे महत्वपूण नताओ ने गाधी की इस घोषणा की आलाचना की। गाधी के एक प्रशसक रोमा रोला ने इन नेताओ की भावनाओ को इन शब्दो मे चित्रित किया है, ' राष्ट्र के सभी तत्वा को एक नित कर उह निर्धारित आदोलन मे सम्मिलित कर उहे हाथ उठान का आदेश देना व पूरे राष्ट को हाकने की स्थिति मे छोड देना खतरनाक था। इसके बाद उनको हाथ नीचा करने का आदेश देकर तीन बार रुकने को कहना वैसे ही था जैसे कोई मशीन बडी मुश्किल से चलने लगी हो तो उसे रोक दिया जाय।' सचमुच एकाएक इस अवसर पर गाधी लोगा की दृष्टि मे गिर गये और सरकार ने उह कैद कर लिया और 10 माच 1922 को उन पर आरोप लगा दिये गये। यह ऐतिहासिक मुकदमा अहमदाबाद के सेशन जज मि० ब्रूम्सफील्ड के न्यायालय मे प्रारम्भ हुआ। गाधी ने अपनी गलती स्वीकार की और उह 6 वष की कैद की सजा हुई। इस तरह उस समय असहयोग आदोलन समाप्त हुआ। गाधी को 5 फरवरी, 1924 को जेल स रिहा कर दिया गया। उनकी सजा का काल अभी शेष था इसलिये उन्हे अस्वस्थता के आधार पर मुक्त किया गया और फिर असहयोग आदोलन की क्रिया भी पूरी हो गई थी।

मूल्याकन

अहिंसात्मक असहयोग का गाधी का नवीन प्रयोग पर्याप्त आलोचना का विषय बना हुआ है। सर सी० वाई० चिन्तामणि ने कहा है कि "दो नकारात्मक बातें एक सकारात्मक बात की रचना नही करती।"[1] श्रीमती एनी बेसेन्ट ने बताया कि असहयोग मात्र 'भारत की गिरी हुई अवस्था के विरुद्ध असतोष अभिव्यक्तिकरण का एक फूहड तरीका था।" इस सम्बन्ध म एनी बेसेन्ट ने आगे लिखा है कि "ईसाई पुरातन ग्रथो म एक स्थान पर आग्रह किया गया है कि शतान प्रकाश के देवदूत के रूप मे भी उतर कर सामने आ सकता है। यह उदाहरण इस आदोलन के लिए अत्यधिक उपयुक्त है जिसके अहिंसात्मक गुणो के विषय म प्रारम्भ से ही बतात समय मक्खन से भी मुलायम शब्दो का प्रयोग किया गया। जबकि सच यह था कि इसके प्रारम्भ होने के काल से ही इसके हृदय व व्यवहार म युद्ध की एक ज्वाला थी।"[3]

1 चिन्तामणि सर सी वाई इण्डियन पालिटिक्स सिन्स दा म्युटिनी प 187।
2 बसेन्ट एनी द इण्डिया दट शल बी प 25।
3 वही प 114।

सच यह था कि प्रारम्भ से ही हडताल और असहयोग झगडे और खून खराबी को प्रोत्साहित करता था। प्रथम अखिल भारतीय हडताल ने दिल्ली मे दगा ला दिया। पुन राजकुमार वेल्स के बम्बई आगमन के अवसर पर गभीर बलवा सा उपस्थित किया। इसी हडताल के अस्त्र ने पजाब मे कठिनाइया प्रारम्भ कर दी।[1] नवीन सविधान के अन्तगत जो चुनाव हुये असहयोगियो ने बडे ही अपमानपूण ढग से दु साहसी चुनाव अभ्यार्थिया पर कीचड उछाला। चिन्तामणि ने लिखा है "मैं व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर कहता हूँ कि अहिंसात्मक हिंसा या हिंसात्मक अहिंसा का कोई अत न था जिसके माध्यम से अपने विषय म सोचने वालो को परेशान किया गया।" चूकि हडताल और असहयोग की मित्रता डराने धमकाने से थी इस कारण यह अस्त्र भारतीयो के योग्य नही था। पर गाधी बेसन्ट के मतानुसार, अस्पष्ट स्वप्निल, गूढ और साधारण मानव स्वभाव ज्ञान से दूर थे।"

इस आन्दोलन ने हजारो परिवारो के लिए मुसीबत सा खडी की। बहुतो ने अपनी नौकरी छोड दी युवको ने विद्यालय छोड दिया और विद्यालयो मे अधिकारियो माता पिता शिक्षको और सरकार के विरुद्ध विरोध व विद्रोह भावना व्यक्त हो गई। यदि वकीलो और अन्य लोगो ने अपना पेशा त्याग दिया या नौकरी छोड दी तो उनके देख भाल के लिये कोई धन एकत्रित नही किया गया। और लोगो के इतने त्याग और कष्ट ने उन्हें स्वराज दिलान मे सहायता न देकर पुन कौसिलो की ओर वापसी का पथ दिखा दिया गया। इस परिस्थिति मे दल का केवल यह लाभ मिल सका कि उसने अपन विरोधी दल के विरुद्ध हथियार साफ किये। सच तो यह था कि उन्होंने कुछ ऐसी भयानक भूलें की जिससे कि कई कठिनाइया आ उपस्थित हुइ। यदि गाधी सुधार की इस पूव सन्ध्या पर अपने आन्दोलन को लेकर न कूद पडते तो भारतीय राष्ट्वादी नेता सगठित बने रहते और विधायिका तथा अन्य स्थानो पर पद प्राप्त कर लेते और उस माध्यम से सरकार पर समुचित दबाव डालने मे समथ हो सकते थे जिसके फलस्वरूप कही बेहतर परिणाम सामने आते। सच तो यह था कि गाधी न 'विभिन्न मतावलम्बियो के बीच शाति और शात ढग से वार्ता का शानदार अवसर हाथ आन से गवा दिया।'[3]

गाधी की यह आश्वस्तता कि वे स्वराज एक वष म प्राप्त कर लेंगे, सम्भवतया असभव था। ऐसा इसलिए था कि सपूण राष्ट्र को एक वष के भीतर अहिंसा की बुलदियो पर पहुँचा देना सरल न था और न ही नौकरशाही का वे अपनी

1 वही प 150, 174।
2 चिन्तामणि पूर्वोद्धत प 84।
3 वहा प 137।

जादू की छड़ी से, इतने ही काल में भयभीत कर सकते थे।[1] पर यदि हम यह मान भी लें कि वे सफल भी हो जाते तो उसके बाद ? हम मालूम है कि इसके पहले क्या किया गया था। मालाबार में खिलाफत राज्य ने, जिसकी क्रूरता को अनेक समर्थकों ने नजरंदाज किया, हिंदू मुस्लिम समझौते तथा असहयोग को मार डाला यदि उनके हाथ यह (स्वराज) लग भी जाय तो वे शांति कायम नहीं रख सकते। फिर तो हमारे सामने होगी अव्यवस्था हत्या आगजनी बलात्कार लूटपाट निर्धनों का विद्रोह और धनीमानी लोगों का कत्ल।

कानून की अवहेलना के परिणाम की भी अनदेखी नहीं की जा सकती थी। श्रीमती एनी बेसेन्ट के अनुसार यह अशिक्षितों में तथा अपराधियों में ही अव्यवस्था करने के भाव को प्रोत्साहित करता है जो समाज के आधार की जड़े काटना प्रारम्भ कर देता है। यदि वर्तमान सरकार इस भाव को बढ़ने देती और इस पर रोक न लगाती तो वह भारतीय उत्तराधिकारियों को कानून के मानने वाली जनता की जगह अव्यवस्था से पूरित जनता को सौंप कर जाते।"[2]

गांधी ईसामसीह के सिद्धान्त के प्रयोग में विश्वास करते थे। (यदि आपके एक गाल पर कोई थप्पड़ मारे तो आप उसके सामने दूसरा भी गाल कर दें।) इस पर बिशप मार्गो ने अपना वक्तव्य दिया कि यदि कोई राष्ट्र इस शिक्षा का पालन करेगा तो वह एक सप्ताह में ही नष्ट हो जायेगा। बिशप की बात यदि बाद में होने वाले भारत चीन संघर्ष के सम्बन्ध में देखी जाय तो खरी ही उतरती है। यदि यह कहा जाय कि गांधी की नीति के कारण ही भारत जागरूकता व तैयारी की स्थिति में नहीं रहा और उसका अपमान हुआ तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

गांधी की खिलाफत समिति समझौता भी एक भयानक भूल थी। यदि ब्रिटिश प्रधानमंत्री अपने वादे से मुकर भी गया हो और खिलाफत की मांग पूर्णतया सच भी रही हो तो भी पूर्णतया एक धार्मिक प्रश्न का उठाया जाना जिससे केवल मुसलमान ही प्रभावित होता था और उसे भारतीय राजनीति का एक अभिन्न अंग बनाना एक नवीन त्रासदायी बहकाव का कदम था जिसके कारण तत्कालीन परिस्थिति में ऐसा मोड़ आया कि देश की स्थिति में विचित्र दयनीयता आ गई।

संभवतया श्री गोखले ने सच ही में श्रीमती बेसेन्ट से कहा था कि गांधी

---

1 कवीश्वर पूर्वोद्धत पृ 112।
2 देखें बेसेन्ट एनी पूर्वोद्धत पृ 139 144।

हमारे राजनतिक आदोलन को एक गहरा आघात प्रदान करेंगे।'[1] यहा तक कि जब डा० टगोर से उनके एक युरोपीय मित्र ने गाधी की तीन अच्छाइया और तीन बुराइया गिनाने को कहा तो उन्होंने उनके सारे गुण-दोषो को एक ही शब्द म बताते हुए कहा कि वह है "असगति।"[2]

पर जब यह सब कहा जाता है तो हमे यह भी नही भूलना चाहिए कि गाधी के इस नवीन आदोलन ने साधारण जन मे जागरूकता पैदा कर दी। जनता म वीरता, भयहीनता और आत्म निभरता का गुण उत्पन्न हो गया, ला आफ सडीसन की खुलआम आलोचना होने लगी, जेल को तीथ स्थल के रूप म माना जान लगा और काग्रेसजना को अधिकारियो के विरुद्ध खुले सघष की सफल अनुभूति हो गई। रचनात्मक क्षेत्र मे शराबबदी को प्रोत्साहित किया गया हाथ स सूत कातने पर जोर दिया और हाथ से कपडा बुनना लोकप्रिय हो गया। लोकप्रिय नताओ का प्रिय वस्त्र खादी हो गया।

1921 म चेम्सफोर्ड भारत स पद निवत्त हो गया और इगलण्ड वापसी पर विस्काउण्ट बना दिया गया। 1924 म लेबर सरकार न उसे ऐडमिराल्टी का प्रथम लार्ड बना दिया। उसने और भी कई महत्वपूण पदो पर काम किया और 1932 म एकाएक उसकी मृत्यु हो गई। चेम्सफोर्ड के उत्तराधिकारी वायसराय रीडिंग न उसके विषय म लिखा मेरी समझ स उसमे वसे तो व्यक्तिगत आकषण और सदव्यवहार का अभाव था, जिसने उसके रास्ते को भूतकाल म कटकाकीण बनाया होगा पर उसम सच्चे उद्देश्य का न तो अभाव था और न भारत के लिए बहुत कुछ कर गुजरने की इच्छा की कमी।[3]

1 वही पृ 103।
2 कवीश्वर मान्य सिह इण्डियाज फाइट फार फ्रीडम 1936 प 109।
3 हारड एच० मान्टगोमरी लाड रीडिंग पृ 340।

5

मार्क्विस रीडिंग

(1921-1926)

वह लंदन के व्यापारी फिनले स्कवायर का लड़का था। उसकी माँ सारा डैनियल डेविस, रयुफस डैनियल आइजक्स की पुत्री थी। वह बाद में मार्क्विस आफ रीडिंग हो गया। रीडिंग का जन्म 10 अक्टूबर 1860 को हुआ। आइजक्स का परिवार यहूदी जाति से संबद्ध था। उसे यूनीवर्सिटी कालेज व स्कूल व ब्रसेल्स तथा हनोवर में शिक्षा मिली। पर वह इससे भी ऊँची डिग्री पाने में सफल न हो सका। फलस्वरूप 16 वर्ष की ही आयु में जहाज पर एक छोटी सी नौकरी कर ली। उसने इस तरह दक्षिणी अमरिका और भारत की यात्रा की। इंग्लैंड की वापसी पर उसने पारिवारिक धंधा करने का निश्चय किया पर सफल न हो सका। इस कारण 1887 में उसने वकालत करने का निश्चय किया और मिडिल टेम्पुल में कार्यरत हो गया। इसी वर्ष उसने एक हेम्बग व्यापारी की पुत्री एलिस कोहेन से विवाह कर लिया। वकालत में उसने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। यहाँ तक कि 1904 में जब वह एम० पी० हुआ तो उसकी वार्षिक आय 28 हजार पौण्ड की थी। कामन्स में अपनी सफलता के बाद उसे एस्क्विथ ने पहले सालिसिटर जनरल और फिर अटार्नी जनरल नियुक्त कर दिया। 1912 में उसे प्रीवी कौंसलर बना दिया गया और फिर कैबिनेट स्तर का मंत्री। दूसरे वर्ष उसे इंग्लैंड का लार्ड चीफ जस्टिस बना दिया गया। कुछ ही महीनों के बाद उसे लार्ड रीडिंग के [illegible] से धरा बना दिया गया। 1915 में उसे जी० सी० बी०, [illegible] व ओटावा में हाई कमिश्नर फिर यू० एस० ए० में [illegible]। अंतत: 1921 में लार्ड चेम्सफोर्ड के उत्तराधिकारी के [illegible] का वायसराय बना दिया गया।

वायसराय के पद पर उसकी नियुक्ति की [illegible] पत्रों ने आलोचना की क्योंकि वह यहूदी था। [illegible] पक्ष में थे क्योंकि उन्हें आशा थी कि [illegible] मस्तिष्क ठीक से समय पर [illegible] भारत के लिये रवाना हुआ तो उसने [illegible] करना न्याय का प्रतिनिधित्व करना है। [illegible]

नवीन सुधारा के अन्तगत शान्तिपूण एव मवैधानिक तरीके से काय करने की दिशा मे एकाग्र प्रयास करना चाहिए जो पहले मे ही पूणता की स्थिति म पहुच जाने को है।"[1]

भारत म राजनैतिक वातावरण को शान्त बनान के लिए उसने प० मदन मोहन मालवीय की सेवाओ का लाभ उठाया—जिन्होने गाधी व वायसराय के बीच साक्षात्कार करवाया। मई 1921 म शिमला म महात्मा ने 6 बार वायसराय से भेंट की। गाधी के बाह्य वशभूषा मे वायसराय तनिक भी आकृष्ट नहीं हुआ पर उनके धार्मिक और नैतिक विचारो की प्रशसा की। गाधी न सम्पूण भाव मे वायसराय के प्रति आदर व्यक्त किया। जब वायसराय ने गाधी से पूछा कि किस बात ने उन्हें सरकार के प्रति असहयोगी रुख अपनाने को बाध्य किया है, तो उन्होन कहा कि सरकार का प्रत्येक काय जो देखने में तो ठीक लगता है पर उसके पीछे भारत पर ब्रिटिश सरकार की सत्ता को और शक्तिशाली बनान का उद्देश्य है। उन्होंने कहा कि उनके वतमान दृष्टिकोण का यही प्रमुख आधार है। य बठकें अत्यधिक अच्छे वातावरण म हुई पर इससे असहयोग आन्दालन पर कोई प्रभाव नही पडा और वह चलता रहा।

17 नवम्बर 1921 का वल्स के राजकुमार भारत की यात्रा पर आय। उनके साथ उनके नवसना सहायक ए० डी० सी० सब-लेफ्टीनेंट लाड लुई माउन्टबटन भी आय जा बाद म भारत के अतिम वायसराय हुय। गाधी न अपन समथका स राजकुमार वेल्स के स्वागत म सहयोग न करने का आह्वान किया। सम्राट के उत्तराधिकारी ने पूरे महाद्वीप म पोलो खेल के मैदाना मे घोडा के टापा की आवाजे सुनी और खाली व सूनी सडका क दशन किये जो कि गाधी के हडताल आह्वान का परिणाम था। छ सप्ताह बाद बम्बई मे जब वह कलकत्ता पहुचा ता राजकुमार का मोह भग हुआ और उसे अपनी यात्रा पर होन वाले 25 हजार ब्रिटिश पौण्ड तथा लाखा भारतीय रुपये के व्यय पर शम आई। इस कारण ऐसा और हुआ कि यह यात्रा सफल नही मानी जा सकती थी। सच तो यह था कि बाद म राजकुमार ने खुले तौर पर माटग्यु से कहा कि भारत अब किसी गोरे आदमी के रहन योग्य नही रह गया है। समाचारपत्रा मे सबद्ध एक बडे व्यक्ति नाथक्लिफ न भी इसी तरह के भाव व्यक्त किये। उसन वायसराय म कहा कि भारत जस नीरस दश' की परवाह उस नही है। उसने पूछा 'हम भारत के लिय चाहत क्या हैं? प्रतिष्ठा? या शायद धन? पर निश्चित रूप मे इसमे हम कुछ नही मिल रहा। हमारे दश के हजारा योग्य लाग कहीं अन्यत्र और बेहतर काय कर सकते थ।"

भारत म राजकुमार वल्स की यात्रा असफल रही। पर जैसा हमन पहले

1 वही पृ 234।

ही देखा है कि गाधी का असहयोग आदोलन जो 1920 म ही प्रारम्भ हो गया था वह भी सफल नही हुआ। जैसे जसे आदोलन धीरे धीरे हिंसक होता गया, महात्मा ने इसे स्थगित कर दिया और खुलआम इसकी असफलता को स्वीकार कर लिया। 10 माच 1922 को उह पडयत्रकारी बताकर कैद कर लिया गया। रीडिंग ने इगलड के प्रधानमत्री को लिखा कि 'महात्मा साधु प्रकृति के व्यक्ति के स्थान पर राजनीतिज्ञ हो गया है।" वायसराय के अनुसार उसने मुस्लिम व पजाब असतोप का नेतृत्व प्राप्त कर लिया है और स्वराज के पक्ष मे एक सगठित आदोलन चलाने की चेष्टा कर रहा है। इस तरह उसकी शक्ति बढ गई है पर उतनी ही मात्रा म उसके राजनतिक विचारो न उसकी कठिनाइया बढा दी हैं।' तीन महीने मे स्वराज प्राप्ति की उसकी चुनौती अपूण रह गई है और समझदार लोग आश्चय से यह सोचने लगे है कि 'क्या वे आदोलन और उधम से अधिक कुछ प्राप्त कर सकेंगे?' 1924 मे गाधी का आत्रशोथ का आपरेशन हुआ। इस अवसर का लाभ उठाकर रीडिंग ने उह जेल से मुक्त कर दिया। उसे प्रसन्नता इस बात की थी कि गाधी पहले की तरह अब लोकप्रिय नही रह गये थे। वायसराय ने कहा, यह देखकर कितना कारुणिक लगता है कि गाधी की लोकप्रियता की शक्ति का कितना तीव्र पतन हुआ है और अब वे अपने अब तक के प्रस्तुत सभी सिद्धातो की कीमत पर उस नेतृत्व को प्राप्त करने के प्रयास म जुट हुये हैं।'

वायसराय ने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस और इसके नेता गाधी को कमजोर करने का हर प्रयास करते हुये विभाजित करके शासन करने की नीति अपनाते हुये मुसलमानो को फुसलाकर अपनी ओर मिलाया और लोकप्रिय राजनतिक आदोलन से उह अलग कर दिया। रीडिंग का विश्वास था कि यदि भारतीय मुसलमानो को शात किया जाना था तो तुर्की के मामले मे उह सतुष्ट किया जाना आवश्यक था। 28 फरवरी 1921 को सेक्रेटरी आफ स्टट माटेग्यु को उसने तार भेजा भारत सरकार समस्या की जटिलता से पूणतया परिचित है। पर युद्ध म भारत की सेवायें जिसम तमाम मुस्लिम सैनिको ने भाग लिया तथा पूरे देश म मुस्लिम समस्या को जो समथन मिल रहा है अत उनके न्यायोचित मागो के पूणतया पूरे किये जाने की आवश्यकता है।' उसने जोर दिया कि सवस की सधि म भारतीय मुसलमानो की इच्छानुसार कुछ परिवतन होना चाहिए और यह प्रस्ताव करते हुय कि इसे रद्द किया जाय उसन निष्कप रूप म कहा, भारत सरकार के लिए खुलेआम मुसलमानो का समथन करना इतना आवश्यक है कि हम उपरोक्त विवरण प्रकाशित करने की अनुमति चाहते हैं तुरत अनुमति दी जाय।[1] माटेग्यु ने शीघ्रता मे इस

1 वही पृ 327 372।

तार को प्रधानमंत्री लायड जार्ज से अनुमति प्राप्त किये बिना प्रकाशित करा दिया जिसके कारण उसे अपने पद से हाथ धोना पड़ा। पर इस विषय पर बार-बार किया गया रीडिंग का प्रयास अतत सफल हुआ। सेवस की संधि अतत परिवर्द्धित की गई और इसकी कठोर शर्तें या तो उदार बना दी गइ या समाप्त कर दी गईं। यह काय 1923 मे लौसाने में सम्पन्न हुआ।

मिण्टो की तरह रीडिंग का भी विचार था कि मुसलमानो को हिन्दुओ के विरुद्ध सतुलन के लिये तैयार किया जाना चाहिए। पर साथ ही वह राजाओ की एक तीसरी शक्ति पुनसगठित व शक्तिशाली करना चाहता था जो उप रोक्त दोनो शक्तियो के विरुद्ध सतुलन बनाये रखे। रीडिंग न राजाओ को लुभाने के लिए विशेष प्रयत्न किये और राष्ट्रवादी आन्दोलन के विरुद्ध एक शक्तिशाली प्रतिक्रियावादी शक्ति के रूप मे उन्हे तैयार किया। उसने कश्मीर[1] से प्रारम्भ करके कई राज्यो की सरकारी यात्रायें की। अपने पूर्ण वायसरायत्व काल म उसने 20 से अधिक राजाओ की मित्रता अर्जित की। मैसूर मे उसने हाथी का शिकार किया, महाराजा ग्वालियर के साथ प्रथम बार बाघ का शिकार किया तथा बीकानेर पटियाला और नवानगर के राजाओ के साथ मैत्री की। रीडिंग और उससे पूर्व के वायसरायो से प्रोत्साहन प्राप्ति के फलस्वरूप बीकानेर के महाराजा सर गगासिंह न भारतीय राजाओ के वार्षिक सम्मेलन को 'चैम्बर्स ऑफ प्रिंसेज' म बदल दिया। 1921 मे चम्बर्स ऑफ प्रिंसेज का उद्घाटन हुआ। इसमे 120 सदस्य थे जिसमें 12 लोग 127 राज्यो का प्रतिनिधित्व करते थे। अन्य राज्य इसके वैसे ही सदस्य थे। पर 327 राज्यो को प्रतिनिधित्व नही प्राप्त हुआ। यह चैम्बर प्रारम्भ मे वर्ष मे एक बार एकत्रित होता था जिसका सभापतित्व वायसराय करता था। इसका एक चासलर चुना जाता था जो वायसराय की अनुपस्थिति म सभापतित्व करता था। वह चम्बर की स्टैण्डिंग कमेटी का स्थायी प्रेसीडेन्ट भी होता था जिसकी बैठक दिल्ली म वर्ष म दो बार होती थी और वह चैम्बर के समक्ष वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करता था। इसके अतिरिक्त राजा दिल्ली सत्र म आने पर औपचारिक सम्मेलन भी करते थे।

वैसे तो चैम्बर एक विचार विमर्श करने वाली सभा से अधिक कुछ नही कर सका, पर इससे राजा सगठित हो गये और वे सरकार से सीधे बातचीत करने की स्थिति म हो गये और अपने हित के कार्यो म भी लग गये और इसके अतिरिक्त साइमन कमीशन न कहा 'चम्बर्स ऑफ प्रिंसेज की स्थापना ने सम्राट और राज्यो के बीच सम्बन्ध स्थापना म एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसने पहले की नीति से हटकर एक नयापन भी जोड़ा जिसके अनुसार

1 देखें बटलर इरिम द वायसरायज वाइफ प 146-149।

सम्राट का उद्देश्य यह रहता था कि सामूहिक कार्यवाही को हतोत्साहित किया जाय और राज्यों में सामूहिक विचार विमर्श को प्रोत्साहित किया जाय तथा एक राज्य को उसके पड़ौसी राज्य से अलग न माना जाय।'

अक्टूबर 1924 में जो सामान्य चुनाव हुये उसमें अनुदारवादियों की जीत हुई और बाल्डविन इंग्लैंड में नेता हो गया। लार्ड बर्कनेहेड को भारत का सेक्रेटरी आफ स्टेट बनाया गया। वह तो वह भारत कभी नहीं आया था पर भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में उसका अध्ययन विस्तृत था। भारतीय समस्या के प्रति उसका मूल्यवान रुचिकर होगा जिसका प्रभाव भारत सम्बन्धी-वायसराय के दृष्टिकोण पर भी पड़ा। माटग्यु सुधार की चर्चा करते हुये उसने वायसराय को सूचित करते हुये लिखा, कि भारत, आयरलैंड व मिस्र में युद्ध के कारण, कोई अपनी कमजोरी के कारण नहीं हमने बहुत कुछ दे दिया है, इस कारण यदि आप किसी बात के समर्थन में कड़ा रुख अपनाते हैं तो हमारा समर्थन खो सकते हैं। पुनः मैं यह नहीं सोच पाता कि भारत कभी भी स्वशासन के योग्य सिद्ध होगा। अतः हमारी स्थिति इसलिए मजबूत है क्योंकि हम भारत में भारतीयों के हित के लिये हैं। इस स्थिति की सत्यता का प्रमाण यह है कि उस महाद्वीप में जहां हम शासन कर रहे हैं वहां अनेक राष्ट्रीयता व धर्म के लोग हैं। मैंने, जैसा कि आप जानते हैं माटग्यु चेम्सफोर्ड सुधार को न तो पसंद किया और न विश्वास किया। मैंने द्वितन्त्र पर अविश्वास किया वैसे मैंने यह अनुभव किया कि द्वितन्त्र को पश्चिमी संसदीय संस्था के स्थान पर लाने का प्रयास अभिनव है जो पूर्वी जनसंख्या पर किया जा रहा है और जो इसे झेलने के लिए पूर्णतया अशिक्षित है।"[1]

'एक प्राय दुहराई जाने वाली घटना का जिक्र यहां किया जा सकता है। वायसराय भवन (शिमला) में एक शाम नृत्य के अवसर पर श्रीमती रीडिंग ए० डी० सी० से मुखातिब हुई जिसको प्रथम रात ड्यूटी दी गयी थी और उससे पूछा कि बैंड की आवाज कौनसी धुन बजा रहा है। ठीक उसी क्षण धुन रुक गयी। एक मिनट की चुप्पी के बाद ए० डी० सी० ने जो बात फुसफुसाकर कही वह बालरूम तक स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ी अब आप मेरा नाम भी याद न रखेंगी तब भी मैं आपका चुम्बन स्मरण रखूंगा। वहां एकत्रित लोगों पर इसका प्रभाव कितना सनसनीखेज हुआ होगा इसकी कल्पना ही की जा सकती है।'

1 हाइड एच माटगोमरी लार्ड रीडिंग पृ 381 383।
2 वही पृष्ठ 348।

पार्टी के लिये रास्ता साफ कर दिया। 2 नवम्बर 1922 की सरकार की यह घोषणा कि संविधान में शीघ्र परिवर्द्धन संभव नहीं है, गवर्नर जनरल रीडिंग का राजाओं के 'प्रिंसेज प्रोटेक्शन एक्ट' को कानून में बदलना जब कि सदन ने इसे अस्वीकार कर दिया था और उसका नमक कर को दूना करने के लिए असाधारण शक्ति का प्रयोग जब कि बजट के इस मद को सदन ने अस्वीकार कर दिया था—ये कुछ सरकारी कदम थे जिसमें सरकार के अतर्कपूर्ण कठोरता के दर्शन होते थे।

22 अगस्त 1922 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री लायड जार्ज का 'स्टील फ्रेम' विशेषण से विभूषित भाषण भी इस संगठन को बनाने में कम सहयोगी नहीं हुआ। उसका इण्डियन सिविल सर्विस का गुणगान और यह जोर देना कि इसका बहुत दिनों तक भारतीय प्रशासन पर प्रभाव रहेगा, कुछ भारतीय नेताओं को यह सोचने को बाध्य करने लगा कि सरकार की ऐसी नीति के समक्ष सहयोग असंभव है और उसके विरोध को रोक टोक की नीति से ही लाभ हो सकता है।[1] अफ्रीका में कीनिया क्षेत्र के क्राउन कालनी में भारतीयों के साथ जो अन्याय हुआ उस संबंध में भारतीय सरकार की असफलता ने उन्हें क्षुब्ध कर दिया। सरकार की नीति ने स्वराजियों को उत्तेजित कर दिया। भारत में प्रगतिशील आंदोलन के विरुद्ध प्रतिक्रियावादी राजाओं को दी गई शक्ति ने भी इसके लिये भूमि तैयार की।

एक दूसरी बात यह भी थी कि मुस्लिम समुदाय को अहिंसावादी आंदोलन के सिद्धान्त के नैतिक पक्ष को समझने में कठिनाई हो रही थी। अहिंसा उनके दर्शन के ही विपरीत पड़ता था। यदि प्रारंभ में इसे उन्होंने स्वीकार किया तो ऐसा खिलाफत आंदोलन के लिए हिन्दू समर्थन प्राप्त करने के लिये ही उन्होंने किया। पर जब इस सहायता की आवश्यकता न रही तो अहिंसा की कीमत घटती गई और अन्त में यह उनके लिये हास्यास्पद हो गया। और अंतत गांधी का वह तात्कालिक निर्णय सामने आ गया जिसमें उन्होंने इतनी बड़ी आशा से प्रारम्भ किये गये असहयोग आंदोलन को स्थगित कर दिया। एक निराशापूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई और मोती लाल नेहरू और लाला लाजपतराय ने जेल में गांधी को उनके निर्णय की भर्त्सना में पत्र लिखे। 24 फरवरी 1922 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में गांधी को घोर आलोचना झेलनी पड़ी। अपनी नीति के पक्ष में उनका तर्क सफल नहीं हुआ और इस तरह सहयोगियों और असहयोगियों के बीच की खाई और चौड़ी हो गई।

इस तरह ये परिस्थितियां थीं जिनमें स्वराज पार्टी का संगठन स्थापित

---

1 देखें बोस एस सी द इण्डियन स्ट्रगिल पृ 143।

हुआ।

1922 के अन्त में गया में कांग्रेस का सम्मेलन हुआ। सी० आर० दास इसके अध्यक्ष थे जिन्होंने सरकार से लड़ने के उद्देश्य से विधायिका में पहुंचने का आह्वान किया और वहीं पर जाकर सरकार का काम ठप करने की चेष्टा करने को कहा। पर गांधी के समर्थक चूंकि अधिक थे इसलिए उनका यह मत समर्थन नहीं जुटा सका। सी० आर० दास ने इस्तीफा दे दिया और यह घोषणा की कि वे स्वराज पार्टी की स्थापना करेंगे जो चुनावों में भाग लेगी। मोती लाल नेहरू ने उन्हें पूर्ण समर्थन दिया और इस तरह स्वराज पार्टी की स्थापना हुई जो इसके संगठनकर्ताओं के अनुसार सरकार से संसदीय मैदान में लड़ने की तैयारी करने लगी।

सितंबर 1923 में मौलाना आजाद के नेतृत्व में दिल्ली में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। इस समय तक स्वराज पार्टी के पक्ष में परिस्थिति ने और मोड़ ले लिया था। इन्हीं दो सत्रों के बीच सदन के विरोध के बावजूद नमक कर दो गुना कर दिया गया था। जो सरकार से भिड़ना चाहते थे इस तरह शक्ति प्राप्त करने लगे और 'कौंसिल में प्रवेश' की योजना को कांग्रेस ने भी औपचारिक रूप से स्वीकार कर लिया। फरवरी 1924 में गांधी जेल से रिहा किये गये। उस समय उन्होंने कांग्रेस की नई योजना को असंतोषजनक बताया। पर परिस्थितियां ऐसी थीं कि उसमें जनता का असहयोग के लिए तैयार करना कठिन था। इसीलिए 1925 में एक तरह का समझौता हो गया जिसके अंतर्गत कांग्रेसियों को यह अधिकार प्रदान किया गया कि वे यह स्वयं तय करें कि वे कौंसिल में प्रवेश चाहते हैं या कौंसिल के बाहर रहकर रचनात्मक कार्य करना चाहते हैं। गांधी ने 1924 में स्वराजियों को बेलगाव में आशीर्वाद दिया और इस तरह रास्ते से अंतिम रोड़ा दूर हो गया।

स्वराजियों का कार्यक्रम

जहां तक स्वराज पार्टी के कार्यक्रम का संबंध है, इसकी घोषणा 1923 के चुनाव घोषणा पत्र में की गई। बताया गया कि कौंसिल में प्रविष्ट होते ही यह मांग की जायगी कि भारतीयों को अपनी सरकार पर नियंत्रण का स्वयं अधिकार प्राप्त हो। यह कहा गया कि चुनाव में सीटें जीतना आवश्यक है जिससे कि गलत व्यक्ति सदन में न पहुंचें और वे ब्रिटिश सरकार से सहयोग करना प्रारम्भ कर दें। स्वराजियों को यह आशा थी कि चुनावों में भाग लेकर व जनता में एक नई आशा का संचार करेंगे। कौंसिल में प्रवेश के बाद उनकी यह योजना थी कि मोण्टफोर्ड सुधारों को बेकार करार दिया जाय और

प्रशासन को ठप कर दिया जाय। व सरकारी समारोहा म न सम्मिलित होने का भी निश्चय कर चुके थ। सरकारी कायक्रमा या सरकारी अधिकारियो के स्वागत के कायक्रमो के बहिष्कार का भी उनका निश्चय था।

पर उनके कायक्रम का और रचनात्मक पक्ष था कि व सविधान की प्रगति के लिए प्रस्ताव पेश करेंगे। वे ऐसे कानून का प्रारूप भी प्रस्तुत करेंगे जिससे सभ्यता का विकास हो। कौंसिल के बाहर व गाधी के रचनात्मक कायक्रमो म सहयोग करेंगे। और उन्होने यह भी वादा किया कि यदि उनका सरकार को गिराने का कायक्रम सफल नहीं हुआ और वे उस भारतीय चिन्तन के अनुसार मोड नही पाये तो व वापस आ जायेंगे और गाधी के काय क्रमो म सम्मिलित हो जायेंगे।

चुनाव के मदान मे

1919 के नवीन सविधान के अतगत 1923 म स्वराजियो ने दूसरा चुनाव लडा। इस चुनाव म उन्होन 145 सीटो म स 45 सीट प्राप्त की और केन्द्रीय एसेम्बली म वे सबसे बडे दल के रूप म सामने आय। इनमे अनु शासन भी खूब था। वस तो उन्ह काय हेतु बहुमत नही मिला, पर नेशनल पार्टी तथा आजाद लोगो के सहयोग स ब्रिटिश सरकार का काय करना इन्होने कठिन कर दिया। प्राता के चुनावो म स्वराजियो न मध्य प्रात म पूरा बहुमत प्राप्त कर लिया बगाल म प्रातीय एसम्बली म व सबस बड दल के रूप म उभरे, अन्य स्थानो पर उनकी सफलता बहुत महत्वपूण नहीं थी।

उनके काय

जहा तक मध्य प्रात मे स्वराजियो के काय का सबध था, चूकि वे स्पष्ट बहुमत म थ इस कारण द्वितन का कायकलाप सचमुच असभव कर दिया गया और गवनर को परिवर्तित विषयो का नियत्रण अपने हाथो मे लेना पडा। बगाल म भी कुछ मुस्लिम सदस्य सी० आर० दास के समथन म आ गये इस कारण वहा भी द्वितत्र का काय करन म कठिनाई उत्पन्न की गई। 29 फरवरी 1924 को सी० आर० दास ने घोषणा की कि वह सरकार के साथ तब तक सहयोग नहीं करेगे और बगाल के मत्रिमडल म सम्मिलित नही होंगे जब तक तत्कालीन सवैधानिक रूपरेखा मे परिवतन नहीं किया जाता पर शेष प्राता म जहा स्वराजियो को पर्याप्त सीटे नही मिली, उनके इक्के दुक्के सदस्यो ने विधान सभा म सविधान म परिवतन की माग बार-बार उठाई।

केन्द्रीय सदन म 1924 म स्वराजियो ने यह प्रस्ताव रखा कि सरकार

शीघ्र ही सविधान मे परिवतन करे और इस उद्देश्य के लिए प्रस्ताव प्राप्त करने के लिये एक गोलमेज सम्मेलन आयोजित किया जाय। इस सम्मेलन मे ब्रिटिश भारतीय प्रतिनिधियो के साथ बठें और सस्तुतिया प्राप्त करें। इन प्रस्तावो को केन्द्रीय असेम्बली से पारित किया जाय और फिर इसे ब्रिटिश ससद मे कानून बनाने के लिये प्रेषित किया जाय।

इस बीच चुनावो म इग्लण्ड मे मजदूर दल की विजय हो गई भारत के प्रति सहानुभूति रखन वाले रैम्जे मैकडानल्ड जनवरी 1924 म ब्रिटिश प्रधानमत्री हो गय। यह आशा की जाती थी कि केन्द्रीय सदन से पारित प्रस्ताव उसके द्वारा सहानुभूति व समथन प्राप्त करेगा। पर स्वराजी हतोत्साहित थे। उनका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया और उन्होंने सरकार के प्रति अपना रख कठोर कर दिया। इस तरह उनके प्रयासो से 1924 25 मे एसेम्बली ने आर्थिक बिल को पारित नही होने दिया। इस पर गवनर जनरल रीडिंग ने अपने विशेषाधिकार से इसे कायरूप मे बदला। इसी तरह की कायवाही गवनर जनरल को 1925 26 व 1926 27 के अपारित बजटो के सबध म भी करनी पडी। स्वराजियो न सरकार के गहन विरोध के बावजूद 1818 के तीसरे नियम के वापसी का प्रस्ताव पारित कराने म सफलता प्राप्त की जिसम कुछ राजनीतिक कदियो की रिहाई का प्रश्न निहित था। सदन त्याग आम बात थी सरकार के सगठनो की सदस्यता से इन्कार प्राय होता था और गवनर जनरल स सबधित कायक्रमो का बहिष्कार प्राय किया जाता था। ऐसा भी नही था कि सरकार पर इसका प्रभाव न पडा हो। सरकार म कटटरपथी भी इसस हिल गये और फरवरी 1924 म प्रसिद्ध गह सदस्य सर अलेक्जाडर मुद्दीमैन के नतृत्व म मुद्दीमन रिफाम इनक्वायरी कमेटी की स्थापना कर दी गई जिस द्वितन की काय शली पर रिपोट देनी थी।

मुद्दीमन कमेटी रिपोट

इस तरह मुद्दीमैन कमेटी' स्थापित हो गई। कुछ भारतीयो को भी इसम सम्मिलित होन के लिए आमत्रित किया गया। वैसे तो मोतीलाल नहरू ने इसे अस्वीकार कर दिया, पर सर तेजबहादुर सप्रू और एम० ए० जिन्ना इसम सम्मिलित हो गय। पर समिति म सरकारी बहुमत बनाय रखा गया। 1919 के एक्ट के अन्तगत होने वाले सुधार के सम्बन्ध म छानबीन की गई पर सरकारी बहुमत गैर सरकारी अल्पमत स इस छानबीन की रिपोट पर सहमत नही हो पा रहा था। इस कारण दो रिपोर्टें तयार की गट। सरकारी बहुमत की रिपोट न द्वितन व्यवस्था की प्रशसा की और कुछ इधर-उधर

थोडा सा परिवर्तन करके इसे चलते रहने की संस्तुति की। पर अल्पमत रिपोर्ट में द्वितन्त्र को कार्यरूप में परिणत न होने योग्य पद्धति मानते हुए इसकी भर्त्सना की गई और इसे शीघ्र से शीघ्र समाप्त करने की संस्तुति की गई। अल्पमतीय रिपोर्ट के अनुसार द्वितन्त्र ठीक से कार्य नहीं कर रहा था और 'हमारे विचार से उचित प्रश्न यह था कि क्या कोई और अन्य व्यवस्था सम्भव थी या इस संविधान को अस्थायी रूप से चलने देकर इसमें कुछ धारायें जोड़कर उत्थान के मार्ग को प्रशस्त करते हुये सरकार का स्थायित्व और जनता का सहयोग बनाये रखा जाय।'[1] सरकार ने बहुमत की रिपोर्ट को स्वीकार किया और उसकी संस्तुतियों के आधार पर कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। सितम्बर 1925 में इस तरह केन्द्रीय विधान सभा में इस रिपोर्ट को विचारार्थ प्रस्तुत किया गया। प० मोतीलाल नेहरू ने द्वितन्त्र पद्धति की घोर आलोचना वहां प्रस्तुत की। उन्होंने वहां एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया जो सरकार के विरोध के बावजूद बहुमत से पारित हो गया। इस प्रस्ताव में अन्य बातों के अतिरिक्त निम्न मांगें की गई—

(अ) वर्तमान संविधान में सरकार को उत्तरदायी बनाने के लिये कुछ परिवर्तन तुरन्त तात्कालिक रूप से किया जाना चाहिए और (ब) एक गोलमेज सम्मेलन बुलाकर इस उद्देश्य के लिये योजना तैयार की जानी चाहिये जिसे सदन के समक्ष रखकर उसका अनुमोदन किया जाना चाहिये और फिर ब्रिटिश संसद में अनुमोदनार्थ उसे प्रेषित किया जाना चाहिए। पर सरकार भारतीय इच्छाओं का विरोध करती रही और 24 जनवरी 1924 को लार्ड रीडिंग ने यह घोषणा की कि ब्रिटिश संसद इन दबावों के आगे घुटने नहीं टेकेगी। पर फिर भी स्वराजियों की कार्यवाही बेकार नहीं गई। लार्ड रीडिंग की घोषणा को 8 माह भी नहीं बीते कि गृह सरकार ने 1919 के 'रिफार्म ऐक्ट' के अन्तर्गत वादे के अनुसार 'रॉयल कमीशन' की नियुक्ति की घोषणा की। एक्ट के अन्तर्गत निर्धारित अवधि से दो वर्ष पूर्व ही यह कार्य कर दिया गया।

एक मूल्यांकन

इस पार्टी के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए श्रीमती एनी बेसेन्ट ने लिखा है 'असेम्बली में स्वराज पार्टी की सफलता ने देश में एक विस्मयकारी स्थिति पैदा कर दी है। चुनाव के पूर्व वे शेरों की तरह दहाड़ते थे, अब वे कूजते पडकियों से भी अधिक शांत हो गये हैं।' पार्टी का मुख्य उद्देश्य स्वराज था, पर जिस क्षण वे एसेम्बली में प्रविष्ट होते थे यह उद्देश्य तुरन्त भुला

1 रिफार्म इन्क्वायरी कमेटी रिपोर्ट पृ 201 03।

दिया जाता था । उच्च आदश से नीचे से की ओर उनका खिसकना इसी से सिद्ध है कि वे भारत के लिय एक नवीन सविधान की रचना हेतु एक सम्मेलन करने का प्रस्ताव ल आय और इस सम्मेलन मे वे सरकार को 1/3 सीटें देने को भी तयार हो गये । श्रीमती एनी बेसेन्ट ने कहा, "यदि मैं एक स्वराजी होती तो मैं जोर स चिल्ला पडती और कहती कि उन्हे सरकार ने खरीद लिया है ।"[1]

सच तो यह था कि व सब, जिन्होने पार्टी मे प्रवेश किया और उसके माध्यम से एसेम्बली म पहुचे राष्ट्रीय हित के लिये समर्पित नही थे । इसमे सन्देह नही कि 1924-26 म स्वराजियो न जेल की यातनाएँ की पर उनमे से सभी को लाठी की चोट नही आई । उनम स बहुत से एसेम्बली के सदस्य होने के योग्य नही थे । ये लोग सामाजिक और राजनतिक क्षेत्र मे उच्च पदो की आकाक्षा रखते थे और राष्ट्रीय आजादी उनके लिय गौड थी । पर स्वराजी पराकाष्ठावादी कदम उठाने मे सक्षम नही थे । इसी कारण ससदीय पद्धति को माध्यम के रूप मे उन्होंने अपना कायक्षेत्र चुना । इसीलिये आश्चय नही कि सदन म प्रवेश करते ही वे पुरानी बाते भूल जाते थे । उनमे से एक महत्वपूण वग उत्तरदायी सहयोग का पक्ष लेने लगा । इस कारण वे लोग जो पूण रोक छक म विश्वास करते थे उन्हे यह पसन्द नही आया जिसके कारण उनमे विभाजन की सभावनाये नजर आन लगी ।

सच ता यह था कि वह पूण नीति जिस स्वराजी अपनाना चाहते थे उसके पीछे सदेच्छा भी नही थी और अच्छा उद्देश्य भी नही था । वे प्रशासकीय मशीनरी को रोक देना चाहत थे । पर वह प्रशासकीय मशीनरी जो चल रही थी उसे रोकना सरल न था और इससे स्वराजियो की महत्वाकाक्षा को आघात लगता था । सरकार कहीं भी रुकने की स्थिति म नही आई । यहाँ तक कि मध्य प्रान्त और बगाल जहा वे बहुमत म थे सरकार पूववत काय करती रही ।

1925 म सी० आर० दास की मृत्यु ने पार्टी को बहुत कमजोर कर दिया । कहा जाता है कि अपने जीवन के सध्याकाल म उन्हे भी रोक छेंक के दशन पर सन्देह होने लगा था । फिर भी इस तरह की नीति उन्ही सदनो म लाभ के साथ चल सकती थी जहाँ स्वराजियो का बहुमत हो । पर ऐसे प्रान्तो म जहा उनका बहुमत नही था वहा उनकी रोक-टोक की नीति बेकार थी ।

इसके अतिरिक्त गाधी के कट्टर समथको का विरोध भी उन्हे झेलना पडता था । प्रारम्भ म स्वराजियो के पास जो साहस था वह धीरे धीरे ढीला

1 बसेण्ट ए, इण्डिया दट शल बी प० 59 ।

पडने लगा। सरकार की ललचान वाली नीतियाँ भी अपना प्रभाव डाल रही थी और धीरे धीरे स्वराजी यह अनुभव कर रह थ कि औद्य मूंदकर सरकार का विरोध करना दशहित म नही है।

पर एक अन्य बात एकाएक सामने प्रकट हुई। जब तक खिलाफत समस्या का कोई समाधान नही हुआ हिन्दू और मुसलमान आपस मे कधे स कधा मिलाकर लडत रहे। पर तुर्की म 1922 म खिलाफत की समाप्ति के बाद अधिकतर भारतीय मुसलमाना के लिए कोई लालच देने का साधन न रहा कि व हिन्दुओ स मिलकर भारतीय समस्याओ के लिय लडें। खिलाफत आन्दोलन के समय मुस्लिम लीग लगभग नही दिखी थी पर अब वह फिर सासें लेन लगी। सरकार की 'बाँटो और राज करो' की नीति और सरकारी एजेन्टो द्वारा भेदभाव फैलान के प्रयास के कारण हिन्दू मुस्लिम भेदभाव बढ गये। असहयोग आन्दोलन जो हिन्दुओ मुसलमानो को निकट लाने का एक कारण था अब फीका पडता जा रहा था। इस तरह धीरे धीरे हिन्दुओ और मुसलमानो का भेदभाव बढता ही गया। 1922 मे मोपला विद्रोह में हिन्दुओ की हानि हुई और 1923 म 11 हिन्दू मुस्लिम दग हुय। इन दोनो वर्गों मे राजनतिक एकता एक भूतकाल की चीज लगने लगी। स्वराज पार्टी इस स्थिति म रोक-टोक की नीति अपनाकर सरकार स अपने को दूर करने का खतरा नही मोल लेना चाहती थी। क्योकि ऐसा करने स सरकार मुस्लिम लीग को अपनी ओर मिलाकर और हिन्दू व मुसलमानो म भेदभाव की खाई को बढाकर कठिनाई पदा कर सकती थी। और पुन गाधी भी तो स्वराजियो से प्रसन्नमन नही थे। 5 फरवरी 1924 को स्वास्थ्य के आधार पर उन्हें जेल से रिहा किया गया तो वे पुन जनता के बीच बडी तजी से लोकप्रिय होने लगे। उनकी रचनात्मक कायवाहियो और हिन्दू व मुस्लिमो मे एकता लाने के उनके प्रयास न उनके प्रति सामान्य सद्भाव ही नही उत्पन्न किया बल्कि 1925 म उनके द्वारा हिन्दू और मुसलमानो के साम्प्रदायिक दगो मे भाग लेन के पाप से मुक्ति के लिये आत्म कष्ट प्राप्ति के प्रयास ने उन्ह पुन एक लोकप्रिय राष्ट्रीय नेता बना दिया।

दूसरी ओर स्वराजियो की स्थिति धीरे धीरे खराब होती गई। उनकी रोक टोक की नीति तेजी से परिवर्तित होने लगी। 1924 मे इन्ही परिस्थितियो म उन्होन 'स्टील प्रोटेक्शन कमेटी' की सदस्यता स्वीकार कर ली। 1925 मे स्कीन कमेटी' बनी जिसका उद्देश्य सेना का भारतीयकरण था। इसकी सदस्यता प० मोती लाल नेहरू ने स्वीकार की। मि० वी० जे० पटेल न केन्द्रीय एसेम्बली का स्पीकर का पद स्वीकार करन म कोई आपत्ति नही मानी। एस० बी० ताम्बे मध्य प्रान्त के कायकारिणी के सदस्य हो गये।

और इस सबने धीरे धीरे स्वराजिया की शेर की गजना की नीनि को समाप्त कर दिया। नि स्वार्थी कायकर्त्ताओ को स्वेच्छापूण साहसी व्यक्ति माना जाने लगा। 1926 के चुनावो मे स्वराजियो की स्थिति अच्छी नही रही। उनकी सारी प्रतिष्ठा जाती रही और गाधी धीरे-धीरे लोकप्रिय होते जा रहे थे और 1926 तक वे पुन काग्रेस के निर्विवाद नेता हो गये थे।

इस तरह स्वराज पार्टी असफल हो गई। पर स्वराज पार्टी के काय व सफलताओ की आलोचना करते समय हमे यह स्मरण रखना चाहिये कि परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुये जब इनका सगठन हुआ उस समय इन्होंने राष्ट्रीय हित व सेवा के कुछ काय अवश्य किये। यह पार्टी उस समय बनी जब गाधी का असहयोग आदोलन असफलता की कगार पर पहुँच गया था। जनता के बीच प्रस्फुटित उत्साह को कोई दिशा नही मिल रही थी जिससे होकर वे उसका प्रदर्शन कर सकें। स्वराज पार्टी ने ही भारतीय जनता को विकल्प मे रास्ता व कायक्रम प्रदान किया। इस तरह जनता का उत्साह बनाये रखा गया और सरकार के विरोध की भावना बनाये रखी गई जिसके कारण सरकार के साथ उदारवादियो के सहयोग की भावना को आघात पहुँचा। इससे स्वराजियो की महत्ता म भी वृद्धि हुई क्योकि उन्होने सरकार के अनुत्तरदायी और निरकुश विचारो के विरुद्ध विधान सभाओ मे प्रस्ताव रखे। सरकारी बजटो की अस्वीकृति और पूर्ति मे इन्कार ने स्वराजियो की प्रतिष्ठा बढा दी थी क्योकि इससे जहा एक ओर सरकार की प्रतिष्ठा गिरी वही साथ ही जनता भी जागृत हुई। हम यह भी नही भूलना चाहिय कि सरकार के सामने गोलमेज सम्मेलन करने का प्रस्ताव जिसे 1930 म सरकार ने स्वीकार किया, स्वराजी ही प्रारम्भ मे लाये थे। मुद्दीमन कमेटी की स्थापना भी इन्ही की सफलता थी। अल्पमतीय रिपोट भी इन्ही की मूल्यवान देन थी जिसने अतत द्वितत्र व्यवस्था को दफन कर दिया। समय से दो वय पूव साइमन कमीशन की नियुक्ति भी इन्ही की सफलता थी। इस तरह, स्वराजियो ने भले ही आशानुरूप पूरा काय न किया हो, पर भारत के स्वतन्त्रता सग्राम म एक खाली स्थान को उन्होने भरा जिसके अभाव मे स्वतन्त्रता की प्राप्ति कुछ और दिनो के लिये टल सकती थी।

इस अध्याय को समाप्त करने से पूव स्वराज पार्टी के सम्बन्ध म लार्ड रीडिंग को लिखे गये सेक्रेट्री आफ स्टेट वर्केनहेड के पत्र का हवाला देना उपयुक्त होगा जिससे इस पार्टी के प्रति सरकारी दष्टिकोण का परिचय मिलता है 'इस कार्यालय के और आपके निष्कर्षों मे कोई भेद नही है। मेरा भी अभिमत वही है। मैं कई चिह्न देख रहा हूँ जिससे लग रहा है कि स्वराजी फिसल रहे हैं। मेरी दष्टि मे उन्ह न तो यह पता है कि वे कहाँ हैं और न

यह कि वे कहा जा रहे हैं। उनके व स्वतत्र उम्मीदवारो के बीच मतभेद आशा के विपरीत एक अच्छी बात है। मुझे आशा है यह और बढेगा। पर मेरी आशा का सबसे उच्च व स्थायी केन्द्र सदव बनी रहन वाली साम्प्रदायिकता है। जितना ही हिन्दू राजनतिक प्रगति करता जायेगा मेरे मत म, मुसलमान उतना ही उसके प्रति अविश्वासी व विरोधी होता जायेगा। पूरे विश्व के सभी सम्मेलन इस खाई को नही पाट सकत और इन दो सम्प्रदायो के बीच बनी दरार किसी भी आधुनिक राजनतिक इजीनियरिंग के तरीके से समाप्त नही हो सकती।'[1]

1926 म रीडिंग भारत से पदमुक्त हो गये और उन्हें मार्क्विस का पद प्रदान किया गया। उन्होने बाद म भी भारतीय मामलो म रुचि बनाये रखी और उनका मत था कि भारत को स्वतत्रता नही प्रदान की जानी चाहिये। 1930 मे लिबरल प्रतिनिधि के रूप मे भारतीय गोलमेज सम्मेलन मे वे सम्मिलित हुय। दूसरे वष उन्हें विदेश सचिव का पद प्राप्त हो गया और राष्ट्रीय सरकार के अन्तगत उन्हें हाउस आफ लाडस का नेतापद प्रदान किया गया। पर इस पद पर वे कुछ महीने ही रह पाये। 1930 म उनकी पत्नी का देहावसान हो गया। अगले वष उन्होन स्टला से विवाह किया जो उनकी पत्नी की व्यक्तिगत सचिव रही थी। 1935 म दिसम्बर माह म 75 वष की आयु म उनका देहान्त हो गया।

1 हाइड एच माण्टगोमरी लाड रीडिंग प 38।

3

लार्ड इरविन

(1926-1931)

एडवर्ड फ्रेडरिक लिन्डले वुड जो बाद मे लार्ड इरविन और अर्ल आफ हैलीफाक्स कहलाया, 16 अप्रैल 1881 को पैदा हुआ। उसके पिता का नाम चार्ल्स द्वितीय विस्काउण्ट हैलीफाक्स था और वह उसका चौथा पुत्र था। उसकी मा लेडी एग्नीज एलिजबेथ कोर्टेने एक अच्छे परिवार से सबद्ध थी और देवोन के ग्यारहवें अर्ल विलियम की अकेली पुत्री थी। एडवर्ड वुड की शिक्षा ईटन और क्राइस्ट चर्च मे हुई जहाँ उसे 'फेलो आफ आल सोल्स' चुना गया। वह अभी लडका ही था कि उसके सभी बडे भाई मर गये और वह अपने पिता के पदो का उत्तराधिकारी हो गया। उसने 28 वर्ष की आयु मे लेडी डोरोथी आनस्लो जो आनस्लो के चौथे अर्ल की पुत्री थी से विवाह किया। 1910 मे वह ससद सदस्य हो गया और थोडे ही दिनो मे अपने साहस व गुणो के लिए प्रसिद्ध हो गया। 1917 मे वह राष्ट्रीय सेवा मत्रालय मे सहायक सचिव हो गया। 1921 मे उसे उपनिवेश कार्यालय मे अडर सैक्रेट्री के पद पर भेज दिया गया और 1922 मे वह प्रीवी कौंसिलर व बोर्ड आफ एजूकेशन का प्रेसीडेंट बना दिया गया। दूसरे वर्ष उसे कृषि व मत्स्य विभाग का मत्री बना दिया गया और इसके दो वर्ष के बाद उसे भारत मे लार्ड रीडिंग का उत्तराधिकारी वायसराय बना दिया गया। अप्रैल 1926 मे वह इग्लण्ड से भारत यह पद ग्रहण करने के लिये रवाना हुआ।

जसा कि हम देख चुके है भारत मे 1917 म माटेग्यु घोषणा के अतगत चरणो मे उत्तरदायी सरकार की स्थापना का वायदा किया गया था और यह कहा गया था कि इस दिशा मे शीघ्र ही कार्यवाही होगी। 1919 के सुधार अधिनियम के अतगत प्रा तो मे द्वितत्र की स्थापना हुई थी। ब्रिटिशो ने 1917 के वादे के अनुसार जो काय किया उससे उग्रवादी नेता तक सतुष्ट हो गये और बालगगाधर तिलक ने चुनाव मे अपने को एक अभ्यार्थी के रूप मे खडा किया। वैसे तो 1919 मे जो ससदीय प्रणाली सामने लाई गई वह काफी कटी छटी थी, पर इसे काग्रेस तक ने स्वीकार करने का निश्चय किया और चुनावो मे अपने अभ्यार्थी खडे किये। पर जल्दी ही रौलट एक्ट और जलियावाला बाग के हत्याकाड ने परिस्थिति म जो परिवतन ला दिया उसके

कारण गाधी ने अहिंसात्मक असहयोग का अभिनव आदोलन प्रारभ किया। राजनीति मे विरोध का यह तरीका इस विश्वास पर आधारित था जिसे गाधी ने स्वय बताते हुए कहा कि, 'एक अग्रेज आपका आदर तब तक नही करता है जब तक आप उसके समक्ष खडे न हो जाय। फिर वह आपसे प्रसन्न होता है। वह आपकी शारीरिक शक्ति से नही डरता। पर यदि आप उसकी अन्तरात्मा को प्रभावित करें तो उससे वह बुरी तरह डरता है। उसे यदि आप यह बतायें कि वह गलती कर रहा है तब भी वह डरता है। प्रारभ मे तो वह गलत काय करने के लिये डाटा जाना ठीक नही मानता है, पर वह इस पर विचार करता है और यह बात उस पर प्रभाव जमा लेती है और वह जब तक उसे ठीक नही कर सता, उसे तकलीफ होती रहती है।'[1]

गाधी ने सभवत अग्रेजो के चरित्र को ठीक ही समझा था पर उन्हे यह नही मालूम था कि क्या भारत का जनसाधारण व्यक्ति भी इस अभिनव आदोलन मे जो उन्होने आरभ किया है सहयोग करेगा। उनका अहिंसात्मक आदोलन शीघ्र ही हिंसात्मक हो गया। गाधी इससे परेशान हो गये और यह समझकर कि भारत अभी इस भाव को ग्रहण करने की स्थिति मे नही है, उन्होने इस आदोलन को रोक दिया। इसके शीघ्र बाद उन्हें बदी बना लिया गया और जेल मे सीकचो के पीछे डाल दिया गया। एकाएक आदोलन वापस लेने ने उनके तमाम अनुगामियो को दिग्भ्रमित कर दिया जिसके कारण स्वराज पार्टी की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य विधान सभाओ मे पहुचकर आदोलन करना था। पर यह दल भी कुछ बहुत ठीक परिणाम लाने मे सफल नही हुआ।

इन्ही परिस्थितियो मे इरविन भारत आया। उस समय कांग्रेस जिस राजनीति पर चल रही थी उसे 'अनिश्चय' की राजनीति का ही नाम दिया जा सकता है। सभवत 'टाइम्स आफ इडिया' ने परिस्थिति का जायजा लेते हुए ठीक ही लिखा कि 'काग्रेस समाप्ति की कगार पर है। काग्रेस की तथा कथित पथ की बात बेकार सिद्ध हो गई थी और काग्रेस के समथको मे एक उत्तरदायी राजनैतिक विचार का अभाव हो गया था।'[2] जब इरविन भारत पहुचा देश मे लगभग राजनैतिक शाति थी। काग्रेस ही निम्नता की ओर नही थी कोई अन्य दल या समूह भी समथ नही था। वसे तो 1925 मे कम्युनिस्ट पार्टी जन्म ले चुकी थी पर इसे आगे बढने का अवसर नही मिला था। उत्तर पश्चिम सीमा पर भी शाति थी।

1 गोपाल एल वायसरायल्टी आफ लाड इरविन पृ 5 द्वारा उद्धत।
2 वही पृ 50।

इरविन को यहा पहुचते ही जिस समस्या से जूझना पडा वह साम्प्रदायिक दगो की समस्या थी। यह समस्या कितनी गभीर थी, वह इससे सिद्ध है कि उसके शासन के प्रथम वष मे 40 साम्प्रदायिक दगे हुए जिसमे हिदुओ ने मुसलमानो को और मुसलमानो ने हिदुओ को कत्ल किया। तमाम सपत्ति का विनाश किया गया और देश के तमाम भागो मे वातावरण तनावपूण हो गया। इसलिये इरविन ने पहला काय यह किया कि उसने दोनो वर्गो से धम के नाम पर मिलजुल कर रहने की अपील की। मौलाना अबुल कलाम आजाद और पडित मोती लाल नेहरू जैसे लोगो ने इस अपील पर काय किया और एक 'इण्डियन नेशनल यूनियन' नामक एक गैर राजनैतिक सगठन स्थापित किया गया जिसकी शाखायें भी स्थापित की गइ। इसका उद्देश्य साम्प्रदायिकता से लोहा लेना था। पर इस सस्था को बहुत सफलता नही मिल पाई और 1926 मे एक आदरणीय हिदू स्वामी श्रद्धानद को एक कट्टर मुस्लिम ने मार डाला। इसकी प्रतिक्रिया भी हुई जिसके कारण मुसलमानो पर भी हमले हुये और जन व धन की हानि हुई। यह साम्प्रदायिक विद्रोह उत्तर पश्चिम सीमा म भी फैला जहा से तमाम हिदू अफरीदियो द्वारा निकाल दिये गये। बाद मे जब सद् बुद्धि का वातावरण पैदा हुआ तो कुछ हिदू अपने घरो को वापस जा सके। पर सामान्यतया साम्प्रदायिक स्थिति बिगडती ही गई और अगस्त 1927 मे इरविन ने सदन म यह चेतावनी दी कि यदि लोग अपन व्यवहार को सही नही करते तो उनका स्वशासन का नारा खोखला ही सिद्ध होगा। पर शीघ्र ही स्थिति ने पलटा खाया और जो काय इडियन नेशनल यूनियन और वायसराय नही कर सके वह काम 8 नवम्बर 1927 म नियुक्त भारतीय सविधान सुधाराथ नियुक्त एक कमीशन की घोषणा ने किया।

साइमन कमीशन (1927)

1919 के सुधार अधिनियम की धारा 84 के अनुसार वैधानिक आयोग की नियुक्ति की जानी थी। "यह काय अधिनियम के पारित होने के 10 वष बाद होना था जिसका उद्देश्य सरकार की कायवाही की जाच करना था और यह देखना था कि भारत मे प्रतिनिधि सस्थाओ का कितना विकास हुआ है जिससे उसके विस्तार परिवतन तथा रोक टोक लगाकर इसे भारत मे एक उत्तरदायी सरकार बनाया जा सके।" पर जैसा कि बताया जा चुका है कि यह आयोग दो वष पूव ही नियुक्त कर दिया गया। ऐसा करने के कई कारण थे। पहला कारण तो यह था कि केद्रीय सदन के बाहर और अदर जनमत का बडा दबाव था जिसने सरकार को ऐसा कदम उठाने को

बाध्य किया। दूसरे, यह आशा थी कि अगले आम चुनाव में श्रमिक सरकार निश्चित ही जीतेगी और अनुदारवादी सरकार कमीशन की नियुक्ति उनके द्वारा करना पसंद न करेगी। लार्ड बर्कनहेड जो भारत का सेक्रेटरी आफ स्टेट था, भारतीय गवर्नर जनरल लार्ड रीडिंग को स्पष्ट रूप से लिखा 'इस देश में राजनैतिक स्थिति को देखते हुए, मेरा यह निश्चय है कि आयोग को नामित करने का कार्य हम अपने ही हाथ में रखना चाहिए। इस मामले में हम तनिक भी लापरवाही नहीं बरत सकते।" इस तरह ये कारण थे जिस स्थिति में आयोग की नियुक्ति पहले हो गई।

भारतीय विरोध—इस तरह से नियुक्त आयोग 1928 में फरवरी में बम्बई में उतरा। इसे कार्य सौंपा गया था कि यह रिपोर्ट करे कि किस सीमा तक भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की जा सकती है। पर भारतीय जो इस आयोग की नियुक्ति के प्रति बेताब थे, इसका स्वागत करने के स्थान पर गम्भीर रूप से इसका विरोध प्रारम्भ से ही करने लगे। इसका सबसे प्रमुख कारण यह था कि इस आयोग की रचना में किसी भारतीय को स्थान नहीं दिया गया था। इस आयोग में इंगलैंड के विभिन्न दलों के प्रतिनिधि थे अर्थात दो सदस्य मजदूर दल के एक उदार दल का तथा चार अनुदारवादी दल के। इस आयोग को सर जान साइमन, जो उदार दल के थे के सभापतित्व में काम करना था। इस आयोग में किसी भारतीय को सदस्य न बनाने के लिये ब्रिटिश तर्क यह था कि 1919 के सुधार अधिनियम के अनुसार इसके सदस्य केवल ब्रिटिश संसद सदस्य ही हो सकते थे। पर इस बहाने को भारत में कहीं भी ठीक नहीं माना गया क्योंकि ब्रिटिश संसद में दो भारतीय भी थे—एक लार्ड्स में लार्ड सिन्हा और दूसरे कामन्स में मि० सकलातवाला जिन्हें आयोग में रखा जा सकता था। भारतीय इच्छाओं और स्वाभिमान के लिये यह सचमुच अपमानजनक था कि बाहरी लोग उनकी योग्यता की परीक्षा के लिए बैठें कि वे उत्तरदायी सरकार चलाने के योग्य हैं या नहीं। घाव पर नमक छिड़कने का कार्य वायसराय की घोषणा में किया जिसमें उसने कहा 'यह सामान्य रूप से स्वीकार किया जायगा कि आवश्यकता आयोग की है जो असम्बद्ध और कार्यक्षम्य हो और जो संसद के समक्ष स्थिति का सही चित्र प्रस्तुत कर सके। इसके अतिरिक्त संगठित आयोग ऐसा भी होना चाहिए जिसकी संस्तुतियों पर कार्यवाही के लिये संसद की इच्छा हो और जो उचित रिपोर्ट भी दे।[1] सर स्टनले रीड ने लिखा है कि वे भारतीय राजनीतिज्ञ में इस देश को काफी अनुभवी हो गये थे उन्हें मुख्य केन्द्रों पर बुलाया गया और उनसे कहा गया कि वे गवाहों के रूप में

1 ग्वेर एण्ड आप्पाराव स्पीचेज एण्ड डाकूमेण्टस भाग 1 पृ 206 07।

उपस्थित हो सकते हैं। पर उन्हे सरकार के स्वरूप को निर्धारित करने का अधिकार नही होगा। किसी स्वाभिमानी राष्ट्र को इससे अधिक और क्या अपमान प्रदान किया जा सकता था।"[1]

दूसरे, यह अनुभव किया गया कि लार्ड बर्केनहेड अपने को विजेता के रूप मे पेश कर रहा है और अपनी इच्छा जनता को अधीन मानकर उन पर लाद रहा है। भारतीय नेता 1927 मे आक्सफोर्ड छात्रो के समक्ष उसके भाषण को अब भी नही भूले थे जिसमे उसने कहा था, "भारत पर हमारा पारितोषिकीय अधिकार है। इग्लैंड म हमे उसी के आश्रित रहना है और भारतीयो को वहा हमारे आश्रित यह काम आप युवा लोगो का है कि आप अपने खून की अंतिम बूद तक भारत पर अधिकार बनाये रखने की चेष्टा करें।'

भारतीय राष्ट्रवादियो के लिये मजदूर और उदार सदस्यो का अनुदारवादियो को इस मामले मे सहयोग भी कम कष्टदायी नही था। इसने "ब्रिटिश उदारवादियो व समाजवादियो के प्रति उनके विश्वास को हिलाकर रख दिया।"[2]

1927 मे ही कु० कैथरीन मेयो की पुस्तक 'मदर इडिया' प्रकाशित हुई जिसम विशेष प्रयास करके भारतीय समाज की सामाजिक व धार्मिक बुराइया ढूढकर एकत्रित की गई थी। इसे पश्चिमी जगत के समक्ष इस तरह उजागर किया गया जसे कि यही भारतीय समाज की विशेषता हो। भारत को एक अत्यधिक पिछडे और बबर देश के रूप म पेश किया गया जिससे भारतीय नेताओ को ग्लानि व क्रोध का अनुभव हुआ। इसमे उन्हे ब्रिटिश साम्राज्यवादियो की चाल दिखाई पडी जो इस तरह की चालो के द्वारा भारत पर अपनी पकड बनाये रखना चाहते थे। इसके अतिरिक्त, आयोग भारत की ओर किसी नीति के अपनाने की योजना नही रखता था और इस अभाव को सभी सम्प्रदायो के बुद्धि वाले नापसद करते थे।

इस तरह सभी गोरा युक्त बना हुआ आयोग पूर्ण असफलता की ओर आगे बढा। काग्रेस सहित सभी भारतीय दल मुस्लिम लीग और उदारवादियो ने आयोग की रचना का विरोध किया। और सर तेजबहादुर सप्रू, एनी बेसेण्ट, श्री एम० ए० जिन्ना, श्री याकूब हसन और अन्य अखिल भारतीय नेताओ ने 16 नवम्बर 1927 के एक स्वहस्ताक्षरित माग पत्र मे हर तरह के असहयोग की घोषणा की। श्री एस० श्रीनिवासन आयगर जो काग्रेस के अध्यक्ष थे, ने इस भारतीय विरोध के कई कारण बताये

1 रीड, सर स्टनले द इडिया आई निव (1897-1947) पृ 191 92।
2 बनर्जी ए सी इडियन कास्टीट्यूशनल डाकूमेंट्स, भाग 3, पृ 196।

(1) 'भारतीय ताग अपन सविधान की रचना के अधिकारी हैं इस अधिकार को निश्चित ही नकार दिया गया है।" (2) " हम ऐसी किसी छानबीन से अपने को नही जोडना चाहते जो हमारे स्वराज की योग्यता पर प्रश्नचिह्न लगाये।' (3) "तीसरा कारण निश्चित रूप से भारतीय स्वाभिमान को पहुँचाई गई वह चोट है जिसके अतगत आयोग म किसी भारतीय को स्थान नही प्रदान किया गया है।" (4) आयोग हम पर थोपा गया है जिसे हम नही चाहते और इस समय तो बिल्कुल नही।" (5) 'बहिष्कार का अतिम कारण इन प्रस्तावो के पीछे छिपा प्रस्ताव व पृष्ठभूमि है। इसस यह नही लगता कि हमारे प्रति उदारता के दशन हुये हैं बल्कि उनके कठोर होने का चित्र सामन आया है।"[1]

पर आयोग ने देश की यात्रा से अपना कार्य करना प्रारभ किया और नौकरशाही तथा उनके चमचो से तथ्य प्राप्त करना प्रारभ किया। पर ये जहा भी गये धूमधाम से इनका काले झडो, हडतालो और बहिष्कारो से स्वागत हुआ। 'साइमन वापस जाओ' ही इनका नारा था जिसे इसे हर जगह झेलना पडा। पुलिस को बम्बई और मद्रास म गोली चलानी पडी और लाहौर जसे स्थान पर जन विरोध को शात करने के लिये लाठी चाज करना पडा। पर यह सब बेकार गया। लाला लाजपतराय को लाहौर म लाठी से ही चोट लगी तथा पडित जवाहरलाल नेहरू और जी० बी० पत उत्तर प्रदेश म विरोध का नतृत्व करते हुये बुरी तरह घायल हुये। पर आयोग अपन काय म लगा रहा और अतत उसन अपनी रिपोट प्रस्तुत कर दी जो दो भागो म प्रकाशित हुई—प्रथम 11 जून को और द्वितीय 24 जून, 1930 को।

साइमन कमीशन रिपोर्ट

परिस्थिति के अध्ययन के बाद अपनी रिपाट म नये सविधान पर जोर दत हुये कहा गया कि "इसम एसी धारायें होनी चाहिय जिससे इसका विकास अपने आप हो' एव इसके ध्ययो पर विचार करते समय यह निश्चित नही करना चाहिये कि इसके लिये कितना कुछ करना होगा और किन चरणा से होकर गुजरना होगा।' आयोग ने बहुत सी संस्तुतिया की।

1 द इडियन एनुअल रजिस्टर 1927 भाग 2, प 98 99।

2 नेहरू जवाहरलाल आटोबाईग्राफी प 174।

प्रान्तों के सम्बन्ध में

प्रान्तो के सबंध मे आयोग ने संस्तुत किया कि (1) द्वितन्त्र का उद्देश्य पूरा हो गया है इसलिये अब इसे समाप्त कर दिया जाय और गवनरो के द्वारा बहुमत दल मे से मन्त्री नामजद किया जाना चाहिये जो प्रान्तो का शासन अपने हाथ मे ले। ये मत्री जिनके बीच गवनर को पोर्टफोलियो का विभाजन करना चाहिये, और जिनकी बैठको मे गवर्नर को सभापतित्व करना चाहिये उन्ह विधायको के प्रति उत्तरदायी होना चाहिये। पर मन्त्रि मडल की रचना लचीली होनी चाहिये जिससे कि आवश्यकतानुसार गवनर उसमे नौकरशाही के तत्वा का भी समावेश कर सके। (2) केन्द्रीय सरकार अनावश्यक रूप से प्रान्त के प्रशासकीय व वैधानिक कार्यों मे हस्तक्षेप न करे। पर साथ ही गवनरो को आवश्यकतानुसार मन्त्रियो के निणयो को न मानने का भी अधिकार होना चाहिये। कुछ आवश्यक उद्देश्यो जसे अल्पमत वालो की रक्षा के लिये गवनर की शक्ति निश्चित हो जानी चाहिये। सविधान की असमता की स्थिति मे उन्ह गवनर जनरल से निर्देश तथा शक्ति दोनो प्राप्त होना चाहिय। (3) प्रान्तीय विधान सभाओ मे मताधिकार का विचार किया जाना चाहिये और इसमे अधिक से अधिक महिला मतदाताओ को सम्मिलित किया जाना चाहिये। (4) जब तक कोई और बेहतर तरीका न निकल आय कुछ महत्वपूर्ण अल्पमत वालो को ठीक से सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिये। इसके लिये साम्प्रदायिक चुनाव क्षेत्र बनाये जाने चाहिये। पिछडे तस्त वग के लोगो की सीट सुरक्षित करके सहायता दी जानी चाहिए। (5) विधान सभाओ को विस्तृत किया जाना चाहिए और विधायक क्षेत्रो की सीमा घटा दी जानी चाहिए जिससे उसकी ठीक से व्यवस्था की जा सके। प्रान्तीय परिषदो को केवल विधायिका के ही अधिकार न देकर अपन प्रतिनिधित्व प्रणाली पर भी कुछ करने का अधिकार होना चाहिए। (6) प्रान्तो को विस्तृत आर्थिक साधन प्रयोग म लाना चाहिए। (7) प्रान्तीय सीमा के पुर्नवितरण का मामला फिर से प्रारभ करना चाहिए और सिन्धी व उडिया लोगो का मामला सबसे पहले हाथ मे लेना चाहिए। (8) बर्मा को भारत से अलग कर दिया जाना चाहिये और तुरन्त उसके लिये एक अलग से सविधान की व्यवस्था की जानी चाहिए। (9) उत्तर पश्चिम सीमाप्रान्त की एक अलग विधान सभा होनी चाहिए और इस व बलूचिस्तान दोनो को केन्द्र मे प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। (10) भविष्य मे आयोग के अनुसार प्रत्येक प्रान्त को जहा तक सभव हो अपने घर का मालिक होना चाहिए।

केन्द्र

केन्द्रीय विधायिका के सबंध म आयोग ने निम्न सस्तुतियाँ की—

(1) केन्द्रीय विधायिका को 'सघीय एसम्बली' नाम प्रदान किया जाय जिसकी रचना प्रान्ता के प्रतिनिधित्व के आधार पर तथा ब्रिटिश भारत के क्षेत्रो के आधार पर हो। पर इसका आधार जनसख्या हो। (2) प्रान्तीय गवनरो का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्या के प्रान्तीय कौसिला से आनुपातिक प्रतिनिधित्वा के आधार पर चुना जाना चाहिय जिससे पर्याप्त अल्पमतीय लोगा का प्रतिनिधित्व हो जाय। उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त और अन्य क्षेत्रा से बाहर भेजे जाने वाले सदस्य उचित रीति म चुनकर भेजे जाने चाहिए। (3) सघीय एसेम्बली के सदस्य गवनर जनरल के कौसिल के ऐसे सदस्य होने चाहिए जो अन्य नामाकित सदस्या के साथ सदन मे बैठ सकें। (4) गैर चुने और चुने सदस्यो के बीच का अनुपात अपरिवर्तित रहना चाहिय और (5) विधान सभा का काल 5 वष का होना चाहिये।

राज्य परिषदें

(1) अपने चुने गये और नामित सदस्यो सहित राज्य परिषदा का वही अधिकार चलते रहना चाहिए। (2) चूकि इनके सदस्य जो चुने जाते हैं अत्यधिक योग्य होते है, उनका चुनाव प्रान्तीय निम्न सदनो से अप्रत्यक्ष रीति से होना चाहिए। पर यदि य सस्थाए चुनाव के लिये न हा तो इनका चुनाव परिषदा द्वारा होना चाहिए। (3) इस परिषद का जीवनकाल 7 वष होना चाहिए। (4) केन्द्र के दोना सदना के आर्थिक तथा वधानिक अधिकार चलते रहने चाहिये। पर सघीय एसेम्बली को केन्द्र द्वारा एकत्रित किये जाने वाले अप्रत्यक्ष करा पर मत देने का विशेष अधिकार होना चाहिए जिसकी आय पूणतया विभाजनाथ प्रान्तो म जान थी।

कायपालिका

(1) केन्द्रीय कायपालिका के रूप मे कौसिल मे गवनर जनरल को ही सब अधिकार प्राप्त होने चाहिये। पर अब से गवनर जनरल को काय कारिणी के लिय सदस्य नियुक्त करने चाहिये। (2) कायकारिणी के सदस्यो की वतमान योग्यता बनी रहनी चाहिय। (3) इन सदस्यो मे से कोई एक ऐसा होना चाहिए जो सघीय परिषद मे नतत्व करे। (4) सेनापति को अब न तो कायकारिणी परिषद और न ही केन्द्रीय विधायिका का सदस्य बनाया जाना चाहिये। (5) केन्द्र म द्वितत्र की स्थापना की जानी चाहिए क्योकि केन्द्रीय कायकारिणी म एकता की रक्षा अति आवश्यक है।"

सेना

सेना के भारतीयकरण की आवश्यकता स्वीकार की गई। पर आयोग ने यह भी सस्तुत किया कि भारत की सुरक्षा गवनर जनरल के उत्तरदायित्व क्षेत्र मे माना जाना चाहिए जो सम्राट की और उनके अधिकारियों की ओर से सेनापति के परामश से काय करेगा। यह भारत सरकार के उत्तरदायित्वो के अश मे नही होगा और न इसका केन्द्रीय विधायिका से ही सबध होगा।

नागरिक सेवायें

आयोग ने कहा (1) इडियन सिविल सर्विस तथा इडियन पुलिस सर्विस की सुरक्षा सेवाओ की तरह भर्ती अखिल भारतीय सेवाओ के रूप मे सक्रेटी आफ स्टेट के हाथ स ही होनी रहे। ऐसे ही सिचाई सेवाओ व जगल सेवाओ के विषय मे भी विचार होना चाहिए। (2) आयोग के अनुसार भारतीयकरण की क्रिया चलती रहनी चाहिए। (3) वतमान लोक सेवा आयोग के अतिरिक्त प्रान्तो म भी सेवाओ के चयन के लिये ऐसे ही सगठन बनाये जाने चाहिए।

इडिया आफिस के सबध मे

यह सस्तुत किया गया कि (1) कौसिल मे गवर्नर जनरल को सिद्धान्तत सवैधानिक रूप से सेक्रेट्री आफ स्टट के अधीन रहना चाहिए। यह नियत्रण कितना ढीला किया जाय, इसे भविष्य के अनुभवो के लिये छोड दिया जाय। (2) सेक्रेट्री आफ स्टट प्रान्तीय सरकारो पर कोई नियत्रण नहीं रखेगा सिवाय इसके कि वह गवनर म निहित अपने अधिकार का प्रयोग करे। (3) भारत की कौसिल का काय व उसकी रचना मे परिवतन होना चाहिए, इसके आकार को छोटा किया जाना चाहिए और इसके बहुत सदस्यो को तात्कालिक भारतीय अनुभव की योग्यता होनी चाहिए। कौसिल को परामर्शदात्री सगठन के रूप म काय करना चाहिए। पर इसकी स्वतन्त्र शक्ति सेवा शर्तों पर नियत्रणाथ चलती रहनी चाहिए। इसका नियत्रण ऐसे व्यय पर भी होना चाहिए जिस पर मत न लिया जाता हो।

भारतीय राज्य

आयोग ने 'कौसिल फार ग्रेटर इडिया' नामक सस्था की स्थापना की सस्तुति की जिसम राजाओ के राज्य का प्रतिनिधित्व हो और ब्रिटिश भारत के सदस्यो का भी जो सामान्य हित के मसलो पर विचार करे। आयोग के अनुसार यह एक ऐसी शुरुआत होगी जिसके आधार पर बहत्तर भारत का

एक सघ बन सकेगा। पर तुरत भविष्य मे ऐसे किसी सघ की रचना सभव न होगी।

एक मूल्याकन

इस तरह की सस्तुतिया थी आयोग की। जसा कि स्पष्ट है, आयोग ने भारत के भविष्य के गतव्य का जिक्र नही किया जिस पर स्वाभाविक रूप से जनता ने इतराज किया। केन्द्रीय सदन के लिये अप्रत्यक्ष चुनाव की सस्तुति स्पष्ट रूप से एक प्रतिक्रियावादी कदम था। प्रान्तो मे गवनरो के अधिकार शक्तिपूण थे क्योकि वह मत्रियो को नामित कर सकता था, उनके बीच काय का विभाजन कर सकता था और उनकी बठको की अध्यक्षता करता था। पर फिर भी भारतीयो के आयोग की सस्तुतियो की भत्सना के बावजूद यह महत्वपूण था। कीथ का विचार है कि भारतीयो की सभवत यह गलती थी कि उन्होने रिपोट को पूणतया बेकार समझा। यदि यह स्वीकार कर लिया गया होता तो प्रान्तो मे उत्तरदायी सरकारें काफी पहले स्थापित हो गई होती।"[1] पर यह स्मरण रखा जाना चाहिए कि वसे तो रिपोट पर कोई कायवाही नही हुई, पर उसकी सस्तुतिया ध्यान म रखी गई। इनमे से कुछ को 1935 के एक्ट मे स्थान दिया गया। इस रिपोट की यह भी महत्ता थी कि इसन सघ के सबध मे भी अपने विचार प्रस्तुत किये और यह भी बताया कि राजा भी इसमे भूमिका अदा कर सकते हैं। इस राय के आधार पर बाद म काय किया गया और सघ योजना पर भी कार्यान्वयन हुआ। 1919 के सुधारो की असफलता को सरकार ने स्वीकार किया और इसके लिए भी रिपोट को ही जिम्मेदार माना गया।

नेहरू रिपोर्ट

अनुदारवादी सेक्रेट्री ऑफ स्टेट लाड बर्केनहेड ने 1925 और पुन 1927 मे भारतीयो को चुनौती दी कि वे ऐसा सविधान दें कि जो देश के सभी दलो को स्वीकाय हो। काग्रेस ने चुनौती स्वीकार की और उसने 28 फरवरी 1928 को एक सवदलीय सम्मेलन दिल्ली म आमत्रित किया जिसमे 29 सगठनों ने अपने प्रतिनिधि भेजे। सम्मेलन ने कुछ प्रारम्भिक बातो पर दिल्ली म विचार किया और यह तय किया कि 19 मई 1928 को इसकी दूसरी बैठक जिसम ॥ सदस्यो की एक छोटी समिति प० मोती लाल नेहरू की

1 कीथ कांस्टीच्यूशनल हिस्ट्री आफ इडिया प 293 94।

अध्यक्षता म वनी वम्बई म करन का निश्चय हुआ। समिति से कहा गया कि वह जुलाई 1928 तक भारत के लिए एक सविधान तैयार कर दे। नेहरू समिति नाम से विख्यात इस समिति ने 25 बैठकें की और अतत सवसम्मति से एक रिपोट तैयार की जिस सवदलीय सम्मलन के समक्ष जिसके अध्यक्ष डा० असारी थ लखनऊ मे रखा जाना था। डा० जकारिया क अनुसार रिपोट 'उत्तम और राजनीतिकुशलतापूण' थी और यह इस बात का प्रमाण थी कि भारतीय नेताओ की वैधानिक मामलो म कितनी सूझ-बूझ व पकड थी। इस रिपोट की सस्तुतियाँ अधोलिखित थी—

सस्तुतिया

सविधान के सामान्य सिद्धान्तो के विषय म कहा गया कि (1) रिपोट ब्रिटिश शासन के अतगत स्वशासन को अगला तुरन्त का कदम मानता है पर यह उसका अतिम गन्तव्य नही है। सच यह था कि यह दो विचारधाराओ का एक सामजस्यस्थल था। बहुमत म लोग ब्रिटिशो के अधीन स्वशासन चाहते थ। पर दूसरे यह चाहते थे कि सम्पूण राष्ट्रीय आजादी प्राप्त हो। पर शेष सस्तुतियो पर सदस्य एकमत थ। (2) सविधान को धम निरपेक्ष होना था जिसके अतगत किसी भी राज्य को किसी धम को आधार नही बनाना था। (3) साम्प्रदायिक चुनाव क्षेत्र की प्रणाली के सिद्धात का परित्याग कर दिया गया। सामूहिक चुनाव पद्धति को स्वीकार किया गया और अल्पमत वालो को प्रतिनिधित्व मिले इसके लिए उनकी सीटे रिजव कर दी गइ। इसका आधार जनसख्या म उनका औसत बनाया गया। इसके अतिरिक्त भी उन्ह अन्य सीटो पर चुनाव लडने का अधिकार प्रदान किया गया। पर पजाब और बगाल म किसी सम्प्रदाय क लिए सीटें रिजव नही होती थी। (4) सविधान क अतगत 19 मौलिक अधिकार रख गय और यह घोषित किया गया कि सरकार को सभी अधिकार जनता से प्राप्त होत हैं।

केन्द्रीय कायकारिणी के सबध मे सविधान म कहा गया कि (1) भारत क गवनर जनरल की नियुक्ति ब्रिटिश सम्राट करेगा और उसके वतन का भुगतान भारतीय कोष से होगा। उसके कायकाल म उसक वतन म कोई परिवतन नही होगा। (2) गवनर जनरल कायकारिणी सरकार के परामश स काय करेगा। वह प्रधानमत्री की नियुक्ति करेगा। इस तरह स बनी कायकारिणी सरकार ससद क प्रति उत्तरदायी होगी। (3) इस तरह स बना केन्द्रीय मत्रिमण्डल अपन काल के तीसरे वष के अन्दर नही हटाया जायगा। पर भ्रष्टाचार आदि क आरोप पर इस विशेष परिस्थिति म पहले भी हटाया जा सकगा। तीन वष के बाद निम्न सदन के 2/3 सदस्यो के विरोध स उस

हटाया जा सकता था। इसी तरह का प्रावधान प्रांतीय मन्त्रिमण्डल के लिए भी किया गया। (4) केन्द्र में गवर्नर जनरल को रक्षा समिति नियुक्ति का अधिकार प्रदान किया गया जिसमे रक्षा मन्त्री व विदेश मन्त्री, सेनापति, वायु सेनाधिपति व जल सेना प्रधान के अतिरिक्त प्रधान सेनाध्यक्ष तथा इस क्षेत्र मे प्रमुख दो जानकार व्यक्तियो की नियुक्ति की जा सकती थी। इस समिति को प्रधानमन्त्री के सभापतित्व मे कार्य करना था और इसे सरकार को रक्षा समस्याओ पर परामर्श देना था। सेना के संगठन, अनुशासन और रख रखाव के संबंध में नियम बनाने के लिए यही समिति संस्तुतियाँ करती थी। रक्षा बजट पर केन्द्र के निचले सदन की सहमति आवश्यक थी। पर वाह्य आक्रमण या इसकी संभावना पर आपातकाल मे सरकार बिना मत प्राप्त किये ही व्यय कर सकती थी।

रिपोर्ट मे यह भी संस्तुत किया गया कि (1) केन्द्र मे दो सदनों की संसद का प्रावधान होना चाहिए। इनमें से एक सदन सीनेट या उच्च सदन 200 सदस्यों का और दूसरा हाउस आफ रीप्रेजेन्टेटिव्ज या निम्न सदन 500 सदस्यो का होना चाहिये। उच्च सदन का काल 7 वर्ष और निम्न सदन का 5 वर्ष होना चाहिये। (2) निम्न सदन के सदस्यों का चुनाव वयस्क प्रत्यक्ष मताधिकार के आधार पर होना चाहिये और उच्च सदन के सदस्यो का चुनाव अप्रत्यक्ष रीति से प्रांतीय कौंसिलो द्वारा होना चाहिये।

प्रांतो के संबंध में रिपोर्ट मे कहा गया कि (1) प्रान्तो का निर्माण भाषाई आधार पर किया जाय। (2) पूर्ण प्रांतीय स्वायत्तता की आवश्यकता स्वीकार की गई और रिपोर्ट में कहा गया कि (3) संघीय आधार पर केन्द्रीय और प्रांतीय शक्ति का विभाजन होना चाहिये जिससे केन्द्र मजबूत हो सके। इस मामले मे कनाडा के संविधान को आदर्श माना गया। (4) प्रांतो के गवर्नरो की नियुक्ति सम्राट करेगा पर उनका वेतन प्रांतीय कोष से देय होगा। (5) गवर्नर प्रांतीय कार्यकारिणी परिषद के मत के आधार पर कार्य करेगा जिसमे 5 सदस्यों से अधिक नही होगे। मुख्यमंत्री गवर्नर द्वारा चुना जायगा और अन्य मन्त्री मुख्यमन्त्री के परामर्श पर गवर्नर द्वारा नियुक्त किये जायेंगे। (6) प्रत्येक प्रांत में एक विधानसभा होगी जिसे लेजिस्लेटिव कौंसिल कहा जायगा जिसके सदस्य वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष प्रणाली से चुने जायेंगे। प्रांतीय सदन 5 वर्ष के लिए होंगे। पर गवर्नर इन्हें पहले समाप्त भी कर सकता था और इसका काल बढा भी सकता था।

राजाओं के सम्बन्ध में रिपोर्ट में कहा गया कि (1) उनके अधिकारो की रक्षा और आन्तर भारत सरकार करेगी, पर उन्हें समय के अनुसार अपने में कुछ परिवर्तन करना चाहिये और अपनी जनता को प्रजातांत्रिक अधिकार

दिलान म रोक-टोक नही करनी चाहिये। (2) एक तरह से प्रभुता ब्रिटिशो की उत्तराधिकारी भारत सरकार मे निहित हो जायेगी क्योकि यह बताया गया कि राजाओ पर सम्राट अधिकारो का प्रयोग करेगा।

रिपोट म सुप्रीम कोट की रचना का भी प्रावधान किया गया। यह यायालय भारत म अतिम अपीलीय यायालय होना था। इसके बाद किसी भी मुकदमे की अपील इग्लैण्ड की प्रीवी कौसिल म नही जानी थी।

भारत के असैनिक और सनिक कमचारियो की सेवायें पहले जैसे ही चलती रहनी थी और यह प्रविधान किया गया कि गवनर जनरल नागरिक सेवाओ म भर्ती हेतु लोक सेवा आयोग की नियुक्ति करेगा।

इस तरह यह नेहरू रिपोट थी जिसे लखनऊ के सवदलीय सम्मेलन म स्वीकार किया गया। इस पर दिसम्बर 1928 मे कलकत्ता म सवदलीय सम्मेलन न विचार करना प्रारम्भ किया। पर यहा पर प्रत्यक्ष रूप से पूव प्रदर्शित प्रगतिशील विचार पूणतया दब गये और वह आशा कि सकेट्री आफ स्टेट की चुनौती का सफलतापूवक सामना किया जायेगा सबकी सब टुकडे टुकडे हो गइ। बोस ने लिखा है कि इस सम्मेलन मे "वे सभी जिनका नेहरू रिपोट तैयार करने म हाथ नही था, इसके सख्त विरोध मे हो गये।' एम० ए० जिन्ना जिन्होने एक वष पूव कलकत्ता के मुस्लिम लीग के सम्मेलन मे प्रगतिशील राष्ट्रीय विचारो का प्रदशन किया था अब अपने 14 सूत्रो के साथ सामने आ गये जिसके माध्यम से वे नेहरू रिपोट मे निहित साम्प्रदायिक समझौते म परिवतन करना चाहते थे।'[1]

जिन्ना के चौदह सूत्र

यहा जिन्ना के चौदह सूत्रो मे से कुछ महत्वपूण सूत्रो का परिचय वाछनीय होगा जिसने साम्प्रदायिक सदभावना के सारे प्रयासो को दफ्न कर दिया। कितनी विचित्र बात थी कि सेक्रेट्री आफ स्टेट की चुनौती को स्वीकार करते हुए तुरन्त जिस साम्प्रदायिक एकता का परिचय दिया गया था वह भारतीय गौरव की पराकाष्ठा थी। (1) जिन्ना चाहते थ कि भारत के लिए एक सघीय सविधान बने जिसम अवशिष्ट अधिकार प्रान्तो को सौंप दिए जायें। (2) सभी विधायिकाओ व अन्य चुने गय सगठनो की रचना अल्पमतीय प्रतिनिधित्व के उचित व प्रभावी आधार के सिद्धान्त पर हो। पर बहुमत को अल्पमत या समानता के आधार पर न लाया जाय। (3) केन्द्रीय सदनो मे चुने गये मुस्लिम सदस्यो की सख्या 1/3 स कम न हो। (4) साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली चलती रह। (5) कोई बिल या प्रस्ताव या इसका

1 बोस, एम सी इण्डियन स्ट्रगल फार फ्रीडम प 218 219।

कोई भाग किसी विधायिका से तब तक मान्य न माना जाय जब तक किसी सम्प्रदाय के 3/4 सदस्य उसका विरोध करें। (6) संविधान में इसका प्रावधान किया जाय कि मुसलमानों को राज्य की सेवाओं में और स्थानीय संगठनों में योग्यता व कार्यक्षमता को ध्यान में रखते हुए उचित भाग प्रदान किया जाय। (7) मुस्लिम संस्कृति की रक्षा का उचित प्रावधान संविधान में होना चाहिए। मुस्लिम शिक्षा के विकास की भी व्यवस्था की जानी चाहिये। (8) केन्द्रीय या प्रांतीय मंत्रिमंडलों में 1/3 से कम मुस्लिम मंत्री नहीं होने चाहिए। (9) संविधान में कोई परिवर्तन केन्द्र प्रांतों से भी स्वीकृति प्राप्त करके कर सकता है।

जिन्ना के दृष्टिकोण ने उनके अपने प्रतिक्रियावादी सम्प्रदाय में उन्हें लोक प्रिय तो बना दिया पर इससे रिपोर्ट के मूल्य व महत्ता दोनों को आघात लगा। जिन्ना ने रिपोर्ट में संशोधन के लिए कई प्रस्ताव रखे जिससे उनके उपरोक्त उद्देश्य पूरे हो सकें जिसमें से संविधान में संशोधन के प्रस्ताव को छोड़कर सभी अस्वीकार कर दिये गये। जिन्ना के दृष्टिकोण पर अपनी व्याख्या देते हुए सर तेज बहादुर सप्रू ने कहा 'यदि वह सिर चढ़े नटखट बच्चे की तरह व्यवहार कर रहे हैं, तो मैं कह सकता हूँ कि उन्हें वह सब कुछ दे दिया जाय और उसी के साथ सब कुछ समाप्त समझा जाय।" जिन्ना की नकल जल्दी ही और सम्प्रदायों जैसे सिखों ने की जो इस मामले में पिछड़ना नहीं चाहते थे। ऐसी स्थिति में एक अव्यवस्था स्वाभाविक थी। हिन्दू महा सभा मुसलमानों के विरुद्ध तन कर खड़ी हो गई और प्रतिक्रियावादियों का बोलबाला हो गया।

पर मुस्लिम लीग इस रिपोर्ट को लेकर आपस में विभाजित थी। सर मुहम्मद शफी के नेतृत्व वाले समूह ने इस रिपोर्ट को अस्वीकार कर देने और साइमन कमीशन से सहयोग करने को कहा। राष्ट्रवादी समूह ने साइमन कमीशन का बहिष्कार करने तथा नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार करने को कहा। और जिन्ना के नेतृत्व में तीसरे समूह ने प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण अपनाते हुए साम्प्रदायिक प्रश्न उठाने पर साइमन कमीशन का बहिष्कार करने को कहा। मार्च 1929 में दिल्ली में जब लीग की बैठक हुई तो तीनों समूह आपस में लड़ने लगे और अजीब अव्यवस्था का दृश्य उपस्थित हो गया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस भी इस मसले पर एकमत नहीं थी। कांग्रेस की कार्यसमिति ने सितंबर 1928 में रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया था। प० जवाहरलाल नेहरू ने रिपोर्ट को स्वीकार कर डोमीनियन स्टेटस स्वीकार करने के मंतव्य को ठीक न मानते हुए कांग्रेस के सचिव पद से त्याग पत्र दे दिया। दिसंबर 1928 में जब कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशन में रिपोर्ट को

स्वीकृति के लिय रखा गया तो सुभाषचद्र बोस और जवाहरलाल नेहरू ने उदारवादियो की भत्सना की और पूण स्वतत्रता का उद्देश्य सबके सामने रखा। गाधी ने बडी चालाकी से हस्तक्षेप करके स्थिति को बिगडने से बचाया। एक सुलह हो गया और विभाजन टल गया। प्रस्ताव मे यह पारित किया गया जिसमे सरकार को चेतावनी दी गई कि यदि नेहरू रिपोट जो मात्र डोमीनियन स्टटस की माग करता है उसे सरकार द्वारा पूण रूप से 31 दिसबर 1929 तक स्वीकार नही कर दिया जाता तो काग्रेस को बाध्य होकर देश को अहिंसात्मक असहयोग करन को समझाने को बाध्य होना पडेगा जिसमे जनता से कर दन से इकार करने को कहा जायगा और ऐसे ही अय कदम उठान की प्रेरणा दी जायगी।" सुभाष चद्र बोस ने रिपोट म पूण स्वतत्रता की माग का एक सशोधन रखा जिसका समथन अय लोगो के अतिरिक्त जवाहर लाल नेहरू न किया। पर मत पडने पर इसके पक्ष मे केवल 273 मत और विपक्ष म 1350 मत पडे। इस तरह गाधी न पुन विजय प्राप्त की और उनकी समझौते की नीति सफल हो गइ।

एक मूल्याकन

सामान्यतया नेहरू रिपोट के विषय म कहा जाता है कि सक्रेटी आफ स्टट ने भारतीय नताओ का सविधान रचना की चुनौती दकर एक शरारतपूण कदम उठाया था जिसम सभी दलो की सहमति की आवश्यक्ता बताई गई थी और काग्रेस न इस चुनौती को स्वीकार कर अति शीघ्रगामी कदम उठाया था। सच तो यह था कि एसे राजनीतिक प्रश्नो पर प्रजातान्त्रिक प्रणाली मे एकमत होन की सभावना कम थी। इग्लैण्ड मे भी महत्वपूण राजनतिक समस्यायें बहुमत स ही निणित होती थी। भारत म भी सविधान रचना का एकमात्र अधिकार उन स्वतत्रता सेनानियो को ही था जो देश की आजादी के लिय लड रह थ। सभी दलो का सविधान के प्रति समथन असभव था, तब तो और भी जब देश विदेशियो के हाथ म था और यह आशा थी कि एक या दूसरा दल शासन के अगूठे के नीचे है।

पर इमस इकार नही किया जा सकता जसा कि जकारिया न मत व्यक्त किया है नेहरू रिपोट पूण रूप स विस्तार म पठनीय है क्योकि जिस भी विषय पर इमन कलम चलाई ह उस पर रोशनी डाली है। उस सबध म काल्पनिक आदर्शो का सहारा भी नही छोडा गया है और साथ ही यह भी दिखाया गया है कि किसी को इसके माध्यम से प्रसन्न करन की चेष्टा भी नही की गई है।'[1] भारतीय नताओ द्वारा अपन देश के लिय सविधान रचना

1 जकारिया रिनेसन्ट इण्डिया प 240।

का यह प्रथम प्रयास था और वैसे तो ब्रिटिश सरकार ने इस ओर कोई आवश्यक निगाह नही फेरी, पर यह वह मस्तिष्क मथन था जिससे वतमान सविधान न भी आवश्यक तत्व ग्रहण किये । यदि और कुछ नही तो अपने म यही पर्याप्त है कि हमारे देश के नताओ न इस रिपोर्ट का तयार कर अपनी वधानिक बुद्धि का परिचय दिया ।

टूटे वायदे

मई 1929 भारतीयो के लिए भाग्यशाली समय था क्याकि इग्लैंड मे इसके पक्ष मे कुछ परिवतन हुये । लेबर पार्टी चुनाव जीत गई और इसका नेता रैम्जे मैक्डानल्ड वहा का प्रधानमन्त्री हो गया और वेजवुड बिउन भारत का सेक्रेट्री ऑफ स्टट । चुनाव के पूव मैक्डानल्ड ने यह आशा व्यक्त की थी कि कुछ ही महीनो म भारत भी कामनवेल्थ का एक राज्य हो जायगा । भारतीयो के लिये यह एक नई आशा की किरण थी और वे आशा करत थे कि शीघ्र ही कुछ आशानुरूप घटित होगा । लाड इरविन न शीघ्रता मे इग्लैण्ड की यात्रा की और अपनी वापसी पर 31 अक्टूबर 1929 को उमने घायणा की कि 1917 की घायणा म ही यह प्रस्तुत है कि भारत की सवधानिक प्रगति की अतिम सीढी डोमीनियन स्टेटस है ।' और इसके अतिरिक्त साइमन रिपोट प्रकाशित हाने से पूव ही उसन बताया कि इसम यह सस्तुति की गई है और इसे सरकार ने स्वीकार कर लिया है । इसके लिए उसने बताया कि एक गोलमेज सम्मेलन आयोजित किया जायगा जिसमे विभिन्न भारतीय और ब्रिटिश होगे जिससे एक उचित समझौता हो सके ।[1]

वायसराय के विचार अच्छे थे, पर भारतीय नता इमसे प्रसन्न नही थे । डॉमीनियन स्टटस एक इच्छित म तव्य था जिस पर समझौता हुआ था पर यह किसी को पता नही था कि इसका आगमन कब होगा । यह विचार सभवत काग्रेस के उस चेतावनी के उत्तर म प्रस्तुत किये गय थे जिसे नेहरू रिपोट क आधार पर 31 दिसबर 1929 तक देने को कहा गया था । पर यह अस्पष्ट था । य विचार कुछ अग्रेजो की दृष्टि मे उचित नही थे । उदार दल के नेता साइमन न एकाएक पाया कि रिपोट के प्रकाशन से पूव ही उसकी मुख्य बातें पर्दे के पीछे खिसका दी गइ ।

भारत म भी इस रिपोट पर अतिशीघ्र प्रतिक्रिया हुई । दिल्ली म काग्रेस

---

1 सा वाई चितामणि न बताया कि लार्ड इरविन 'ईमानदार और ईश्वर से डरने वाला व्यक्ति था लार्ड रिपन के बाद सबसे पवित्र वायसराय इसे बताया गया । पूर्वोद्धत प 173 ।

की काय समिति की बैठक मे महत्वपूण भारतीय नेताओ की बैठक हुई जहा गाधी, मोतीलाल नेहरू, जवाहर लाल नेहरू, डॉ० अन्सारी, प० मदन मोहन मालवीय, सर तेजबहादुर सप्रू, श्रीमती एनी बेसेन्ट और अन्य लोगो के हस्ताक्षर से एक घोषणापत्र तैयार किया गया जिसमे ब्रिटिश के प्रति विश्वास प्रकट करते हुये यह कहा गया कि उन्ह विश्वास है कि प्रस्तावित गोलमेज सम्मेलन केवल उस तिथि को निश्चित करने के लिये ही नही बुलाया जायगा कि कब से डॉमीनियन स्टेटस प्रदान किया जाय बल्कि इसे तत्सबधी सविधान रचना की योजना भी तैयार करनी चाहिए। इस सम्मेलन मे अधिकतर काग्रेस सदस्यो के सम्मिलित किये जाने की आशा थी और घोषणा पत्र म यह भी कहा गया कि राजनैतिक आदोलन मे भाग लेने वालो को छोड दिया जाय जिससे जनता यह समझे कि एक नया युग प्रारभ हो गया है।

पर काले भारतीय क्षितिज पर आशा की यह किरण मुरझा गई और घोपणा पत्र मे निहित भय सच सिद्ध हुआ। काग्रेस म उग्रवादी तत्वो ने इस घोषणा पत्र पर असतोष व्यक्त किया था कि पूण स्वराज से कम किसी भी चीज को स्वीकार नही करना चाहिए और सुभाष चद्र बोस न काग्रेस काय समिति से इसके विरोध में इसीलिए स्तीफा भी दे दिया था। पर पर्दे म छिपा और सीमित आश्वासन जो वायसराय के वचनो मे था वह व्यवहार म काय रूप मे बदलने के नाम पर पिघलकर बहता हुआ नजर आया। उदारवादियो ने साइमन रिपोट के प्रति अविश्वस्तता प्रकट करने पर सरकार के विरुद्ध नाराजगी प्रकट की और चर्चिल ने अपनी विचित्र शैली मे घोषणा की कि भारत के लिये डामीनियन स्टेटस की घोषणा "एक अपराध" है। इग्लड की लेबर सरकार जो स्पष्ट बहुमत मे नही थी भारत के कारण अपने मन्त्रिमडल के काल को खतरे मे नही डालना चाहती थी। चूकि नटखटपना के बादल और राजनैतिक चोरी इगलड स प्रारभ हुई थी, इस कारण गाधी ने 21 दिसबर 1929 को वायसराय से भेंट की। प० मोतीलाल नेहरू, सर तेज बहादुर सप्रू और एम० ए० जिन्ना भी गाधी के साथ थे। पर वायसराय के उत्तर अस्पष्ट और अनिश्चित थे। इस तरह स्पष्टतया चेतावनी की तिथि समाप्त होते ही नेहरू रिपोट को अस्वीकृत मान लिया गया और यह समझ लिया गया कि सरकार को उसकी कोई चिन्ता नही है।[1]

स्वतत्रता घोषित

1929 के दिसबर के अत म लाहौर मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस का

1 सीतारमय्या पूर्वोद्धत, भाग 1 प 351।

सम्मेलन हुआ। श्री नहरू जो सदा से ही तुरन्त पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा को काग्रेस का गन्तव्य मानते थे और जिन्होंने काग्रेस के सत्र की अध्यक्षता भी यहाँ की उन्होंने बिजली की तेजी और गर्मी सहित 31 दिसंबर 1929 को अर्द्धरात्रि को पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पारित कराया। इसी समय से विभिन्न लोगों के हितों का टकराव प्रारंभ हुआ और खून पसीना बहाते हुए भारत ने विजय की ओर कदम बढ़ाया। प्रस्ताव नपे तुले शब्दों में घोषित किया गया

'काग्रेस का अभिमत है कि वर्तमान परिस्थितियों में प्रस्तावित गोलमेज सम्मेलन में काग्रेस के भाग लेने से कोई लाभ नहीं है। काग्रेस यह घोषित करती है कि इसके संविधान के धारा 1 में 'स्वराज' शब्द का जो प्रयोग किया गया है उसका अर्थ पूर्ण स्वतन्त्रता होगा और यह और आगे यह घोषित करती है कि नेहरू रिपोर्ट की संपूर्ण योजना समाप्त हो चुकी है। राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने वाले काग्रेसियों और गैर काग्रेसियों से इसका आग्रह है कि वे भविष्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चुनावों में भाग न लें। यह काग्रेसियों को निर्देश देती है कि विधान सभाओं व समितियों में जो लोग भी काम कर रहे हों वे अपने पद से त्यागपत्र दे दें। जब भी उचित अवसर आये उस समय के लिये काग्रेस अखिल भारतीय काग्रेस समिति को अधिकार प्रदान करती है कि वह सविनय अवज्ञा आन्दोलन का कार्यक्रम प्रारंभ करे जिसमें कर न देना का निर्णय किया जा सकता है। यह काम किसी विशेष क्षेत्र या पूरे देश में प्रारंभ किया जा सकता है और आवश्यकतानुसार इस पर उचित रोक-थाम भी लग सकती है।'

पर इसका यही अन्त नहीं था। प्रतिवर्ष 26 जनवरी को स्वतन्त्रता दिवस मनाने का निश्चय हुआ। इस दिवस पर लोग एकत्रित होते और निम्न शपथ लेते

यह भारतीय जनता का अमूल्य अधिकार है कि वह स्वतन्त्र हो और अपने श्रम का फल भोग करे, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके जिससे उसकी प्रगति का अवसर प्राप्त हो। हमारा विश्वास है कि यदि कोई सरकार जनता के अधिकारों को छीनती है और उसका विरोध करती है तो जनता को यह अधिकार है कि वह इसे बदल दे या समाप्त कर दे। ब्रिटिश सरकार ने भारत में भारतीय जनता की स्वतन्त्रता छीन ली है और जनता के शोषण पर अपनी शक्ति की आधार शिला की स्थापना कर भारत को आर्थिक, राजनैतिक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से बर्बाद कर दिया है हम ऐसे व्यक्ति व ईश्वर के विरुद्ध एक अपराध मानते हैं और ऐसी सत्ता के समक्ष जिसने देश को चौतरफा बर्बाद कर दिया है झुकने को तैयार नहीं हैं। हम इस कारण कर न देने सहित सविनय अवज्ञा के लिये अपने को तैयार करेंगे हम

इसलिये यह शपथ लेते हैं कि हम समय समय पर काग्रस के निर्देशो का पालन करेंगे जिससे पूर्ण स्वराज की स्थापना हो सके ।[1]

पुन असहयोग आदोलन

नेहरू रिपोर्ट की अस्वीकृति के अतिरिक्त अन्य बातें भी थी जिन्होंने वातावरण को घनीभूत कर दिया और सघर्ष म भी शीघ्रता ला दी । बीसवी सदी के प्रथम 20 वर्षों के अत तक पूरे विश्व मे आर्थिक आकाश पर आर्थिक मदी के बादल मडराने लगे थ जिसके जुये के नीचे किसान और मजदूर दोनो कराहने लगे । व्यापारी वर्ग भी अपने भाग्य पर हाय-हाय करने लगा भारत इसका अपवाद कैसे होता । किसानो न अपने सगठन स्थापित किये मजदूरो ने सघर्ष की तैयारिया की और कम्युनिस्टो न इसम सबसे अधिक लाभ उठाने के लिये सरकार के कठोर दड विधान के प्रयोग को आमन्त्रित कर दिया । मार्च 1919 म प्रशासकीय मशीनरी का कठोर शिकजा कसता हुआ सामने आया । भारत के कई कम्युनिस्ट नेता मेरठ म पकड लिये गये जिन पर 4 वर्ष पूर्व से ही मुकदमा चलाने की प्रतीक्षा थी । इनमे से मुकदमा म कुछ को आजीवन कारावास तथा अन्य को और कठोर सजाये प्रदान की गई । सभी ओर वातावरण गरम हो गया । नवम्बर 1929 म इडियन ट्रेड युनियन काग्रस का सभापतित्व करते हुए प० जवाहर लाल नेहरू ने एक प्रस्ताव पास कराया, जिसम कहा गया कि भारत म समाजवादी गणतन्त्र की स्थापना हो । इसी समय गुजरात के सूरत जिले म बारदोली के शेर सरदार वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व म बारदोली के किसानो ने कर देने से तब तक इन्कार कर दिया जब तक उनकी कठिनाइयो से उन्हे मुक्त न कराया जाय । स्पष्ट था कि सत्याग्रह के द्वारा वे भी राजनीति मे विजय की आशा करते थे ।

सक्षेप म उस समय स्थिति विस्फोटक थी जब काग्रस ने पूर्ण स्वराज की घोषणा की और सविनय अवज्ञा आदोलन प्रारभ किया । यदि कोई अनुशासित अहिंसात्मक आदोलन को गति देने के लिये तैयार न हो, तो जनता से यह अपेक्षा की गई कि वह सब जगह अव्यवस्था का वातावरण पैदा कर दे । गाधी को घोषणा करनी पडी 'जनता जाती है हम उनका अनुगमन करना चाहिये क्योंकि मैं उनका नेता हूँ ।' उन्होंने आन्दोलन के ज्वार भाटा के सिरमौर का काय किया और आन्दोलन प्रारभ हुआ ।

गाधी ने पुन अतिम प्रयास के रूप म इरविन को लिखा कि क्या अब भी

---

1 सीतारमय्या पूर्वोद्धृत भाग 1 प 351 53, मुशी पूर्वोद्धृत भाग । प 26 ।

इस स्थिति से बचा जा सकता है। पर निराशा ही भविष्य के गर्भ में थी। 11 फरवरी को कांग्रेस कार्य समिति ने गांधी को सत्याग्रह प्रारंभ करने के लिये अधिकारित किया। 11 मार्च, 1930 को गांधी ने वायसराय को एक ब्रिटिश मित्र रेजीनाल्ड रेनाल्डस के माध्यम से पुनः लिखा कि वह सहायता करे और स्थिति को बिगड़ने से बचाये। पर सब बेकार गया। 12 मार्च को उन्होंने ऐतिहासिक दांडी यात्रा के कार्यक्रम प्रारंभ करने की नोटिस वायसराय को दी। और इस भारत के स्वतंत्रता के इतिहास में एक नवीन अध्याय खोल दिया।

दांडी यात्रा

अहमदाबाद से 200 मील दूर समुद्रतट पर दांडी नामक जगह थी जहां से गांधी की यात्रा प्रारंभ हुई। गांधी ने अपने साथ अपने चुने हुये 79 साथियों को लिया और योजना यह थी कि इस दूरी को पदल तय करने के बाद और समुद्रतट पर पहुंचने के बाद वह नमक कानून को तोड़ेंगे। नियमानुसार खारे पानी से भी नमक बनाना वैधानिक अपराध था। नमक कर 1923 में दो गुना कर दिया गया था और चूंकि यह कर जनता पर एक बहुत बड़ा भार था, इस कारण नमक कानून तोड़ने का निश्चय सबसे पहले किया गया।

यात्रा 12 मार्च को प्रारंभ हुई। हर जगह गांव वालों ने उन्हें तथा सत्याग्रहियों को घेर लिया और प्रसन्नता व उत्साह से उनका स्वागत किया। समाचार पत्रों ने पूरे 24 दिनों तक, जब तक यात्रा जारी रही यात्रा के विवरण छापे और 5 अप्रल को जब गांधी जी दांडी पहुंचे पूरे देश में एक नवीन तरह की देशभक्ति व उत्साह की भावना का संचार हो गया। एक दिन के प्रार्थना व व्रत के बाद 6 अप्रल को सविनय अवज्ञा का उस समय प्रारंभ हुआ जब महात्मा ने समुद्रतट पर नमक का एक टुकड़ा तयार किया।

एक अंग्रेज पत्रकार मि० ब्रेल्सफोर्ड ने इस धारणा का ही यह कहते हुये उपहास किया था कि 'क्या सम्राट एक केटिल में समुद्र के पानी के खौलाने से पद से हट जायेगा?' पर उसने गांधी के प्रतीकात्मक कार्य की कीमत नहीं समझी जिसका अर्थ था कि पूरे देश में इसी समय नमक कानून को तोड़ दिया जाय और साथ ही शराब की दूकानों पर घेरा डाल दिया जाय। नशे की दूकानों पर घेरा डालने का काम गांधी ने महिलाओं को सौंपा। कलकत्ता में लोग सबके समक्ष देशद्रोह के कानून को तोड़ने के लिये देशद्रोह का साहित्य पढ़ने लगे। मध्य प्रांत में इसी तरह जंगल के कानूनों की अवहेलना की गई। विदेशी वस्त्रों की होली जलाई जाने लगी जिसके कारण विदेशों से वस्त्रों के

आयात में 3/4 की कमी आ गई और जिससे भारतीय मिलों को अपना उत्पादन दो दो शिफ्टों में काम करके बढ़ाना पड़ा जिससे आवश्यकता की पूर्ति हो सके।

क्रूर प्रतिशोध

सरकार का प्रतिशोध भी समान रूप से शक्तिशाली था, पर था क्रूर। प्रशासकीय मशीनरी के हाथ मजबूत कर दिये गये, यहां तक कि दिल्ली ही में 1600 महिलायें जेल में बंद कर दी गई। सबसे भयावह प्रतिशोध पेशावर में देखने में आया जहां जलियांवाला बाग की कहानी दुहराई गई। गोली चलाने और लाठी चार्ज में सैकड़ों मारे गये। 12 जून, 1930 के 'यंग इंडिया' में दिल दहलाने वाली कहानी छापी गई जिसमें कु० मेडलेन स्लेड की गवाही छापी गयी थी। उसने बताया कि गुजरात में बुलसर नामक स्थान पर अहिंसावादी प्रतिनिधियों पर प्रहार किये गये। उसने कहा कि उसके पास इस बात का प्रमाण था कि (1) लाठियां जान बूझकर पेट सीने, सर और जोड़ों पर मारी गईं (2) पेट के हिस्से में तथा शरीर के गुप्त अंगों में नुकीली चीजें चुभाई गई (3) कपड़े फाड़ डाले गये और हाथों पर डंडे से प्रहार किया गया। (4) गले को तब तक दबाया गया जब तक कि लोग बेहोश न हो जायं। (5) पिन और कांटे लोगों के शरीर में घुसाये गये। (6) घायल लोगों को निर्दयता से घसीटा और मारा गया। ऐसा बेहोशी की हालत में भी किया गया। (7) उन्हें भद्दी गालियां दी गईं, और (8) उन्हें बैठा और लिटाकर उन पर घोड़े दौड़ाये गये।

16 अप्रैल, 1930 को जवाहरलाल नेहरू को कैद कर लिया गया। इसके बाद 5 मई को गांधी को पकड़कर यरवदा जेल भेज दिया गया। पर इस सबने सविनय अवज्ञा आंदोलन को हतोत्साहित करने के स्थान पर प्रोत्साहित ही किया। एक ओर जिन्ना के अनुगामी मुसलमानों ने अपने नेता के अनुसार इसे एक ऐसा आंदोलन माना जो मुस्लिमों को हिन्दुओं की दया पर छोड़ देगा, पर दूसरी ओर सरहदी गांधी खान अब्दुल गफ्फार खान ने अपने लाल कुर्ती वाले मुसलमानों के साथ इस आंदोलन में कूदकर काफी बलिदान किया। सरकार ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और स्थानीय कांग्रेस कमेटियों को अवैध घोषित कर दिया। दर्जन से अधिक आपातकालीन अध्यादेश जारी किये गये। लगभग 60 लाख लोगों जेलों में भर गये जिससे वहां जगह की भी कमी पड़ गई। फिर भी आंदोलन धीमा नहीं पड़ा। एक पत्रकार जार्ज सोलोकाम्बो और सर तेजबहादुर सप्रू तथा श्री जयकर का अगस्त 1930 का यह प्रयास कि व कांग्रेस नेताओं और लार्ड इरविन के बीच

मध्यस्थता करके शांति की स्थापना करें उसका कोई फल नहीं हुआ। पर एकाएक 25 जनवरी 1931 को कांग्रेस नताओं को मुक्त कर दिया गया। इसी समय 6 फरवरी 1931 को पूरे देश में शोक की लहर उस समय दौड़ गयी जब भारत के एक प्रमुख स्वतन्त्रता सेनानी मोतीलाल नेहरू का 6 फरवरी, 1931 को देहान्त हो गया। 17 फरवरी 1931 को प्रसिद्ध गांधी इरविन समझौते पर हस्ताक्षर हुये और 5 मार्च को महात्मा ने आन्दोलन को रोकने की घोषणा कर दी।

यहाँ यह वाछनीय है कि हम उन घटनाओं की ओर मुड़ें जिसके फल स्वरूप प्रथम गोलमेज सम्मेलन हुआ और जिसके फलस्वरूप उपरोक्त समझौते पर हस्ताक्षर हुये।

प्रथम गोलमेज सम्मेलन

कांग्रेस द्वारा बहिष्कृत प्रथम गोलमेज सम्मेलन 12 नवम्बर, 1930 को लंदन के जेम्स महल में हुआ। इसमें 89 प्रतिनिधि थे। 57 इसमें से ब्रिटिश भारत के थे 16 वायसराय द्वारा नामित राजा अपने राज्यों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। और शेष ब्रिटिश संसद के तीन दलों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। ब्रिटिश भारत से जो लोग गये थे वे भी लगभग वायसराय द्वारा नामित किये गये थे। उन्हें हिन्दुओं मुसलमानों सिखों ईसाइयों, शूद्रों, मजदूर संगठनों जमींदारों और व्यापारियों का प्रतिनिधि बनाकर बुलाया गया था। और शेष ब्रिटिश संसद के तीन दलों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। इस बात पर पूरा ध्यान दिया गया था कि कहीं राष्ट्रवादी मुसलमानों व भारतीय विधायकों से तत्संबंध में कोई परामर्श न किया जाय। ब्रिटिश प्रधान मंत्री ने सम्मेलन के शुभारम्भ में यह बताया कि किन समस्याओं पर विचार किया जाय उदाहरणार्थ (1) भारत के लिये संघीय राज्य (2) केन्द्र पर आंशिक उत्तरदायित्व (3) कुछ प्रतिबंधों सहित प्रान्तों को पूर्ण स्वायत्तता।

विचारार्थ जब भारत के लिये संघीय भांति की सरकार का प्रश्न आया तो एक भी व्यक्ति ने इस पर एतराज नहीं किया और आश्चर्यजनक रूप से राजाओं तक ने इसके पक्ष में सर हिला दिया और इस शासन से सहयोग करने की इच्छा जाहिर की। यह कहा जाता है और यह सच भी था कि राजाओं ने ऐसा ब्रिटिशों के खुराफाती इशारे पर किया जिससे कि संघीय राज्य में सदा प्रतिक्रियावादी तत्व बना रहे और यह शासन इतना प्रगतिवादी न हो जाये कि उस पर नियंत्रण संभव न हो। उपरोक्त दूसरी व तीसरी सैद्धान्तिक समस्याओं का समाधान भी संभव हो गया। पर अंतहीन और निंदनीय वादविवाद का जन्म तब हुआ जब सम्मेलन ने विभाजन अधिकार

को हाथ मे लिया । जिन्ना ने अपने पूव घोषित 14 सूत्रो को स्वीकार करन पर जोर डाला । डा० अम्बेदकर हरिजनो के लिए साम्प्रदायिक चुनाव से कम कुछ भी स्वीकार करने को तैयार नही थे । पर हिन्दू इनम से कुछ भी मानने को तयार नही थे । इस पर प्रधानमत्री ने स्वीकार किये गये तीन सूत्रो के साथ सभा की कायवाही समाप्त कर दी और इस तरह जनवरी 1931 म यह सम्मेलन विजयभाव के साथ समाप्त हो गया ।

गाधी-इरविन समझौता

प्रतिनिधि घर वापस आ गये । और सरकार ने धीरे धीरे काग्रेस से समझौता करने की आवश्यकता का अनुभव किया । कुछ अतर्राष्ट्रीय घटनाओ के कारण—यथा, रूस का चीन से आगे बढना, इटली की समस्या तथा पूरे विश्व म सामान्य आर्थिक समस्या—यह और आवश्यक हो गया । इन्ही परिस्थितियो मे 25 जनवरी को तमाम बडे बडे काग्रेस के नेताओ को जेल से रिहा कर गया दिया । गाधी ने तुरत लाड इरविन से भेंट करनी चाही जिसे स्वीकार कर लिया गया और 17 फरवरी 1931 को प्रसिद्ध गाधी इरविन समझौता हो गया जिसने पुन एक बार भारतीयो की आशाओ को उत्साहित कर दिया था कि अब उनका गन्तव्य निकट है ।

समझौत की वे शर्तें जिन्हे वायसराय ने स्वीकार किया था निम्न थी—(1) कि देश के सभी राजनतिक बदी तुरत मुक्त किये जायेग (2) कि देश मे एक सघराज्य की स्थापना की जायगी तथा भारतीयो को हस्तानरित की जाने वाली प्रत्येक शक्ति मे भारतीय हितो को ध्यान मे रखा जाएगा, और (3) कि सरकार को शराब, अफीम और विदेशी कपडे की दूकानो पर शाति-पूण ढग से धरना देने पर आपत्ति नही होगी । गाधी न अपनी ओर से यह स्वीकार किया, (1) कि वे काग्रेस म तुरन्त नागरिक असहयाग स्थगित करन को कहगे, (2) कि काग्रेस द्वितीय गोलमज सम्मलन म भाग लेगी और (3) कि काग्रेस पुलिस ज्यादतियो की छानबीन की माग पर अधिक जोर नहीं डालेगी ।

जहा एक ओर अधिकतर भारतीय नेताओ ने गाधी के कदम की सराहना की वहा जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचद्र बोस जसे काग्रेस के वामपथियो को समझौते की शर्तें खली । यह आश्वासन कि पुलिस के अत्याचार के छान बीन की माग पर जोर नही दिया जायगा दुर्भाग्यपूण था और महात्मा की सरदार भगत सिंह तथा उनके साथियो को फासी के दण्ड म उनारकर आजी वन कारावास दिलवाने की अक्षमता अत्यधिक खलन वाली थी । रक्षाशय के

[illegible]

[illegible]

[illegible]

नीति' अपनाई गई। रजमक और वाना के युद्ध केन्द्र पूरे किये गये और पहाडियो म मोटर के रास्ते बनाकर सामान की पूर्ति की व्यवस्था की गई। वैसे तो यह नीति अत्यधिक व्ययशील और भद्दी थी, पर पर्याप्त समय तक इसके कारण सफलता प्राप्त हुई और शाति स्थापित हुई। पर शीघ्र ही कुछ नई शक्तियो ने सर उठाया और एक बार फिर सीमा की शाति समाप्त हो गई।

1919 के ऐक्ट के अतगत स्थापित द्वितन्त्र को सीमा प्रात मे नही लागू किया गया था क्योकि यह कहा गया कि वहा के लोग पर्याप्त रूप से राजनतिक रूप से शिक्षित नही हैं। सरकार की शिया मुसलमानो के पक्ष की नीति ने भी ऐसी स्थिति बनाये रखी। प्रशासित व अप्रशासित राज्यो के बीच आवागमन के साधन के कारण एक ओर तो सबध स्थापित हो चुके थे और दूसरे विकसित ब्रिटिश भारत के प्रान्तो से भी उनका सबध हो चुका था। इस क्षेत्र के कबीलो मे यह स्वर भी उभर रहा था कि उनका भत्ता पिछले 30 वर्षों से नही बढाया गया है। भारत मे राजनैतिक आदोलन की अफवाह वहा जगली आग की तरह फैल जाती थी और यह आमतौर से कहा जाता कि ब्रिटिश भारत मे अब अधिक दिनो तक नही रहगे। शारदा ऐक्ट जसे सरकारी कानूनो ने पूरे क्षेत्र मे इस समाचार की धूम मचा दी थी कि भविष्य मे अब कोई भी सरकार की अनुमति के बिना विवाह नही कर पायेगा।

इन्ही परिस्थितियो मे सीमा क्षेत्र का 6 फीट 4 इच लबा अब्दुल गफ्फार खान नामक पठान गाधी व नेहरू के सपक म आया जो पठान आक्रोश को छोडकर गाधी के सत्य व अहिंसा का पुजारी हो गया। 1929 मे उसन प्रसिद्ध 'खुदाई खिदमतगार' नामक सस्था सगठित की। इसमे युवा पठान भर्ती किये जाते और उन्ह ब्रिटिश शासन से लडने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता। चूकि एक निश्चित तरह के वस्त्र धारण की क्षमता इनमे नही थी इसलिए ये ईंट के रग की लाल कुर्ती पहनते थे। इसी कारण इन्हे लाल कुर्ती वाले कहा गया। इस सगठन मे निश्चित फौजी परपरा की भाँति लोगो को बैज व रैंक प्रदान किये जाते थे। गफ्फार खान के एजेन्ट केवल सीमा के ही प्रान्तो म कार्यरत नहीं रहत थ बल्कि अप्रशासित क्षेत्रो मे भी प्रविष्ट हो जाते थे। पेशावर जिले मे उन्होन भूमिगत सरकार स्थापित की और उनकी प्रतिष्ठा बडी ऊँची हो गई। 20 अप्रैल 1929 को खान को एकाएक कद कर लिया गया और जेल भेज दिया गया। खान को उनके कुछ साथियो के साथ कैद करने से पूरे पेशावर नगर मे सामान्य आदोलन प्रारभ हो गया। असैनिक सरकार जब परिस्थिति पर काबू नही पा सकी तब सेना बुलाई गई। गोली चलाई गई जिससे सरकार के अनुसार 30 लोग मारे गये और 33 लोग घायल हुए। वसे यह सख्या निश्चित रूप से और अधिक थी। पेशावर से आदोलन कोहाट मे फैल

प्रति उनकी मौन सम्मति भारतीय आजादी के गन्तव्य प्राप्ति के लिये विनाश कारी हुआ। जैसा कि सुभाषचंद्र बोस ने कहा, कि "इस समझौते ने जिसमें तमाम छोटी छोटी व अनावश्यक बातों को विस्तार दिया गया था स्वराज की बात पर कुछ नहीं कहा गया।" गोलमेज सम्मेलनों में होने वाले निर्णय सभी उपस्थित दलों को आवश्यक रूप से मानने होते हैं। पर महात्मा ने गोलमेज सम्मेलन में सम्मिलित होना तो स्वीकार कर लिया जिससे निर्णय सम्मिलित दलों में लागू होने के लिये बाध्य नहीं करते थे। सम्मेलन के प्रतिनिधियों का चुनाव भी भारतीयों का नहीं करना था। उन लोगों को सरकार नामित करना था। उन्होंने सरकार को इसके लिए बाध्य नहीं किया कि सम्मेलन में केवल संघर्षरत दो दलों के लोग ही सम्मिलित हों। बल्कि इसके स्थान पर इसमें ऐसे तमाम लोगों के सम्मिलित होने की स्वीकृति दे दी जिन्होंने स्वतन्त्रता संघर्ष में भाग भी नहीं लिया था। और अंतत जिस तरह के संघीय सरकार को स्वीकार किया गया था जिसमें तानाशाह राजा राष्ट्रीय आकांक्षाओं के विरुद्ध सम्मिलित होने को तैयार थे, वह एक ऐसा कदम था जो स्वतन्त्रता प्रयास को और पीछे ढकेल ले गया।[1]

कांग्रेस का अगला अधिवेशन मार्च 1931 में जब कराची में हुआ तो सुभाषचंद्र बोस सहित कई लोगों ने ये बातें कहा उठाई। सच तो यह था कि यह अधिवेशन अत्यधिक निराशा के वातावरण में हुआ। इस कांग्रेस के अधिवेशन की पूर्व संध्या पर भगतसिंह और उनके साथियों को फांसी पर चढ़ाकर सरकार ने गांधी की उदार नीति का मजाक उड़ाया। लोगों ने कहा भी कि "गांधी के समझौते ने भगतसिंह को फांसी के कुए में डाल दिया।" गांधी का काले झंडों से स्वागत हुआ और उनके विरुद्ध नारे लगाये गये। कांग्रेस अधिवेशन के साथ ही साथ बोस के नेतृत्व में युवा कांग्रेस की बैठक हुई जहाँ खुले तौर पर सिंध और पंजाब के युवकों ने कांग्रेस से अलग होकर एक अलग संगठन बनाने की चेष्टा की। पर गांधी ने अपने पूर्ववत उदार भाव से विरोधियों को शांत किया और समझौता अंतत स्वीकार कर लिया गया। इस तरह नाटक के एक दृश्य का समापन हुआ और कांग्रेस ने गोलमेज सम्मेलन में सम्मिलित होने का निश्चय किया।

उत्तर पश्चिम सीमा और लाल कुर्ती वाले

तृतीय अफगान युद्ध के बाद सीमा के प्रति एक संशोधित प्रगतिशील

1 और विस्तार के लिए देखिए गोपाल एस द वायसरायल्टी आफ लार्ड इरविन पृ 89 122।

नीति' अपनाई गई । रजमक और वाना के युद्ध केन्द्र पूरे किये गये और पहाडियो मे मोटर के रास्ते बनाकर सामान की पूर्ति की व्यवस्था की गई । वैसे तो यह नीति अत्यधिक व्ययशील और भद्दी थी, पर पर्याप्त समय तक इसके कारण सफलता प्राप्त हुई और शाति स्थापित हुई । पर शीघ्र ही कुछ नई शक्तियो ने सर उठाया और एक बार फिर सीमा की शाति समाप्त हो गई ।

1919 के ऐक्ट के अतगत स्थापित द्वितन्त्र को सीमा प्रान्त मे नही लागू किया गया था क्योकि यह कहा गया कि वहा के लोग पर्याप्त रूप से राजनतिक रूप से शिक्षित नही हैं । सरकार की शिया मुसलमानो के पक्ष की नीति न भी ऐसी स्थिति बनाये रखी । प्रशासित व अप्रशासित राज्यो के बीच आवागमन के साधन के कारण एक ओर तो सबध स्थापित हो चुके थे और दूसरे विकसित ब्रिटिश भारत के प्रान्तो से भी उनका सबध हो चुका था । इस क्षेत्र के कबीलो मे यह स्वर भी उभर रहा था कि उनका भत्ता पिछले 30 वर्षों से नही बढाया गया है । भारत मे राजनैतिक आदोलन की अफवाहे वहाँ जगली आग की तरह फल जाती थी और यह आमतौर से कहा जाता कि ब्रिटिश भारत मे अब अधिक दिनो तक नही रहेगे । शारदा ऐक्ट जसे सरकारी कानूना ने पूरे क्षेत्र मे इस समाचार की धूम मचा दी थी कि भविष्य म अब कोई भी सरकार की अनुमति के बिना विवाह नही कर पायेगा ।

इन्ही परिस्थितियो मे सीमा क्षेत्र का 6 फीट 4 इच लबा अब्दुल गफ्फार खान नामक पठान गाधी व नेहरू के सपक म आया जो पठान आक्रोश को छोड कर गाधी के सत्य व अहिसा का पुजारी हो गया । 1929 मे उसने प्रसिद्ध 'खुदाई खिदमतगार' नामक सस्था सगठित की । इसमे युवा पठान भर्ती किये जाते और उन्हे ब्रिटिश शासन से लडने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता । चूकि एक निश्चित तरह के वस्त्र धारण की क्षमता इनमे नही थी इसलिए ये ईंट के रग की लाल कुर्ती पहनते थे । इसी कारण इन्ह लाल कुर्ती वाले कहा गया । इस सगठन मे निश्चित फौजी परपरा की भाँति लोगो को बैज व रैंक प्रदान किये जाते थे । गफ्फार खान के एजेन्ट केवल सीमा के ही प्रान्तो मे कायरत नही रहते थ बल्कि अप्रशासित क्षेत्रो मे भी प्रविष्ट हो जाते थे । पशावर जिले म उन्होने भूमिगत सरकार स्थापित की और उनकी प्रतिष्ठा बडी ऊँची हो गई । 20 अप्रैल 1929 को खान को एकाएक कैद कर लिया गया और जेल भेज दिया गया । खान को उनके कुछ साथिया के साथ कैद करने से पूरे पेशावर नगर म सामान्य आदोलन प्रारभ हो गया । असैनिक सरकार जब परिस्थिति पर काबू नही पा सकी तब सेना बुलाई गई । गोली चलाई गई जिससे सरकार के अनुसार 30 लोग मारे गये और 33 लोग घायल हुए । वैसे यह सख्या निश्चित रूप से और अधिक थी । पेशावर से आदोलन कोहाट मे फैल

गया और वहा से अन्य नगरो मे। यहा तक कि मोहमडस, ओराकजाई, अफरीदी आदि कबीला के क्षेत्र भी इस आदोलन से अछूत न रहे। हवाई सेना सहित पैदल सना को इस क्षेत्र मे शाति स्थापना म पर्याप्त समय लगा।

पजाब के एक मुस्लिम नेता फजल हुसैन न जो अप्रल 1930 म इरविन की कौंसिल म सम्मिलित हुये थे यह परामश दिया कि सीमा प्रात मे तीव्र होती राजनतिक चेतना को सवैधानिक दिशा दी जानी चाहिये। लोगो की कठिनाइयो की ओर ध्यान दिया जाना चाहिये और उन्ह दूर किया जाना चाहिए। वायसराय ने तुरत इस पर ध्यान देते हुये यह घोषणा की कि सीमा के लोगो की समस्याओ का अवलोकन करने हेतु एक समिति शीघ्र ही स्थापित की जायेगी। इस प्रात के चीफ कमिश्नर पियस ने स्थानीय सस्थाओ के चुनाव कराने का वादा किया तथा प्रशासन के सहायताथ एक परामशदात्री समिति स्थापित करने को कहा। इसी क्षण एक तेज कुप्रचार यह प्रारभ किया गया कि काग्रेस एक हिन्दू सगठन है जिसम मुसलमानो का कोई स्थान नही है।

फुसलाहट की नीति के साथ शक्ति के प्रयोग तथा वायदो ने सीमा प्रात को शात कर दिया। पर वादे पूरे नही किये गये जिसके फलस्वरूप 1930 के अत तक महमूदा अफरीदियो और अन्य कबाइलियो ने एक बार फिर हथियार उठा लिया। स्थिति इतनी बिगड गई कि प्रात म माशल ला लगाना पडा। सरकार की गिरती प्रतिष्ठा बचाने के लिये कबीले के क्षत्र पर सनिक आक्रमण किया गया जिसस तमाम बर्बादी हुई। पशावर पहुचने वाले तमाम मार्गों पर अधिकार कर लिया गया। पर शाति स्थापना मे बडा समय लगा। माच 1931 म वायसराय व गाधी के समझौते के अन्तगत अब्दुल गफ्फार खान का जेल स रिहा कर दिया गया। पर इसी वष 24 दिसबर को सरकार न आपातकालीन शक्ति अपन हाथ म ले ली जिससे कि उस क्षेत्र म जन सवाओ धन और शाति की रक्षा हो सके। लाल कुर्ती वालो का सगठन गर कानूनी घोषित कर दिया गया तथा गफ्फार खान को उनके चार साथियो सहित भारत के विभिन्न जेलो मे रखा गया। 1932 के बसत तक लाल कुर्ती वाला आदोलन सीमा प्रात म समाप्त हो गया।

पर गफ्फार खान का आन्दोलन बेकार नही गया। 1932 म उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त का चीफ कमिश्नर के क्षेत्र क स्थान पर गवनर का प्रात घोषित कर दिया गया तथा भारत के प्रातो व सस्थाओ के समान ही इस राजनतिक अधिकार प्रदान कर दिया गया। 1935 म इस प्रात को अन्य प्रान्तो के साथ स्वाधिकार प्राप्त हो गया और गफ्फार खान के भाई डॉ० खान साहब यहाँ क मुख्यमत्री बनाये गये। खान साहब गाधी के अनुगामी

और कांग्रेस के सदस्य थे और उन्हें आगे के संघर्ष में अहम भूमिका अदा करनी थी।"[1]

राजा

वैसे तो लार्ड मिण्टो के समय में राजाओं का फुसलाना और राष्ट्रीय आंदोलन के विरोध में खड़ा करने का काम प्रारंभ कर दिया गया था पर ब्रिटिश सदा उनकी सर्वोपरि शक्ति से ईर्ष्या रखते रहे। 1921 में 'चैम्बर आफ प्रिंसज' की स्थापना की गई जिससे राजा आपसी विचार विमर्श हेतु एकत्रित हो सकते थे। इरविन ने तो उन्हें चैम्बर की स्टैंडिंग कमेटी' तक स्थापित करने की अनुमति दे दी जो वायसराय से बात कर सकती थी और आवश्यकता होने पर उसके परामर्शदाताओं से बात कर सकती थी। पर फिर भी राजाओं को कभी भी अनावश्यक रूप से निकट नहीं लाया गया। इरविन के पूर्वाधिकारी रीडिंग ने हैदराबाद के निजाम को एक पत्र में घोषित करते हुये लिखा था ' भारत में ब्रिटिश ताज का राजत्व अत्यधिक श्रेष्ठ है और इसी लिये, भारत का कोई भी राजा ब्रिटिश सरकार से समान स्तर पर बातचीत करने की स्थिति में नहीं है। इसकी श्रेष्ठता संधियों और युद्धों से आबद्ध नहीं है बल्कि स्वतंत्र रूप से भी विद्यमान है।" इरविन इसी नीति का अनुगामी बना रहा। वह राजाओं से सदा यह कहते नहीं थकता था कि वायसराय ताज का प्रतिनिधि है जिसके कारण वह कौंसिल को विश्वास में लिये बिना ही उसका जनता पर शासन के प्रति उत्तरदायित्व है। वह उनसे बार-बार कहता था कि वे अपने क्षेत्र में एक कानूनी व्यवस्था स्थापित करें और इसी से उन्हें जनाकांक्षा का भान हो जायगा।

सच तो यह था कि वायसराय द्वारा व्यक्तिगत रूप से पालीटिकल डिपार्टमेंट के माध्यम से ताज की प्रभुसत्ता के प्रयोग से एक आवेशपूर्ण स्थिति का जन्म हो रहा था। 1927 में राजाओं ने अपने प्रतिनिधि बीकानेर के महाराजा के माध्यम से एक समिति बनाने का निवेदन किया जो ताज और राज्यों के संबंधों की जांच करे। राजाओं ने इंग्लैण्ड में अपने सहायतार्थ एक वकील भी रखा। उन्होंने कहा कि जब उन्होंने ब्रिटिशों से संधि की थी तब वे प्रभुता संपन्न और स्वतंत्र राज्य थे। इस तरह उनके तथा ब्रिटिश ताज के बीच का संबंध संविदात्मक था और इस तरह कोई भी पक्ष एक दूसरे से राय लिये बिना इसे तोड़ नहीं सकता था। प्रशासन करने का उनका कर्त्तव्य ब्रिटिशों के शासन से अन्योन्याश्रित रूप से जुड़ा था। इस कारण एक सीमा थी जिसके

1 स्विन्सन आर्थर नार्थ वेस्ट फ्रंटियर प 319 देख, गोपाल, एस पूर्वोद्धृत प 67 88।

बाहर ब्रिटिश राजाओ के आतरिक मामले म हस्तक्षेप नही कर सकते थे।

राजाओ की माग के उत्तर म, इरविन ने सर हरकोट बटलर के नेतृत्व मे एक समिति दिसबर 1927 मे बनाई जिसे इस सबध म रिपोर्ट देनी थी। बटलर समिति की रिपोट फरवरी 1929 म सामने आई। इसम यह कहा गया कि प्रभुसत्ता के सिद्धात को स्थायी नही माना जाना चाहिये "ताज के राज्यो से सबध सविदात्मक न होकर परिस्थिति और नीति के आधार पर निर्धारित होते हैं। इस सबध म कोई स्पष्ट प्रभुसत्ता के सिद्धात की रचना या व्यवहार का विस्तृत लेखन सभव नही है।'[1] स्पष्ट था कि राजाओ के सविदात्मक सिद्धात को अस्वीकार कर दिया गया था। बटलर समिति न भी राजाओ के पक्ष म बहुत अधिक कुछ नही कहा। रिपोट के आधार पर राजाओ और भारत सरकार के बीच कोई सीधा सबध सभव नही था जो भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी हो। ऐसा राजाओ से समझौता करने ही सभव था। रिपोट न सस्तुत किया कि वायसराय की कौसिल म राजाओ से निबटने के लिए एक अलग से सदस्य नियुक्त करने के स्थान पर राज्य का उत्तरदायित्व वायसराय को ताज के प्रतिनिधि के रूप म स्वय ग्रहण करना चाहिये।

स्पष्टतया समिति की सस्तुतियो का उद्देश्य भारतीय राज्यो और ब्रिटिश भारतीय जनता के बीच एक दीवार खडी करना था। इसने भारतीय राजाओ को ब्रिटिश भारत के राष्टीय और प्रजातात्रिक आदोलन से अलग कर दिया और इस तरह स्वाभाविक रूप स लोकप्रिय भारतीय नेताओ की नाराजगी मोल ली।

इस सबध म चिन्तामणि न ठीक ही कहा था, 'बटलर समिति अपनी उत्पत्ति नियुक्ति के काल के चुनाव सौंपे गये काय प्राप्त सदस्यो तथा निष्कर्षो सभी मे बुरी थी।'[2]

ब्रिटिश भारत के लोग बटलर समिति की रिपोट से प्रसन्न नही हो सकते थे। पर राजा भी प्रसन्न नही थे। ऐसा इसलिये था कि प्रभुसत्ता प्राप्ति के लिये केवल जोर ही नही दिया गया बल्कि इसकी सीमायें और बढा दी गइ जिन्हे अब तक स्वीकार किया गया था। इन्ही कारणो स बाद मे राजा गोलमेज सम्मेलन मे दूसरे मत प्रस्तुत करन लगे। उनके मस्तिष्क मे ब्रिटिश भारतीय प्रातो के साथ सघ की कल्पना थी। उन्होंने सोचा कि इससे वे अपने को ब्रिटिश प्रभुसत्ता के दबाव स ही नही बचा ले जायेंगे बल्कि ब्रिटिश भारत के प्रगतिशील व राष्ट्रवादी शक्तियो के आक्रामक हस्तक्षेप से

1 गोपाल एस पूर्वोद्धत प 127।

2 चिन्तामणि सी वाई इडियन पालिटिक्स सिन्स द म्यूटिनी प 97।

भी मुक्त रख सकेंगे। पर उनकी कल्पना सही नही थी।

1931 मे इरविन भारत से पदमुक्त हो गया। 1932 मे शिक्षा बोर्ड का प्रेसीडेंट नियुक्त किया गया। 1934 म उसके पिता की मृत्यु हो गई और वह हैलीफेक्स का तीसरा काउण्ट हो गया। 1935 मे युद्ध का सेक्रेट्री ऑफ स्टेट हो गया और फिर लाड प्रीवी सील। 1938 म वह विदेश सेक्रेट्री हो गया। 1944 मे उसे अल की उपाधि प्राप्त हुई और हाउस ऑफ लाडस मे उसकी पूण प्रतिष्ठा बनी रही।

बाहर ब्रिटिश राजाओ के आतरिक मामले म हस्तक्षेप नही कर सकते थे।

राजाओ की माग के उत्तर मे, इरविन ने सर हरकोट बटलर के नतृत्व म एक समिति दिसबर 1927 मे बनाई जिसे इस सबध मे रिपोट देनी थी। बटलर समिति की रिपोट फरवरी 1929 मे सामने आई। इसम यह कहा गया कि प्रभुसत्ता के सिद्धात को स्थायी नही माना जाना चाहिये 'ताज के राज्यो से सबध सविदात्मक न होकर परिस्थिति और नीति के आधार पर निर्धारित होते हैं। इस सबध म कोई स्पष्ट प्रभुसत्ता के सिद्धात की रचना या व्यवहार का विस्तृत लेखन सभव नही है।"[1] स्पष्ट था कि राजाओ के सविदात्मक सिद्धात को अस्वीकार कर दिया गया था। बटलर समिति ने भी राजाओ के पक्ष म बहुत अधिक कुछ नही कहा। रिपोट के आधार पर राजाओ और भारत सरकार के बीच कोई सीधा सबध सभव नही था जो भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी हो। ऐसा राजाओ से समझौता करके ही सभव था। रिपोट न सस्तुत किया कि वायसराय की कौंसिल मे राजाओ से निबटने के लिए एक अलग से सदस्य नियुक्त करने के स्थान पर, राज्य का उत्तरदायित्व वायसराय को ताज के प्रतिनिधि के रूप मे स्वय ग्रहण करना चाहिये।

स्पष्टतया, समिति की सस्तुतियो का उद्देश्य भारतीय राज्यो और ब्रिटिश भारतीय जनता के बीच एक दीवार खडी करना था। इसने भारतीय राजाओ को ब्रिटिश भारत के राष्ट्रीय और प्रजातान्त्रिक आदोलन से अलग कर दिया और इस तरह स्वाभाविक रूप से लोकप्रिय भारतीय नेताओ की नाराजगी मोल ली।

इस सबध म चितामणि ने ठीक ही कहा था, 'बटलर समिति अपनी उत्पत्ति नियुक्ति के काल के चुनाव सौपे गये काय, प्राप्त सदस्यो तथा निष्कर्षों सभी में बुरी थी।'[2]

ब्रिटिश भारत के लोग बटलर समिति की रिपोट से प्रसन्न नही हो सकते थे। पर राजा भी प्रसन्न नही थे। एसा इसलिय था कि प्रभुसत्ता प्राप्ति के लिय केवल जोर ही नहीं दिया गया, बल्कि इसकी सीमायें और बढा दी गइ जिन्ह अब तक स्वीकार किया गया था। इ ही कारणो स बाद मे राजा गोलमेज सम्मेलन म दूसरे मत प्रस्तुत करने लग। उनके मस्तिष्क म ब्रिटिश भारतीय प्राता के साथ सघ की कल्पना थी। उन्होने सोचा कि इससे वे अपने को ब्रिटिश प्रभुसत्ता के दबाव से ही नही बचा ले जायगे बल्कि ब्रिटिश भारत के प्रगतिशील व राष्ट्रवादी शक्तियो के आक्रामक हस्तक्षेप से

1 गोपाल एस पूर्वोद्धृत प 127।

2 चितामणि सी वाई इडियन पालिटिक्स सि स म्युटिनी प 97।

भी मुक्त रख सकेंगे। पर उनकी कल्पना सही नही थी।

1931 म इरविन भारत से पदमुक्त हो गया। 1932 मे शिक्षा बोड का प्रसीडेंट नियुक्त किया गया। 1934 म उसके पिता की मृत्यु हो गई और वह हैलीफेक्स का तीसरा काउण्ट हो गया। 1935 म युद्ध का सेक्रेट्री ऑफ स्टेट हो गया और फिर लाड प्रीवी सील। 1938 मे वह विदेश सक्रेट्री हो गया। 1944 म उसे अल की उपाधि प्राप्त हुई और हाउस आफ लाडस मे उसकी पूण प्रतिष्ठा बनी रही।

4

लार्ड विलिंग्डन

(1931-1936)

वायसराय के एक समकालीन विक्टर ट्रेंच ने अपने एक काल्पनिक नाम से लिखा कि लार्ड विलिंग्डन भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के सबसे विकट काल में भारत में प्रविष्ट हुआ और उसने अपने अनुभव का अधिकतर भाग ब्रिटेन के अत्यधिक उत्तरदायित्व के वहन में लगाया। उसने संवैधानिक महत्वाकांक्षा के विकास का अवलोकन किया और इसे एक उपयोगी दिशा दी। उसे स्वराज के कठोर व दबावपूर्ण उग्रता का भी भान हुआ। उसने स्थानीय निकायों को शक्ति बांटकर तथा प्रांतों को दिये गये अधिकारों को एक लचीली परिभाषा प्रदान कर इसे एक रचनात्मक दिशा प्रदान की। उसने असहयोग आंदोलन के उत्ताल तरंगों का भी अवलोकन किया और माण्टेग्यु सुधारों के उदारता के मलहम से इसे दबाया। भारत के गवर्नर जनरल और वायसराय की हैसियत से उसने आर्थिक दुरावस्था के विनाश का ही अनुभव नहीं किया बल्कि सविनय अवज्ञा की राजनैतिक भाव मुखरता के दर्शन भी किये। पर उसने इस पर अपने राजनैतिक व आर्थिक क्षेत्र के विस्तृत कार्यक्रमों की सीमेंट लगाई।"[1]

फ्रीमन टामस जो बाद में अर्ल और विलिंग्डन का मार्क्विस हो गया, 12 सितम्बर 1836 को पैदा हुआ। उसका पिता फ्रेडरिक फ्रीमन टामस था और मां हैम्पडेन के विस्काउन्ट की लड़की मावेल ब्रान्ड थी। उसने ईटन और कैम्ब्रिज में शिक्षा प्राप्त की। 1892 में मेरी ऐडलेड से विवाह किया जो ब्रासी के प्रथम अर्ल की पुत्री थी। 1895 में जब लार्ड ब्रासी विक्टोरिया का गवर्नर नियुक्त किया गया तो विलिंग्डन भी उसके सहायक के रूप में साथ चला गया। इंगलैंड वापस होने पर वह संसद सदस्य हो गया और इस तरह उसने अपने को सौम्य स्वभाव "चतुर और अच्छा व्यक्ति" सिद्ध किया। 1905 और 1912 के बीच उसने ट्रेजरी के जूनियर लार्ड के रूप में कार्य किया। 1913 में उसे बम्बई का गवर्नर नियुक्त किया गया और 1918 में उसे मद्रास इसी पद पर भेज दिया गया। दोनों प्रेसीडेंसियों में उसे अपनी कर्मठ व आकर्षक पत्नी से बड़ा सहयोग प्राप्त हुआ जिसे वह "अनवरत प्रेरक व साहसदाता"

1 ट्रेंच विक्टर लार्ड विलिंग्डन इन इंडिया 1934, पृ 21।

पुकारता था, "और वह भारत व अपने देश दोनो म सामान्य रूप स एक आदश गवनर स्वीकार किया जाता था।"[2] मद्रास के गवनर के रूप मे उसन माटेग्यु सुधारो को सफलता का जामा पहनाया। हम यह देख आये हैं कि किस तरह 1920 मे गाधी ने असहयोग आदोलन प्रारम्भ किया जो मालाबार जैसे स्थानो पर हिंसा के कारण बर्बाद हो गया। मालाबार मे मोपला विद्रोह तभी हुआ जब विलिंग्डन मद्रास का गवनर था। यह विद्रोह एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी जो इस गवनर के कूटनीति और दूरदर्शिता के अभाव मे जलियावाला बाग का दूसरा सस्करण हो जाती। 19 नवम्बर 1921 मे एक टन दुघटना ने पूरे देश मे आतक की ज्वाला फैला दी। मोपला विद्रोह के लिये आरोपित 100 लोगो को तिहर मे एक मालगाडी मे लाद दिया गया जिसे कोयम्बटूर जाना था। पर जब यह ट्रेन पोदनूर पहुची तो वहा सभी अपराधी बेहोश ही नही पाये गये बल्कि उनकी स्थिति मत्यु के अत्यधिक निकट थी। इनमे से 46 श्वासावरोधन से मर चुके थे। छ तो ट्रेन से निकालते समय मर गय। शेष को अस्पताल ले जाया गया पर इनम स दो न रास्त म ही दम तोड दिया। अस्पताल में अच्छी से अच्छी दवा भी उन सभी को नही बचा सकी और सौ कदियो में से इस तरह 70 की जान चली गई। इस पर पूरे देश मे छानबीन और दोषी को दडित करन की माग न जोर पकडा। लाड विलिंग्डन ने जनता की माग से सरकार को इस घटना को गभीरता से लेन की आवश्यकता का अनुभव कराया और उन्होंने तुरन्त छानबीन के लिए एक समिति बनाने की घोषणा कर दी। इस समिति ने अपनी रिपोट 30 अगस्त 1922 को प्रस्तुत कर दी और विलिंग्डन ने रिपोट की सस्तुति के अनुसार दोषी लोगो को दण्डित कर स्थिति बिगडने से बचाई। इसी तरह के कार्यों ने उसे जनता से प्रशसा दिलाई और उसकी लोकप्रियता मे वृद्धि की।

मद्रास स पदमुक्त होकर विलिंग्डन को कनाडा गवनर जनरल बना कर भेज दिया गया। उसने वहा कई प्रतिष्ठा और उपाधिया अर्जित की और लाड इरविन के पद से हटन पर 1931 म उस भारत का वायसराय और गवनर जनरल नियुक्त किया गया।

दिल्ली म विलिंग्डन के पदाधिकारी होने पर देश म आर्थिक अस्वस्थता पराकाष्ठा पर थी तथा राजनतिक कठिनाई भी थी। गाधी इरविन समझौते न शाति तो ला दी थी पर इसके पीछे दुराग्रह का तूफान छिपा बैठा था। अब भी यह एक विशाल प्रश्नचिह्न था कि क्या गाधी लदन जाकर द्वितीय गोलमेज सम्मेलन मे सम्मिलित होगे? यह समझौता हृदय परिवतन नही कर सका

2 मेरेसे विस्काउट द वायसरायज प 142।

था। हिंदू मुस्लिम समस्या थी और यह आरोप था कि कर्मचारी इस समझौते का उल्लंघन कर रहे है। नये वायसराय और भारत के शांतिदूत के बीच लम्बा पत्र व्यवहार हुआ। वायसराय के पास स्थानीय कर्मचारियों के विरुद्ध एक लम्बा आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया जिसमे कहा गया कि उन्होंने समझौते का उल्लंघन किया है। वायसराय से कहा गया कि यदि वह कांग्रेस से सहयोग चाहता है तो दोषी लोगों को दण्डित करे। विलिंग्डन को पता था कि यदि गांधी लदन नही गये तो वहा होने वाला द्वितीय गोलमेज सम्मेलन पहले वाले की ही भांति असफल हो जायेगा। पर स्थिति पेचीदी थी और वायसराय अपनी सरकार के लिये योग्यता और साहस से काम करने वाले अधिकारियो का बलिदान नही करना चाहता था। गांधी के शिमला आने मे देरी कर दी गई। प्रतिनिधियो का प्रथम बैच बम्बई से चल चुका था। और दूसरा जाने की तैयारी मे था। गांधी ने इसी समय इसे समाप्ति की घोषणा की। जहाज लन्दन के लिए अंतिम मेल गाड़ी छूट चुकी थी। वार्त्ता और अधिक उत्तेजक स्थिति मे पहुच चुकी थी और जब उत्तेजना पराकाष्ठा को पहुच चुकी थी और स्थिति नाटकीय हो चुकी थी तो गांधी ने विलिंग्डन की बात स्वीकार करने की घोषणा की और इतजार मे खड़ी एक विशेष ट्रेन ने मैदानी इलाको को पार करके उन्हे बम्बई समुद्र तट पर पहुचाया। इसे विलिंग्डन की प्रथम कूटनीतिक विजय माना गया क्योकि उसने अपनी स्थिति को न तो खराब किया और न ही सरकारी कर्मचारियो को ही बलि वेदी पर चढ़ाया। उसने एक ऐसा समझौता करने मे सफलता प्राप्त की जो ऐसे सभी लोगो को सतुष्ट करती है जो उत्तम हृदय वाले हैं।'[1]

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन (1931-32)

पर द्वितीय गोलमेज सम्मेलन प्रारम्भ होने से पूर्व टेम्स नदी मे बहुत पानी बह चुका था। भारत मे लार्ड इरविन का स्थान लार्ड विलिंग्डन ले चुका था जिसका यह विश्वास था कि इरविन ने गांधी के प्रति आवश्यकता से अधिक उदारता दिखाई। वैसे तो इगलैंड मे मैकडानल्ड ही सरकार का नेता था पर उसे लेबर दल ने अपने दल से निकाल दिया था और वह स्वयं सदन मे विरोधी का स्थान ग्रहण किये हुए थे, जब कि दूसरी ओर उनका पूर्व नेता अनुदार राष्ट्रीय सरकार का नेतृत्व कर रहा था। अनुदार सदस्य सर समुअल होरे को वेजवुड के स्थान पर भारत का सकेट्री आफ स्टेट बनाया गया। गोलमेज सम्मेलन अब शुरू हुआ, और अभी जब इसकी

1 ड्रेंच विक्टर पूर्वोद्धत पृ० 187 188।

वैठकें चल रही थी इगलैण्ड मे आम चुनाव हुए और मैकडानल्ड के नेतृत्व म पूणतया एक अनुदारवादी सरकार न नवम्बर 1931 म काय भार ग्रहण किया। सम्मेलन का पूण माहौल परिवर्तित हो गया और ऐसा लगने लगा कि आगे बढती गाडी ने पीछे की ओर चलना प्रारम्भ कर दिया है।

सम्मेलन का सभापतित्व मैकडानल्ड ने किया जिसम सम्मिलित होन के लिए कांग्रेस न एक सदस्य के रूप मे गाधी को भेजा था। श्रीमती सरोजिनी नायडू और प० मदन मोहन मालवीय न सरकार के नामित सदस्या के रूप म इसमे भाग लिया। अन्य सम्प्रदायो के प्रतिनिधि भी पूववत बुलाये गये। सम्मेलन का महत्वपूण काय दो उप समितियो को सौप दिया गया। इनमे स एक को 'सघीय सगठन' तथा दूसरे पर अल्पमतवाला' का काय सौपा गया। पहले सम्मेलन के काय का पुनरावलोकन किया गया। सघीय सगठन वाली समिति मे जब रक्षोपाय के नाम पर ब्रिटिश शासन का बनाये रखन की चेष्टा की गयी तो गाधी आश्चयचकित रह गये और इस तरह इरविन समझौत का गला घाट दिया गया।

पर और बुरा तो अभी आगे घटना था। अल्पमतीय उपसमिति' म साम्प्रदायिकता की खिचडी पूणरूपेण पकाई गई। डा० अन्सारी जैसे राष्ट्रवादियो को इस समिति से सपरिश्रम अलग किया गया। शीघ्र ही जहर सामन प्रकट होन लगा। मुस्लिम प्रतिनिधियो न अपने इस निश्चय की घोषणा की कि वे पजाब और बगाल मे अपन पूण बहुमत, तथा जहा उनकी सख्या कम है वहा अपने वग के अधिक सदस्यो का चुनाव तथा केन्द्र म कम स कम एक तिहाई सीटो से कम पर सतुष्ट नही होंगे। उनका मत था कि व खायगे भी और बचा भी रखेंगे। पजाब मे सिखो न भी वसी ही माग की जसी मुसलमानो ने मद्रास, बम्बई यू० पी० और आसाम म की थी। पिछडे वग के लोग अलग प्रतिनिधित्व चाहते थे। युरोपीय लोग बगाल म अलग स अपना विशेष प्रतिनिधित्व चाहते थे जो मुसलमानो के विरोध म जाता था। व बुरी तरह से लडन पर आमादा थे। नहरू जी न लिखा है कि यह सब भ्रष्टाचार था, बडा भ्रष्टाचार छोटा भ्रष्टाचार, हिन्दुओ मुसलमानो, सिखो, आग्लभारतीयो और युरोपियो के लिय सीटो की माग थी पर यह सब माग उच्चवग के लोगो के लिये ही थी जनता की ओर किसी की दृष्टि नही थी। अवसरवादिता का बोलबाला था और विभिन्न दल भूखे भेडियो की भाति शिकार क लिए दाव लगाये बैठे थ—जो उन्हे सविधान के आधार पर प्राप्त होना था। स्वतत्रता का भाव भ्रष्टाचार भाव म परिवर्तित हो चुका था।[1]

---

1 नेहरू ज आटोबाईग्राफी प० 294।

युरोपियों और मुसलमानों के बीच एक बेशर्मी भरा समझौता हो चुका था जिसके अंतर्गत वे एक दूसरे के सहायतार्थ तैयार थे और कांग्रेस से संघर्ष हेतु उन्होंने दृढ़ निश्चय कर रखा था।[1] गांधी का यह कहना कि कांग्रेस देश के 85% लोगों का प्रतिनिधित्व करती है बेकार था और इसलिए इसे ही केवल एक पार्टी नहीं माना जा सकता था[2] तथा यह सोचना भी गलत था कि भारत की साम्प्रदायिक समस्या ब्रिटिशों की उपस्थिति में ही हल हो सकती थी।

और जब सब कुछ असफल हो गया तो अपने को नैतिकवादी कहने वाले मैकडानल्ड ने कहा कि सबसे विकट समस्या साम्प्रदायिक समस्या थी। उसने कहा कि 'इस सम्मेलन ने दो बार इस समस्या को हाथ में लिया पर दोनों बार यह असफल हो गई इसका अर्थ है कि ब्रिटिश सरकार आपके लिये प्रतिनिधित्व की समस्या का समाधान हो नहीं करेगी बल्कि न्यायपूर्ण तथा बुद्धिमत्ता से संविधान में अल्पमत वालों के लिए रक्षोपाय तथा संतुलन बनाये रखने का प्रयास करेगी जिससे बहुमत वर्ग की आतंकवादी शक्ति से उन्हें बचाया जा सके।' इस घोषणा का परिणाम था साम्प्रदायिक पंचनिर्णय। गांधी ने प्रधानमंत्री को धन्यवाद देते हुये खेद व्यक्त किया कि उनका और प्रधानमंत्री का रास्ता अलग अलग हो गया है।'

अकेला प्रतिनिधि

गांधी निराश घर वापस लौटे। उन्होंने कांग्रेस के लाभ के लिए पूर्ण चेष्टा की पर कुछ ऐसे लोग थे जिन्होंने इस बात की आलोचना की कि उन्हें अकेले कांग्रेस का प्रतिनिधि बनाकर क्या भेजा गया। सुभाष चंद्र बोस ने कहा कि सरकार द्वारा कांग्रेस के लिए 15 सीटें देने को अस्वीकार कर महात्मा सम्मेलन के '107 प्रतिनिधियों के बीच अकेले ही मोर्चा संभाले हुये थे।'[3] वे अपने साथ परामर्शदाता नहीं ले गए। उनकी गूढ़ विधि तथा आर्थिक मामलों में महानता की स्वीकारोक्ति उनको प्रसिद्धि नहीं प्रदान कर सकी क्योंकि वहाँ तो वे ऐसे प्रतिनिधियों के बीच थे जो जितने बुद्धिमान थे उससे अधिक दिखते थे।

सच तो यह था कि गांधी की इंगलैण्ड यात्रा ठीक ढंग से नियोजित नहीं थी। स्वाभाविक रूप से ऐसा इसलिए था क्योंकि गांधी अंतिम क्षणों तक

1 एक यूरोपीय प्रतिनिधि मि० बेंथल के गुप्त पत्र में इसकी चर्चा है जिसे कई स्थानों पर भेजा गया।

2 गांधी महात्मा इंडियन केस फार स्वराज (सेलेक्ट डाकूमेंटस) प० 155।

3 देखें बोस, एस पर्वोद्धृत प० 226-31।

सम्मेलन मे जाने के सबध मे अनिणय की स्थिति मे थे। वह लदन देर मे पहुँचे और इस तरह उन्हें अपने विरोधियो की तुलना मे वाता की जानकारी कम थी और तैयारी भी कम। इसके अतिरिक्त वे वहा दो तरह की प्रति निधित्व शक्ति लेकर गये—एक तो विश्व गुरु के रूप मे और दूसरे काग्रेस नता के रूप मे—और उनके ये दोनो म तव्य आश्चयजनक ढग के एक दूसरे मे मिल गए थे। सम्मेलन के बाहर वे मिशनरियो, पत्रकारो, राजनयज्ञो और सोसाइटियो की महिला प्रतिनिधियो से आध्यात्म और नतिकता की बात करत फिर रहे थे जब कि उ ह सम्मेलन की समस्याओ से जूझना चाहिए था और भारतीय सदस्यो के पास राय मशविरे के लिए उपस्थित होना चाहिए था। सच तो यह था कि वे पहले सम्मेलन के अवसर पर उस समय अधिक शक्तिशाली स्थिति मे थे जब वे जेल म थे न कि इसमे जिसमे कि वे स्वय उपस्थित थे

यदि महात्मा का समय लदन मे सही ढग से उपयोग मे नही लाया गया तो साथ ही इसका उपयोग उनके द्वारा यूरोपीय देशो मे भी ठीक से नही किया गया। पेरिस म वे उनमे से किसी से नही मिल पाये जिनसे उ ह मिलना चाहिए था और जेनवा मे भारतीयो के प्रति सहानुभूति का वातावरण पैदा होने का अवसर ही नही आ सका क्योकि राष्ट्र सघ के ऐसे लोगो मे व नही मिल सके जो महत्वपूर्ण थे। स्विटजरलैण्ड में रोमा रोला से तथा इटली म उसके अधिनायक मुसोलिनी से उनकी भेंट भारत के लाभ के लिए अति उत्कृष्ट थी, पर अ य स्थानो पर उ होने चुस्त राजनीति की जगह पर एक मिशनरी की तरह काय किया।

इधर 28 दिसबर 1931 को गाधी जब भारत वापस लौटे तो उ होने आश्चयजनक रूप से पाया कि लाड विलिंग्डन न समय स प्रहार प्रारभ कर दिया है। बगाल मे माशल ला लगा हुआ था। इस प्रा त के अतिरिक्त यू० पी० और सीमा प्रा त मे आर्डीने स से शासन होता था। श्री जवाहर लाल नेहरू नजरबद थे जबकि सीमा प्रान्त के खान अब्दुल गफ्फार खान और उनके भाई जेल म थे। महात्मा ने वायसराय से भेंट करनी चाही पर उ ह इसके बदले फटकार ही मिली।[1] अब काग्रेस वर्किंग कमेटी न उ ह सत्याग्रह जारी करन का अधिकार दिया। पर यह काय प्रारभ होते ही गाधी सहित सभी सदस्य जेल म भर दिए गए। सरकार की बदले की नीति यहीं समाप्त नही हुई। तमाम नये आर्डीने सो ने कायपालिका को निरकुश बना दिया। छोट बडे काग्रेस के कायकर्त्ता और यहाँ तक कि उनस सहानुभूति रखन वाले लोग जेल मे डाल दिये गये। सगठन गर कानूनी घोषित कर दिया गया। प्रेस पर

1 देखें गाधी महात्मा इडियाज केस फार स्वराज (सेलेक्ट डाकूमेंटस) पृ० 23 33।

परिपक्क्वता आई और इसी आधार पर एक श्वेत पत्र तैयार किया गया और परीक्षण के लिए प्रस्तुत किया गया। इसकी रिपोट ससद की ज्वाइट सेलेक्ट कमेटी को दी जानी थी।

इस पत्र की मह्त्वपूण शर्तें निम्न थी—(1) भारतीय प्रान्ता और राज्यो की मिली जुली एक सघीय सरकार की रचना की जानी थी और केन्द्र मे दो सदनो सहित इसे स्थापित किया जाना था। (2) प्रातो को कुछ रक्षोपायो सहित पूण स्वायत्तता दी जानी थी। (3) केन्द्रीय और प्रातीय विधायिकाओ म अतर स्पष्ट किया जाना था। (4) सघीय न्यायालय रिजव बैंक तथा रलव जसी सघीय सस्थाओ की स्थापना की जानी थी।

हाउस ऑफ कामन्स तथा हाउस आफ लाड्स' प्रत्येक से 16 सदस्यो की बनी ज्वाइट सेलेक्ट कमटी द्वारा जिसका चेयरमैन लाड लिनलिथगो का बनाया गया था, श्वेत पत्र की जाँच हुई। इसके समक्ष इडियन एसोसियेशन आदि ने स्मृति पत्र प्रस्तुत किए और गवाही दी। इस समिति ने कुछ परिवतन भी सस्तुत किये जसे (1) केवल तीन प्रातो के स्थान पर छ प्रातों मे द्विसदनात्मक विधायिका की स्थापना (2) केन्द्र और प्राता मे उच्च सदन का सदा बना रहना (3) सघीय सदन के लिए प्रत्यक्ष चुनाव के स्थान पर अप्रत्यक्ष चुनाव तथा (4) सघीय न्यायालय की शक्ति पर भविष्य म प्रतिबध।

इन मस्तुतियो के आधार पर एक बिल तयार किया गया और इसे ही 1935 के 'गवनमेण्ट आफ इडिया ऐक्ट' के रूप मे पारित कर दिया गया।

5

भारत सरकार अधिनियम (1935)

1935 का भारत सरकार अधिनियम एक लबा सविधि था जिसमे 321 खड और 10 अनुसूचिया थी। इसकी विषय-वस्तु निम्न स्रोतो से प्राप्त की गई थी—(1) साइमन कमीशन रिपोर्ट (2) नेहरू समिति रिपोर्ट, (3) गोलमेज सम्मेलनो मे हुए विचार विमर्श (4) श्वेत पत्र, (5) ज्वाइट सलेक्ट कमेटी रिपोर्ट, एव (6) लोथियन रिपोर्ट। अन्य कारणो के अतिरिक्त दो विशेष कारण थे जिनके फलस्वरूप यह ऐक्ट इतना लबा था प्रथम यह एक अत्यधिक विचित्र तरह की सरकार के विषय मे रचा गया था और दूसरे इसमे यह चेष्टा की गई कि विधायिकाओ और मत्रियो के द्वारा गलत काय किए जाने के विरुद्ध रक्षोपाय किय जाय।

इस ऐक्ट की सक्षिप्त रूपरेखा जिसमे से कुछ का विस्तार अगले पृष्ठो मे प्रस्तुत किया गया है यहा प्रस्तुत है।

इस एक्ट के सबध म एक रुचिकर बात यह थी कि इसका अपना कोई आमुख नही था। इसमे 1919 ऐक्ट का ही आमुख लाकर रख दिया गया था। आमुख मे भारत को शनै-शनै डोमीनियन की स्थिति प्रदान की जानी थी और चूकि इस नीति का आधारभूत सिद्धात नही बदला गया, इसलिए इस एक्ट के रचना करने वालो ने 1919 का एक्ट समाप्त करते हुए 1935 के एक्ट म पुराने आमुख को ही जोड दिया।

ब्रिटिश ससद की सर्वोच्चता

ब्रिटिश ससद की सर्वोच्चता बनाए रखी गई। ऐक्ट के अनुसार भारत द्वारा डोमीनियन की स्थिति की शनै शनै प्राप्ति, जो उसका अतिम उद्देश्य था, इस सबध म ब्रिटिश ससद को ही निश्चय करना था कि कब और कैसे इस दिशा म कदम बढाया जाय। वैसे तो सघीय और प्रातीय विधायिकायें कुछ विशेष बातो म परिवतन प्रस्तुत कर सकती थी पर भारतीय सविधान मे परिवतन या वापसी का अधिकार ईर्ष्यालु ढग से ब्रिटिश ससद के ही हाथ म रखा गया था।

परिपक्वता आई और इसी आधार पर एक श्वेत पत्र तयार किया गया और परीक्षण के लिए प्रस्तुत किया गया। इसकी रिपोट ससद की ज्वाइट सेलेक्ट कमेटी को दी जानी थी।

इस पत्र की महत्वपूण शर्तें निम्न थीं—(1) भारतीय प्रान्ता और राज्यो की मिली जुली एक सघीय सरकार की रचना की जानी थी और केन्द्र म दो सदना सहित इस स्थापित किया जाना था। (2) प्रातो को कुछ रक्षोपायों सहित पूण स्वायत्तता दी जानी थी। (3) केन्द्रीय और प्रातीय विधायिकाआ म अतर स्पष्ट किया जाना था। (4) सघीय न्यायालय, रिजव बक तथा रेलवे जसी सघीय सस्थाआ की स्थापना की जानी थी।

'हाउस ऑफ कामन्स' तथा 'हाउस ऑफ लाड्स' प्रत्येक से 16 सदस्या की बनी ज्वाइट सेलेक्ट कमेटी द्वारा जिसका चेयरमैन लाड लिनलिथगो को बनाया गया था, श्वेत पत्र की जाँच हुई। इसके समक्ष इडियन एसोसियशन आदि ने स्मृति पत्र प्रस्तुत किए और गवाही दी। इस समिति ने कुछ परिवतन भी सस्तुत किय जस (1) केवल तीन प्राता के स्थान पर छ प्राता म द्विसदनात्मक विधायिका की स्थापना, (2) केन्द्र और प्राता म उच्च सदन का सदा बना रहना, (3) सघीय सदन के लिए प्रत्यक्ष चुनाव के स्थान पर अप्रत्यक्ष चुनाव तथा (4) सघीय न्यायालय की शक्ति पर भविष्य मे प्रतिबध।

इन सस्तुतिया के आधार पर एक बिल तैयार किया गया और इस ही 1935 के 'गवनमेण्ट आफ इडिया एक्ट' के रूप मे पारित कर दिया गया।

5

भारत सरकार अधिनियम (1935)

1935 का भारत सरकार अधिनियम एक लंबा संविधि था जिसमें 321 खंड और 10 अनुसूचियां थी। इसकी विषय-वस्तु निम्न स्रोतों से प्राप्त की गई थी—(1) साइमन कमीशन रिपोर्ट, (2) नेहरू समिति रिपोर्ट, (3) गोलमेज सम्मेलनों में हुए विचार विमर्श, (4) श्वेत पत्र, (5) ज्वाइंट सलेक्ट कमेटी रिपोर्ट, एवं (6) लोथियन रिपोर्ट। अन्य कारणों के अतिरिक्त दो विशेष कारण थे जिसके फलस्वरूप यह ऐक्ट इतना लंबा था प्रथम यह एक अत्यधिक विचित्र तरह की सरकार के विषय में रचा गया था और दूसरे इसमें यह चेष्टा की गई कि विधायिकाओं और मंत्रियों के द्वारा गलत काम किए जाने के विरुद्ध रक्षोपाय किये जायं।

इस एक्ट की संक्षिप्त रूपरेखा, जिसमें से कुछ का विस्तार अगले पृष्ठों में प्रस्तुत किया गया है, यहां प्रस्तुत है।

इस ऐक्ट के संबंध में एक रुचिकर बात यह थी कि इसका अपना कोई आमुख नहीं था। इसमें 1919 एक्ट का ही आमुख लाकर रख दिया गया था। आमुख में भारत को शनै-शनै डोमीनियन की स्थिति प्रदान की जानी थी और चूंकि इस नीति का आधारभूत सिद्धांत नहीं बदला गया, इसलिए इस एक्ट के रचना करने वालों ने 1919 का ऐक्ट समाप्त करते हुए 1935 के ऐक्ट में पुराने आमुख को ही जोड़ दिया।

ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता

ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता बनाए रखी गई। एक्ट के अनुसार भारत द्वारा डोमीनियन की स्थिति की शनै शनै प्राप्ति जो उसका अंतिम उद्देश्य था, इस संबंध में ब्रिटिश संसद का ही निश्चय करना था कि कब और कैसे इस दिशा में कदम बढ़ाया जाय। वैसे तो संघीय और प्रांतीय विधायिकायें कुछ विशेष बातों में परिवर्तन प्रस्तुत कर सकती थी पर भारतीय संविधान में परिवर्तन या वापसी का अधिकार ईर्ष्यालु ढंग से ब्रिटिश संसद के ही हाथ में रखा गया था।

सेक्रेट्री आफ स्टेट और उसकी कौंसिल

भारत के ताग सेक्रेट्री आफ स्टेट के इंडिया कौंसिल के विरुद्ध लबे अरसे से आदोलन करत आ रह थे। 1858 म स्थापित कौंसिल इस ऐक्ट द्वारा समाप्त कर दी गइ। अब सेक्रेट्री ऑफ स्टेट को यह अधिकार दे दिया गया कि वह कम से कम तीन और अधिक से अधिक छ परामशदाताओ की नियुक्ति कर ले जो उस सौंप गय मसला पर उसे परामश दे। इनम स कम से कम आधे लोग ऐस हा जो भारत मे 14 वष तक सेवा कर चुके हो और अपन नियुक्ति के समय स 2 वष पूव तक भारत के बाहर न रहे हा। इह केवल परामश देने का काय करना था वे ससद मे नही बैठ सकते थे। उनके परामश पर सेक्रेट्री आफ स्टेट काय करने को बाध्य नही था। पर नागरिक सेवाओ हेतु नियम बनात समय इनम से आधे लागा की स्वीकृति आवश्यक थी।

प्रातीय मसलो पर सेक्रेट्री ऑफ स्टट की शक्ति वैसे भी कम थी क्योकि इसे लोकप्रिय मत्रिया के हाथ म सौंप दिया गया था। पर फिर भी गवनर जनरल व गवनरा की विशेष शक्ति उसके हाथ म होन से सेक्रेट्री आफ स्टेट अब भी सवप्रमुख था।

सघ और सघीय सरकार

ऐक्ट के अतगत भारत म एक सघ की स्थापना होनी थी जिसमे तत्कालीन 11 प्राता छ चीफ कमिश्नर के प्रातो और उन राज्यो को जो इनम आना चाहत थे सम्मिलित होना था। प्रातो के लिए सघ मे सम्मिलित होना आवश्यक था, पर राज्यो के लिए ऐसा नही था। यदि राज्य सघ म सम्मिलित होना चाहते ता उन्ह सघ म मिल जान के इकरारनामे पर हस्ताक्षर करना होता और अपनी नियत्रण शक्ति सघ को सौंप देनी पडती। केद्र को एक बार प्रदान की गई शक्ति वापस नही ली जा सकती थी। पर यदि वे बाद म इसम सम्मिलित होना चाहते तो एक पूरक सूचना पत्र सहित यह काय हा जाता।

सघ सरकार एव प्राता की कायवाहियो म सीमा रेखा खीचने के लिए एक्ट ने 3 सूचियाँ तैयार की यथा—(1) सघीय सूची जिसम 59 विषय थे जसे सेना रेलवे सिक्के आदि जिसके सबध मे सघीय सदन ही कानून बना सकता था, (2) प्रातीय सूची जिसमे 54 विषय थ। तत्सबध मे प्रातीय विधायिकाये ही विधान बना सकती थी और (3) समवर्ती सूची जिसके सबध म सघ सरकार व प्रात दोना कानून बना सकत थ। पर सघष की स्थिति मे सघीय कानून ही सर्वोपरि होता था। अवशिष्ट बातो के लिए जिनका

विवरण किसी सूची म नही था उसे गवनर जनरल के अधिकार म कर दिया गया जा सघ या प्रात किसी को भी कानून बनान का आदश दे सकता था।

सघीय कायपालिका म गवनर जनरल, कौसिलरो और मत्रिया को रखा गया था। गवनर जनरल को ताज की आर स शक्ति प्राप्त थी। उसकी शक्ति उन कानूनो की सीमा तक पहुचती थी जिसके सबध मे सघीय विधायिका कानून बनाती थी जैसे सैनिका की भर्ती, सधि करना और युद्ध करना। इसके अतिरिक्त उसे कुछ विशेष अधिकार भी प्राप्त थे जो सभी चीजा से सबधित थे और जो सघ व प्रात दोना से जुडे थे।

सघीय विधायिका द्विसदनीय होती थी। उच्च सदन का नाम कौसिल आफ स्टेट तथा निम्न सदन का फेडरल असम्बली था। सघीय विधायिका सभी सघ सूची तथा समवर्ती सूची के विषयो पर विधान बना सकती थी। गवनर जनरल की अनुमति स वह समवर्ती सूची सबधी मसलो पर भी कानून बना सकती थी।

राजा द्वारा केन्द्रीय विधायिका के दोनो सदना के समक्ष एक सबोधन प्रस्तुत होने पर ही अखिल भारतीय सघ का श्री गणेश होना था। यह सशोधन तभी प्रस्तुत हो सकता था जब सभी राज्यो की आधी जनता सघ म सम्मिलित हो जाय और राज्या के उच्च सदना की आधी सीटें भर जाय और चूकि ये शर्तें नही पूरी हुइ, इसी कारण सविधान का सघीय भाग कभी प्रयोग म नही आया।

केन्द्र के द्वितन्त्र

1919 के ऐक्ट के द्वारा प्राती मे स्थापित द्वितन्त्र समाप्त कर दिया गया। पर वतमान ऐक्ट ने केन्द्र मे द्वितन्त्र की स्थापना की जिसके द्वारा सघीय कायकारिणी का एक भाग सुरक्षित घोषित किया गया, जब कि दूसरा भाग बदल दिया गया। सुरक्षित भाग म सुरक्षा विदेश विभाग, कबीले क्षेत्र और धार्मिक मसले जसी महत्वपूण बातें थी। ये विषय गवनर जनरल के नियन्त्रण मे बन रहते थे। पर वह अपनी स्वेच्छा का प्रयोग करते हुए उनके प्रशासन के लिए अधिक स अधिक तीन कौसिलर नियुक्त कर सकता था जो उस सहायता करते और उसके प्रति उत्तरदायी होते थे। परिवर्तित भाग का प्रशासन गवनर जनरल मत्रिया की सहायता से करता था जो विधायका मे स नियुक्त होते और उन्ही के प्रति उत्तरदायी होत थ। गवनर जनरल को अलग से सूचित किया गया था कि वह मत्रिया की नियुक्ति उस व्यक्ति की राय से करे जो विधायिका मे बहुमत बनाय रखने की क्षमता रखता हो तथा

मन्त्रिया व कौंसिलरा के बीच सामूहिक विचार विमर्श को प्रोत्साहित कर सकता हा।

द्विसदनीय विस्तृत विधायिकायें

ऐक्ट के अतगत केन्द्र तथा ग्यारह प्राता म से छ मे द्विसदनीय विधायिका की स्थापना हुई। विधायिकाओ की सदस्य सख्या बढा दी गई। इस तरह केन्द्रीय विधान सभा म 375 सदस्य होते थे और राज्य सभा म 260। बगाल की राज्य सभा सबसे बडी होती थी जिसम कम से कम 63 और अधिक से अधिक 65 सदस्य हाते थ। आसाम की राज्य सभा सबस छोटी होती थी जिसम कम स कम 21 और अधिक से अधिक 22 सदस्य होते थे। पुन बगाल की विधान सभा 250 सदस्या सहित सबस बडी होती थी जब कि उत्तर पश्चिम प्रात की 50 सदस्या सहित सबसे छोटी।

निर्वाचक समूह

मताधिकार की योग्यता घटा देने से निर्वाचका की सख्या बढ गई। प्रातीय विधायिका के लिए मतदान हेतु 10% जनसख्या को अधिकार प्राप्त हो गया। पर साथ ही साथ साम्प्रदायिक चुनाव क्षेत्र का पाप भी पलना प्रारभ हो गया। 1919 म निर्वाचक 10 भागा म विभाजित था, पर अब यह 17 असमान रूपो म बट गया। स्त्रिया के लिए तथा भारतीय ईसाइयो के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र बनाए गए।

सघीय न्यायालय

ऐक्ट के अनुसार सघीय न्यायालय को मुकदम देखने और अपील सुनने के अधिकार प्राप्त हुए। इसे क्षेत्र निर्धारण, सघ की इकाइया के झगडे निबटाने का तथा सविधान की विवेचना करने का अधिकार प्राप्त हुआ। पर अतिम न्यायालय अब भी प्रीवी कौंसिल ही बनी रही।

रिजव बक

एक गवनर और 15 डाइरेक्टरा के नेतृत्व म एक रिजव बैंक की स्थापना की गई जो सिक्के बनाने व नोट छापने पर नियत्रण रखती थी और देश की स्थिरता का उत्तरदायित्व वहन करती थी।

प्रातीय स्वायत्तता

पर ऐक्ट की सबस बडी विशेषता प्राता म स्वायत्तता की स्थापना थी।

प्रातो मे पुरानी द्वितत्रीय परपरा समाप्त कर दी गई और परिवर्तित और आरक्षित विषया का अतर भी समाप्त कर दिया गया। पूरा प्रातीय शासन मत्रिया के अधीन कर दिया गया। मत्रियो की नियुक्ति गवनर विधान सभा के बहुमत दल वाले नेता के परामश से करता था। व विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होते थे और उनमे सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना को प्रोत्साहित किया जाता था।

पर इस ऐक्ट का एक दुर्भाग्यपूण पहलू यह था कि इसने गवनर को कुछ विशेष विस्तृत उत्तरदायित्व सौप रखा था जो इन उत्तरदायित्वा के पर्दे के पीछे स मत्रियो की सारी कायवाही समाप्त कर सकता था और अधिनायक की शक्ति प्राप्त कर सकता था। इसीलिये कुछ लोगो का यह विचार है कि प्रातीय स्वायत्तता क्या थी, यह तो गवनर की ही स्वायत्तता थी।

क्षेत्रीय परिवतन

इस ऐक्ट ने कुछ अति दूरगामी क्षेत्रीय परिवतन किये। बर्मा को भारत से अलग करके उपनिवेश कार्यालय के नियत्रण मे कर दिया गया। यह हस्तान्तरण 1 अप्रल 1937 को हुआ। अदन को भारत के प्रशासकीय नियत्रण से हटा कर ताज के एक उपनिवेश के अधीन कर दिया गया। बरार वैसे तो निजाम के अधिकार मे प्रतीक के रूप म रह गया, पर यह भी गवनर के एक प्रात का भाग बना दिया गया जिसे मध्य प्रात व बरार का नाम दिया गया।

रक्षोपाय

इस ऐक्ट की सब विशिष्ट चीज इसके रक्षोपाय थे। एक सविधान म रक्षोपाय की आवश्यकता ऐसी बातो को रोकने के लिए होती है जिसे सविधान के अतगत उचित नही माना जाता। एस रक्षोपाय सभी सविधानो मे जुडे होते हैं उदाहरणाथ अमेरिका के सविधान मे क्रातिकारी कायवाहियो पर पाबदी के लिए रक्षोपाय की व्यवस्था की गई है। भारत मे जहा 1935 का सविधान सदेह व अविश्वास पर आधारित था, वहा रक्षोपायो की मात्रा निश्चित रूप स अधिक होनी थी।

यहा सक्षेप मे भारत मे रक्षोपाय के विचार की उत्पत्ति और विकास पर विचार करना रुचिकर होगा, जहाँ पर भिन भिन लोग यथा ब्रिटिश, राजा, सम्प्रदायवादी और विभि न वग निवास करते थे और वे सभी विकट भयग्रस्ता के शिकार थे। इसीलिये सवि धान को उनके लिए रक्षोपाय की व्यवस्था करनी थी। लगता है इस विचार का प्रारभ साइमन कमीशन स हुआ, पर इस पर विस्तार मे विचार जनवरी 1931 के प्रथम गोलमेज

सम्मेलन मे हुआ । यहा पर सर तेजबहादुर सप्रू ने इनकी आवश्यकता उस सीमा तक स्वीकार की जहा तक वे प्रजातत्र और धर्म निरपेक्षता पर आघात न करे । मार्च 1939 मे गाधी इर्विन समझौते मे कहा गया कि ऐसे रक्षोपाय केवल भारत के हित मे होगे । सितबर 1931 म हुये द्वितीय गोलमेज सम्मेलन मे गाधी ने इन्हे इस शर्त पर स्वीकार किया कि यह लगे कि य भारत के हित मे हैं । साथ ही ये ब्रिटेन के अहित मे भी न हो। सयुक्त ससदीय रिपोट मे विस्तार स इस पर विचार हुआ और रक्षोपायो को आवश्यक माना गया । इसीलिये 1935 के ऐक्ट मे रक्षोपाय जोड दिये गये ।

ये रक्षोपाय तमाम और विभिन्न तरह के थे जिनके अनेक विषय थे (1) रक्षा विदेशी मामले कबीले के क्षेत्र और धार्मिक मामले गवनर जनरल के हाथ ही मे रखे गय जो स्वमति से इन मसलो पर काय करता था तथा इस सबध म अपने पति (विधायिका के प्रति नही) उत्तरदायी कौंसिलरो से परामश करता था । राष्ट्रीय महत्ता की दृष्टि स इन्हे आरक्षित विषय घोषित किया गया था और इस मत्रियो की शक्ति सीमा के बाहर रखा गया था । बस मत्रियो से भी परामश लिया जा सकता था पर गवनर उसे मानने को बाध्य नही था । पुन (2) गवनर जनरल और गवनरो की निम्न मामलो मे विशेष जिम्मेदारिया थी (अ) देश म अशाति व उपद्रव को दबाना, (ब) राजाओ और उनके राज्यो की हित रक्षा, (स) अल्पसख्यको के वध हितो की रक्षा, (द) जनहितो की रक्षा, (य) ब्रिटिश व्यापार हितो के विरुद्ध भेद भाव की रोकथाम और (3) वस तो अथव्यवस्था का कायभार मत्री को सौप दिया गया था पर गवनर जनरल का यह विशेष उत्तरदायित्व था कि वह सघ म आर्थिक स्थिरता बनाए रखे । इसके लिए वह एक आर्थिक परामशदाता नियुक्त करता था जिसका मत वह मानने या न मानने को स्वतत्र था । वह अथ मत्री के किसी भी प्रस्ताव पर निषधाधिकार का प्रयोग कर सकता था । रिजव बक मुद्रा नीति का नियत्रण करता था जिसका गवनर गवनर जनरल के प्रति उत्तरदायी होता था । (4) गवनर जनरल की सहमति स गवनर अपन प्रात मे सविधान के समाप्त होने की घोषणा कर सकता था और इसके बाद पूरे प्रशासन को अपने नियत्रण म ले सकता था । पुन (5) सविधान म सशोधन का अधिकार केवल ब्रिटिश ससद के अधिकार म ही रखा गया था, (6) पुलिस और उच्च सवाओ को मत्रियो के नियत्रण के बाहर रखा गया था, (7) कुछ प्राता मे द्वितीय सदन स्थापित किए गए, (8) सम्प्रदाय और वर्गों के आधार पर कुछ विशेष निर्वाचनो की व्यवस्था की गई (9) राजाओ को सघीय विधान सभा म अपन प्रतिनिधि नामित करन का अधिकार दिया गया, और (10) इस विधायिका म कुछ राज्यो को आवश्यकता स अधिक

सीटें प्रदान की गइ । इस तरह स ये रक्षापाय किए गए ।

उपरोक्त रक्षापाय स्पष्टतया ये सिद्ध करते है कि एक ओर तो एक हाथ स दिया गया तो दूसरी ओर दूसरे हाथ से लिया गया । सच तो यह था कि इन रक्षापायो की उपस्थिति म पूरा ऐक्ट बखेडा और अविश्वासपूर्ण लगता था । गाधी का यह विचार था कि य रक्षोपाय भारत के हित मे होने चाहिए, इस ओर शायद ही ध्यान दिया गया । उसम एक ही बात का ध्यान रखा गया कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद का हित कैसे हो । प्रथम तो रक्षा और विदेश जैसे महत्त्वपूर्ण मामले ब्रिटिश मुट्ठी म ही बद रखे गय । दूसरे, गवनर जनरल और गवनर के विशेष उत्तरदायित्वो का उद्देश्य लोकप्रिय प्रतिनिधियो पर अकुश लगाना था । तीसरे, अथ के मामले मे किये गए रक्षोपाय तो अथमत्री का मजाक उडाते थे । चौथे प्रान्तो मे गवनर द्वारा सविधान समाप्त करने का अधिकार ही तो सदा मत्री की गदन पर तलवार की तरह लटकता रहता था । पाचवे, भारतीयो की अपने सविधान बदलने की असमथता अपमानजनक थी और स्वतत्रता प्राप्ति की आकाक्षा रखने वाले भारतीयो के लिए एक पाठ । सेवा क्षेत्र म रत लोगो और पुलिस के काय पर अनियत्रण मत्रियो को अकायक्षम्म सिद्ध कर सकती थी । दूसरा सदन बना ही इसलिए था कि वह निम्न सदन के प्रगतिशील कार्यो म बाधा पदा करे, नये वग को प्रोत्साहन तथा सम्प्रदायवाद का उत्साहवद्धन स्पष्टतया 'बाटो और राज्य करो' की नीति की ओर इशारा करते थे, सघीय सदन म राजाओ के नामित सदस्य चुने हुये सदस्यो की बराबरी म बैठते थे किन्ही किन्ही प्रातो को जनसख्या अनुपात से अधिक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दे दिया गया था । यह सब एक ऐसा सम्मिलित प्रयास था जिसस प्रजातात्रिक विचारो के विकास म बाधा आ उपस्थित हो । इस तरह कुछ लेखको का रक्षोपाय का दो भागो म बाँटना—एक ब्रिटिश के हिताथ रक्षोपाय तथा दूसरा भारतीयो के हित रक्षाथ रक्षोपाय—समीचीन नही लगता ।[1] सच तो यह था कि य सभी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हितार्थ बने थे । श्री नेहरू ने ठीक ही कहा था कि भारतीयो के लिए 'पूणतया यह ब्रेक था इजन नही ।'[2]

प्रस्तावित सघ

1935 के भारत सरकार अधिनियम ने एक अखिल भारतीय सघ स्थापित करने का प्रस्ताव किया जिसम ग्यारह गवनरो के प्रात छ चीफ

1 देखें पूनिया कानस्टीच्युशनल हिस्ट्री आफ इडिया प 352 इत्यादि ।
2 नेहरू पूर्वोक्त प 297 ।

कमिश्नर के प्रांत और ऐसे भारतीय राज्य जिन्होंने सम्मिलित होने हेतु हस्ताक्षरित पत्र दिया। गवर्नर के प्रांत थे मद्रास, बम्बई, मध्य प्रांत, बिहार, उड़ीसा, बंगाल, आसाम, यू० पी० सिंध पंजाब और उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत। तथा चीफ कमिश्नर के प्रांत थे कुर्ग, अजमेर मारवाड़, ब्रिटिश बलूचिस्तान दिल्ली, पंथ पिप लोदा और अंडमान व नीकोबार द्वीपसमूह।

प्रस्तावित संघ की सदस्यता प्रांत के लिए आवश्यक था और भारतीय राज्यों के लिए ऐच्छिक थी। ऐसे राज्य जो संघ में मिलना चाहते थे उन्हें एक सहमति प्रपत्र पर हस्ताक्षर करना होता था। इस प्रपत्र में राज्य को उन विशेष विषयों का विवरण देना होता था जिस संबंध में संघीय अधिकारियों को हस्तक्षेप का अधिकार था। ऐसे हस्तक्षेप का क्षेत्र अतिरिक्त सहमति पत्र पर हस्ताक्षर द्वारा बढ़ाया जा सकता था जिस पर ताज से स्वीकृति माँगी जाती थी पर पुनः इसमें कटौती नहीं हो सकती थी। कोई राज्य प्रपत्र पर हस्ताक्षर के बाद संघ से अलग नहीं हो सकता था।

पर इस विधि की सबसे रुचिकर बात यह थी कि संघ में मिलने के लिए राज्यों में एकरूपता नहीं थी। प्रत्येक राज्य को यह स्वयं तय करना पड़ता था कि वह संघ में सम्मिलित होगा या नहीं और इस तरह एक राज्य द्वारा संघ को प्रदान किये गये विषय निश्चित रूप से वही नहीं थे जो दूसरे राज्य के थे। पर राज्यों को इतनी स्वतंत्रता प्रदान करने का कारण भी था। 1935 के ऐक्ट के पूर्व भारत का गवर्नर जनरल तो ब्रिटिश भारत का मुख्य शासक होता था उसमें राज्यों की प्रभुसत्ता पर स्वामित्व का अधिकार भी निहित था। पर इस ऐक्ट ने दो अधिकारियों में अंतर स्पष्ट कर दिया। राज्यों की प्रभुसत्ता अब ताज में निहित हो गई और इसका प्रयोग गवर्नर जनरल को राज्याध्यक्ष की हैसियत से नहीं करने को मिलता था बल्कि ताज के नाम पर वायसराय के रूप में। राज्यों को इस तरह ब्रिटिश भारत से अलग कर, उन्हें यह अवसर दे दिया गया कि वे चाहें तो संघ में सम्मिलित हों या न हों और यदि सम्मिलित भी हों तो अपनी इच्छानुसार विषयों को संघ को अर्पित करें।

इस ऐक्ट की एक विशेषता यह थी कि जहां इसके पूर्व ब्रिटिश भारत में एकात्मक सरकार थी जिसमें केन्द्रीय व प्रांतीय दोनों सरकारें सेक्रेटरी आफ स्टेट के निर्देशन में चलती थीं प्रांतीय सरकारों को केन्द्र से प्राप्त अधिकारों के आधार पर कार्य करना था, वहां नई व्यवस्था में भारत सरकार से संबंधित संसद के सभी ऐक्ट बदल गये तथा केन्द्र व प्रांतों पर ताज का पूरा अधिकार हो गया। इसके बाद प्रांत केन्द्रों से अलग कर दिये गये, उन्हें स्वतंत्र इकाई बना दिया गया और उन्हें केन्द्र की भाँति ऊपर से शक्ति प्राप्त हुई और पुनः

वे फिर एक सघ म आवद्ध हो गये, चाहे उन्होने इस पसन्द किया या नही।

इस भाति निर्मित सघ का कायकारिणी अधिकार ताज की ओर से गवनर जनरल मे निहित किया गया तथा विधायिका शक्ति ताज के प्रतिनिधि गवनर जनरल एव विधान सभा व राज्य सभा के हाथो म सौप दी गई। एक सघीय न्यायालय की स्थापना की गई जो सघ व उसकी इकाइयो के बीच, इकाइयो तथा इकाइयो के बीच उठने वाले झगडो का निणय करता था तथा सघीय सविधान की रक्षा करता और उस परिभाषित करता था। एक रिजव बैंक नोट छापने और सघ म आर्थिक स्थिरता बनाए रखने के लिए स्थापित किया गया। एक सघीय रेलवे की भी स्थापना की गई।

सम्राट के द्वारा सघ की घोषणा उस समय होनी थी जब दोना सदनो के प्रतिनिधियो की ओर से एक निवेदन प्रस्तुत हो। और केन्द्रीय विधायिका यह निवेदन तभी प्रस्तुत करती जब (1) भारत के राजाओ के राज्यो म से कम से कम आधे सघ मे सम्मिलित हो जाते और (2) यदि सघ मे सम्मिलित होने वाले राजा राज्य सभा के लिए 52 सदस्यो को चुनने के अधिकारी होते। सघ की स्थापना के लिए कोई तिथि निर्धारित नही की गई। राजाओ को फसला लने के लिए 20 वप प्रदान किया गया। स्पष्ट था इस काल के बाद यह योजना समाप्त हो जाती।

पर भारत के किसी शासक ने सघ में सम्मिलित होना उचित नही समझा। गोलमेज सम्मेलनो में जो रुचि उन्होने दिखाई थी वह ब्रिटिश इशारे पर हुआ था। जब सघ मे सम्मिलित होने की बारी आयी तो उन्होने अपना अस्तित्व ही खतरे में अनुभव किया। वे प्रगतिशील तत्वो वाले ब्रिटिश भारत मे जुडने से डरते थे। प्रभुसत्ता का मसला भी उनके मनोनुकूल तय नही हुआ। इसलिए वे इसमें सम्मिलित नही हुए और अखिल भारतीय सघ कभी नही बना। वैसे रिजव बक की स्थापना 1935 मे हो गई और सघीय न्यायालय ने अपना काय 1 अक्टूबर 1937 से प्रारभ कर दिया।

सघीय कार्यपालिका

यदि अखिल भारतीय सघ स्थापित होता तो इसके अतगत केन्द्र में जो कायपालिका स्थापित होती उसके तीन भाग होते—(1) गवनर जनरल, (2) कौंसिलस, एव (3) मत्रिमडल।

गवनर जनरल

सघीय कायपालिका में सबसे महत्वपूण कार्यालय गवनर जनरल का था

जो ब्रिटिश ताज का प्रतिनिधित्व करता था और जिसके हाथ में ताज की कार्य पालिका शक्ति निहित थी। उसकी नियुक्ति ब्रिटिश सम्राट करता था और इस कार्य में वह ब्रिटिश प्रधानमंत्री की राय लेता था। उसका कार्यकाल कम से कम 5 वर्ष का होता था। भत्ते के अतिरिक्त उसे वार्षिक वेतन के रूप में 250 800 रुपये मिलता था जिसे संघ के कोष से प्रदान किया जाता था। उसे दिल्ली में एक महल, दूसरा शिमला में तथा एक अन्य शिमला के निकट ही मशोवरा में प्रदान किया गया था।

अपनी शक्ति के आधार पर गवर्नर जनरल संभवतः विश्व का सबसे बड़ा अधिनायक था। ये शक्तियाँ तीन तरह की थी वह शक्ति जो वह अपनी इच्छानुसार प्रयोग में लाता था, वह शक्ति जो वह व्यक्तिगत निर्णय से प्रयुक्त करता था तथा वह शक्ति जो वह मंत्रियों के परामर्श से प्राप्त करता था।

गवर्नर जनरल द्वारा स्वेच्छा से शक्ति प्रयोग का जो अधिकार था, वह विस्तृत था और संघ शासन के दायरे का लगभग प्रत्येक क्षेत्र इसके अंतर्गत आ जाता था। इन शक्तियों के प्रयोग में वह चाहता तो मंत्रियों से परामर्श कर सकता था पर वह उनकी राय मानने के लिए बाध्य नहीं था।

ये अधिकार थे—(1) सुरक्षा कबीले क्षेत्र विदेशी मामले तथा धार्मिक कार्यों पर नियंत्रण। ये आरक्षित विषय थे और इनके संबंध में वह भारत के सेक्रेटरी आफ स्टेट के प्रति उत्तरदायी था। (2) वह कौंसिलरों, आर्थिक परामर्शदाता चीफ कमिश्नरों चेयरमैन संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों गवर्नर व रिजर्व बैंक के डिप्टी गवर्नर व रेलवे ट्रिब्युनल के प्रेसीडेंट की नियुक्ति करता था। (3) वह मंत्रियों की नियुक्ति व बर्खास्तगी भी करता था और मंत्रिमंडल की बैठक की अध्यक्षता भी।

इसके अतिरिक्त गवर्नर जनरल निम्न उद्देश्यों के लिए नियम भी बनाता था (1) सरकार के कार्य को सुचारु रूप से चलाने तथा इन कार्यों को मंत्रियों को सौंपने हेतु। यह कार्य वह मंत्रियों के परामर्श से पर अपनी इच्छा से करता था। इन नियमों को बनाते समय वह इस बात का ध्यान रखता था कि प्रत्येक मंत्री संघ के अर्थ पर प्रभाव डालने वाले मामलों पर अर्थमंत्री से परामर्श करेगा तथा यह भी कि कोई मंत्री किसी अनुदान की सीमा में अर्थ मंत्री से पूछे बिना पुनर्विनियोग नहीं करेगा और यदि इस मसले पर कोई मत भेद हुआ तो इस मसले को मंत्रिमंडल के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा। गवर्नर जनरल को इस संबंध में नियम बनाना था कि (2) वह उसे कार्यवाही की सूचना देता रहेगा, तथा (3) सरकार के आदेशों को सत्यापित करता रहेगा। इसी क्षेत्र में उसके ये अधिकार भी आते थे कि वह (4) संविधान को निरस्त कर सकेगा, (5) अध्यादेश व आपातकालीन घोषणायें कर सकेगा (6) बिलों

पर सहमति रोक सकेगा, उन्हें प्रस्तुत करने से रोक सकेगा और तत्सबंध में समाचार भेज सकेगा, (7) निम्न सदन को बुला समाप्त तथा स्थगित कर सकेगा, (8) गवर्नर जनरल के ऐक्टों को कार्य रूप में बदल सकेगा, और (9) जब गवर्नर स्वेच्छा से या व्यक्तिगत विचार के आधार पर कार्य को करे तो वह उसको नियंत्रित कर सकेगा।

गवर्नर जनरल की वे शक्तियां जिसे वह व्यक्तिगत दृष्टि से करता था, उन्हें ऐक्ट की 32वीं धारा में प्रस्तुत किया गया था। ये शक्तियां थीं (1) भारत में शांति या व्यवस्था के विरुद्ध प्रस्तुत समस्या की रोकथाम या देश के किसी भी भाग में ऐसा ही कार्य, (2) सार्वजनिक सेवाओं में अधिकार व उचित हितों की रक्षा, (3) अल्पसंख्यकों के वैध हितों की सुरक्षा, (4) आर्थिक स्थिरता को सुरक्षित बनाये रखना व संघ सरकार को सहयोग, (5) व्यापारिक भेदभाव की रोकथाम, (6) इंग्लैंड या बर्मा क्षेत्र से आने वाली सामग्रियों के साथ भेदभाव को रोकना, (7) भारतीय राज्यों तथा वहां के राजाओं के अधिकार व प्रतिष्ठा की रक्षा, (8) गवर्नर जनरल द्वारा स्वेच्छा या व्यक्तिगत मत से लिये गये निर्णय पर कार्यवाही करना। इसके अतिरिक्त कुछ और कार्य भी थे जो इसी श्रेणी में आते थे, जैसे (9) संघ के एडवोकेट जनरल की नियुक्ति, वेतन निर्धारण और पद मुक्ति। पर ऐसे मामलों में उसकी कुछ सीमाएँ थीं। उदाहरणार्थ ऐसी नियुक्ति में वह उसी को यह पद दे सकता था जो किसी संघीय न्यायालय में न्यायाधीश पद प्राप्त करने के योग्य हो।

पर इन अधिकारों के प्रयोग में उसे मंत्रियों से परामर्श करना होता था। बस उसे यह अधिकार था कि वह उस मत को माने या न माने। इस तरह यह स्पष्ट था कि मंत्रियों की स्थिति यहाँ कुछ बेहतर थी। पर पूर्ण रूप से देखने पर यह शक्ति अति महत्वपूर्ण नहीं थी।

मंत्रियों से परामर्श करके गवर्नर जनरल की प्राप्त अवशिष्ट कार्यकारिणी शक्तियां उचित तो थीं पर वे अतिमहत्वपूर्ण न थीं। सभी महत्वपूर्ण शक्तियां प्रथम दो भागों में आती थीं और मंत्रियों की दी गई शक्तियां नहीं के बराबर थीं और यहां पर भी गवर्नर जनरल को अंतिम और श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त था। इसके अतिरिक्त मंत्री तो उसकी हां में हां मिलाने वाले ही लोग थे जिन्हें वह चुनता, नियुक्त करता, उन्हें बनाये रखता तथा पदमुक्त करता था। वे उसके अधिकार की अवहेलना करेंगे ऐसी उनसे आशा नहीं थी।

पर उसे यह भान कराया गया था कि अपने स्वेच्छा से किये जाने वाले कार्यों, जिससे निकट सहयोग और ठीक ढंग से कार्य हो सके और जिसके लिये वह सेक्रेटरी आफ स्टेट के प्रति उत्तरदायी था तथा वे अन्य कार्य जो उसे मंत्रियों के परामर्श से करना था तथा जिसके लिए वह संघीय विधायिका के प्रति उत्तर-

दायी था उससे यह अपेक्षा की जाती थी कि वह अपने अपने परामशदाताओ तथा मत्रियो के बीच सामूहिक मतक्यता की स्थिति बनाये रखेगा। विशेषकर सुरक्षा के मामले में भारतीयो की रुचि बढती जा रही थी।

आर्थिक अधिकार—यहाँ पर गवनर जनरल के आर्थिक अधिकारो की चर्चा भी समीचीन होगी। उसके आदेश पर ही वार्षिक आय व्यय का अनुमानित बजट सघीय विधायिका के समक्ष प्रस्तुत किया जाता था। बिना उसकी सस्तुति के कोई अनुदान नही मागा जा सकता था तथा वह विधायिका द्वारा आरोपित किसी कटौती को समाप्त करने का अधिकार भी रखता था। वह व्यय के उन मदो का भी निणय करता था जिन पर मत लिए जाने होते थे या नही और आपातकाल में किसी सीमा तक व्यय करने का उसे अधिकार था। सघ की आर्थिक साख और स्थिरता को बनाये रखने के लिए वह एक आर्थिक परामशदाता की नियुक्ति करता था तथा उसकी सेवा शर्तें व वेतन निर्धारित करता था। और यह आर्थिक परामशदाता अयमत्री की ही भाति शक्तिशाली होता था। वैसे यह जनमत की आलोचना का विषय था कि इन दोनो के कार्यालयो के काय और अधिकार विरोधाभासी थे।

विशेष विधायिका शक्तियाँ—गवनर जनरल की विशेष विधायिका शक्तियो की भी अनदेखी नही की जा सकती थी। (1) ऐक्ट की 45वी धारा के अनुसार गवनर जनरल को सघ में सपूण सविधान को स्थगित कर देने का अधिकार था। वह इस शक्ति का प्रयोग तब कर सकता था जब वह यह समझे कि तत्कालीन परिस्थितियाँ सघीय सरकार चलाने में व्यवधान उपस्थित कर रही हैं। और जब वह इस तरह की घोषणा करता तो वह सघीय न्यायालय को छोडकर सघ के सम्पूण या कुछ हिस्से का अधिकार अपने हाथ में ले सकता था। पर ऐसी घोषणा की सूचना भारत के सेक्रेट्री आफ स्टेट को तुरत देनी पडती थी जो ससद के दोनो सदनो में इसे प्रस्तुत करता था। ऐसी घोषणा 6 माह तक लागू रहती थी। पर इस दूसरी घोषणा इससे पूव ही समाप्त कर सकती थी। (2) और उसकी अन्य विशेष शक्ति दो तरह के अधिघोषणा से सबधित थी जिसमें प्रथम तो वह थी जिसे वह अपनी स्वेच्छा या व्यक्तिगत निणय के आधार पर घोषित करने का अधिकार रखता था। ऐसी अधिघोषणा पूरी विधायी शक्ति सहित 6 माह तक लागू रह सकती थी और इसे वह 6 माह के लिये और बढा सकता था। दूसरी शक्ति के अतगत वह सघीय विधायिका के सत्र मे न होने पर घोषित कर सकता था। ये अध्यादेश उसकी इस शक्ति से सबधित थे जो वह मत्रियो के परामश से क्रियान्वित करता था और जिसे सत्र आरम्भ होने के 6 सप्ताह के भीतर विधायिका से स्वीकार कराना पडता था अन्यथा यह अपने आप समाप्त

हो जाता था।

द्वितन्त्र

यहां ऐक्ट के अनुसार केन्द्र मे स्थापित द्वितन्त्र का सक्षिप्त विवेचन समीचीन होगा। पूर्ण कार्यकारिणी कार्य दो भागों मे विभाजित था प्रथम के अतगत आरक्षित विषय जैसे सुरक्षा, विदेशी मामले कबील क्षेत्र व धार्मिक कार्य आते थे तथा दूसरे म हस्तातरित विषय जिसम अवशिष्ट विषय भी सम्मिलित था।

आरक्षित विषयों के मामले पर गवनर जनरल स्वेच्छा से तीन व्यक्तियो की परामर्शदात्री समिति की राय से काय करता था। इन लोगों की नियुक्ति ताज द्वारा होती थी, पर वे मत्री की तरह काय नही करत थे। व गवनर जनरल को साधारण राय देन वाले थे जिसके प्रति वे उत्तरदायी भी होन थे और गवनर जनरल ब्रिटिश ससद के प्रति उत्तरदायी होता था। इसके लिय एक्ट ने कोई भी योग्यता तथा काल नहीं निर्धारित कर रखा था। व सघ के किसी भी सदन म बठ सकत थ पर उन्ह मत देन का अधिकार नही था।

दूसरी ओर अवशिष्ट या हस्तातरित विषयो पर गवनर जनरल मत्रियो की सहायता मे जिनकी सख्या दस से कम होती थी काय करता था। ये मत्री इस दष्टि से लोकप्रिय नही थे क्योंकि वे सघीय विधायिकाओं के प्रति उत्तरदायी नही थे। वैसे तो वे विधायिका के नियमित सदस्य थ, पर गवनर जनरल उन्ह चुन व बर्खास्त कर सकता था क्योंकि उन्ह अविश्वास प्रस्तावो की धार पर खडा किया जा सकता था और इसी कारण वे उसके प्रति उत्तर-दायित्व रखते थ। सच तो यह था कि वे गवनर जनरल के समथक थे जो उनस सामूहिक रूप से या अकेले परामश करता था। उनके स्थायी सचिव गवनर जनरल तक सीधे पहुच सकते थे तथा गवनर जनरल उनके विषय म मत्रियों से भी अधिक ज्ञान रखता था। सघीय विधायिकाओं की ओर से तय वतन इन्ह भारतीय खजान स देय था तथा इस पर मतदान नही कराया जा सकता था। और न ही उनके कायकाल मे इसम कटौती हो सकती थी।

पर अनुदेश प्रपत्र के अनुसार गवनर जनरल को मत्रियो को अधिक से अधिक स्वतत्रता प्रदान करनी पडती थी और उनके चुनाव के समय भारतीय राज्यो और अल्प सख्यकों को उचित प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करनी पडती थी। उनसे यह भी कहा जाता था कि जिन्ह चुना जाय वे विधायिका म स्थायी बहुमत बनाये रख सकें जिससे कि कायवाही उचित रीति मे चल सके। पर ये अनुदेश वह अपनी सुविधा से मानता था। इस सबध मे कोई बाध्यता नही थी। जो मत्री लगातार सघीय विधायिका का 6 माह तक

सदस्य न होता उसे मंत्रीपद से हाथ धोना पडता था। गवर्नर जनरल को जो परामर्श मंत्री देता था उस सबंध में न्यायालय में कोई छानबीन नहीं हो सकती थी।

अनुदेश प्रपत्र

अनुदेश प्रपत्र का संक्षिप्त विवेचन यहाँ आवश्यक है। अपनी उपरोक्त शक्तियों के उपयोग के लिये गवर्नर जनरल को एक अनुदेश प्रपत्र प्रदान किया जाता था जिसके आधार पर उससे अपेक्षा की जाती थी कि (1) वह ऐसे ही लोगों को मंत्री चुने जो स्थायी बहुमत बनाये रख सकें। वह उनमें सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास कर तथा उनकी राय से काम करे। पर आवश्यकतानुसार वह उनकी बात न मानने को भी स्वतंत्र था। (2) उसके द्वारा समर्थित बजट व ऋण नीति ऐसी नहीं होनी चाहिये जिससे कि सरकार को अपने आर्थिक उत्तरदायित्व के निर्वाह में बाधा न हो और न ही विश्व बाजार में इसकी साख को ही आघात लगना चाहिये। (3) उसे अल्पसंख्यकों की उचित मांगों की रक्षा भी करनी थी। (4) उसे भारत में आने वाले इंगलैण्ड की वस्तुओं के प्रति भेदभाव की नीति को रोकना था। पर इससे संघीय विधायिका की तत्संबंधी नीति पर प्रभाव नहीं पडना चाहिये था और न ही उसकी आर्थिक नीति के विकास करने पर। उसे देश की कर संबंधी नीति में तब हस्तक्षेप करने का अधिकार था यदि उसे लगे कि इंग्लैंड के आर्थिक हितों का साधन नहीं हो रहा है। (5) भारतीय राज्यों के आर्थिक जीवन के निश्चित अधिकारों पर आघात करने वाले मंत्रियों की कार्यवाही व संघीय विधायिका के कानूनों को रोकना। (6) यह वांछनीय था कि भारतीय सेना में भारतीय अधिकारियों की नियुक्ति या भारतीय सेना को देश से बाहर काम पर भेजने संबंधी सामान्य नीति के सबंध में मंत्रियों का मत प्राप्त कर लिया जाय। (7) गवर्नर जनरल को अपने कौंसिलरों और मंत्रियों के बीच संयुक्त परामर्श को प्रोत्साहित करना चाहिए। (8) स्वेच्छाधिकार के अन्तर्गत उसे सुरक्षा व्यय पर नियंत्रण रखना था। पर ऐसे नियंत्रण के मामले संघीय अर्थविभाग से भी संबद्ध होने चाहिए। (9) उसे संघ, प्रान्तों व संघीय राज्यों के बीच परामर्श को प्रोत्साहित करना चाहिए, और (10) प्रान्तों व संघीय राज्यों के रुचि के विधायिका प्रस्ताव के संबंध में उसे तत्संबंधी लोगों के विचार भी जानने की चेष्टा करनी चाहिये। (11) संघीय विधायिका में किसी भी बिल पर बहस को वह तब तक नहीं रोकेगा जब तक कि शांति व्यवस्था को कोई खतरा न हो। (12) कोई भी बिल जो अन्य किसी कानून के वापसी की स्थिति पैदा करता या इंग्लैंड की संसद के किसी कानून के

विरुद्ध पड़ता उसे ब्रिटन के राजा की स्वीकृति के लिए आरक्षित कर दिया जाता था। (13) गवनर जनरल को 'भारत व इग्लैंड के बीच सहयोग को साम्राज्य के अतगत विकसित करना था जिससे कि भारत को हमारे राज्या के मध्य उसका उचित स्थान प्राप्त हो सके।"

पर अनुदेश प्रपत्र का उद्देश्य इसके सिद्धातो के आधार पर विकास था और यह स्पष्टतया कहा भी गया था कि किसी भी कायवाही पर इस आधार पर प्रश्न नही किया जा सकता था कि अनुदेश प्रपत्र के आधार पर इस सबध म कायवाही नही की गई है।

मूल्याकन—"इस तरह सघीय सरकार सच्चाई मे एक व्यक्ति का शासन हो जायेगा जो कई दष्टि से पूण निरकुशता या आधुनिक अधिनायकवाद को भी पीछे छोड देगा।"[1] सच तो यह है कि विवरणो का सूक्ष्म अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि पूरी कायकारिणी की मशीनरी भारतीयो के ऊपर अविश्वास पर आधारित थी तथा जिसके माध्यम से सीधे शब्दा मे यह स्पष्ट किया गया था कि ब्रिटिश एक भी अधिकार अपने हाथ से जाने नही देना चाहते थे।

गवनर जनरल केवल प्रशासन का केद्र ही नही था, बल्कि पूरी मशीनरी के धुरे की कील था। वह ताज का प्रतिरूप गह सरकार का प्रतिनिधि तथा भारत भाग्यविधाता सभी का एक ही मे सम्मिश्रण था। वह भारत के भाग्य का विधाता इस कारण भी था कि उससे मद्रास, बम्बई और बगाल को छोडकर अय स्थानो के गवनरो की नियुक्ति म सम्राट परामश करता था। उसके पास विस्तृत सरक्षत्व के अधिकार थे। कौसिलरो, मत्रियो और स्थायी सचिवो, आर्थिक परामशदाताओ, चीफ कमिश्नरो, लाक सेवा आयाग के सदस्या व सभापति के चयन मे वह स्वेच्छाधिकार या व्यक्तिगत निणय का सहारा लेता था। वह किसी प्रात के भाग पर प्रशासनाथ डिप्टी गवनर भी नियुक्त कर सकता था। वह सम्राट की सहमति से लेफ्टीनेन्ट गवनरा तथा उनके कायकारिणी के सदस्या की भी नियुक्ति करता था। वह अपनी कौसिल के लिय उपाध्यक्ष व उच्च सदन के लिए सभापति की नियुक्ति कर सकता था।

इसके अतिरिक्त कौसिल की कायवाही की पूर्ति के लिए वह नियम भी बना सकता था। उसे कौसिलरो और मत्रियो मे विभाग बाटने का भी अधिकार था। उसे स्वेच्छाधिकार तथा स्वनिणय के अधिकार भी प्राप्त थ। यदि उसके कौसिलर उसके द्वारा ही नियुक्त किय जाते थे ता मत्रिया की स्थिति भी बेहतर नही थी। प्रो० के० टी० शाह न लिखा है कि उनकी स्थिति सीधे सीधे 'शृगारिक थी जिसका कोई उपयोग नही था। व जनता

1 अहमद जड ए इडियन फडरेशन प 43।

को सहायक कम कष्टसाध्य अधिक सिद्ध होते थ। उनसे यह आशा की जाती थी कि वे शक्ति के बिना उत्तरदायित्व का वहन करें, बिना अधिकार व जिम्मेदारी, बिना किसी शांति व अधिकार तथा बिना नाम व प्रभाव शासन करें।[1] हस्तांतरित व आरक्षित विभागों म सपर्क की सभावनायें नहीं के बराबर थी। अपने विभागों के अद्धनियन्त्रण के कारण आरक्षित विषयों के प्रति उन्हे अधा बना दिया जाता था जिसके कारण उत्तरदायित्व का हस्तांतरण एक खेल ही बन जाता था।

गवनर जनरल का देश म शाति व व्यवस्था बनाये रखने के लिए प्रदत्त आपत्तिजनक उत्तरदायित्व कानून व व्यवस्था विभाग की शक्ति को मत्रियों के हाथ म हस्तांतरण एक मजाक बना देना था। ऐसा इसलिये था क्योंकि जनसेवा के रक्षाथ इसका विशेष उत्तरदायित्व हस्तांतरित विभाग के काय सचालन को मत्री के इच्छानुसार सभव बना देता था।

उसकी विधायी शक्तियाँ भी कम निरकुश नहीं थी। वह किसी बिल या उसके किसी भाग पर विवाद को रोक सकता था और दोना सदनो का सयुक्त अधिवेशन इस पर विचाराथ बुला सकता था। किसी भी पारित बिल को वह पुन विचाराथ वापस कर सकता था। वह विधायिका से बिल के एक निश्चित रूप को पारित करने के लिये कह सकता था, और यदि विधायिका ऐसा न करती तो वह स्वय इस करके कानून का रूप प्रदान कर सकता था। वह किसी बिल को स्वीकार कर सकता था या उसे सम्राट के लिए आरक्षित कर सकता था। पर उसके पास सबसे महत्वपूर्ण शक्ति अध्यादेश जारी करने की तथा सविधान को स्थगित करने की थी। इसका विवेचन हम कर आये है।

गवनर जनरल के आर्थिक अधिकारो का मूल्यांकन भी यहा किया जा सकता है। आर्थिक बाजार म विश्व म भारत की साख को बनाये रखने के लिये उसका बजट सबधी व व्यवस्था सबधी विशेष उत्तरदायित्व जानबूझकर अपरिभाषित छोड दिया गया था। उसे राय देने के लिए एक अथपरामशदाता की नियुक्ति की गई थी। पर चूंकि वह कौंसिलर या मत्री नहीं था इस कारण वह कठिनाई से राष्ट्रीय नीति को समझ सकता था। उसका परामश भी गवनर जनरल के लिये मानना आवश्यक नही था जो इस मसले पर मत्रियो के बहुमत तक को अस्वीकार कर सकता था। वह 80% बजट पर नियत्रण रखता था उसकी सस्तुति के बिना विनियोग का कोई प्रस्ताव नही आ सकता था और आपातकाल मे वह अपनी इच्छानुसार जितना चाहे व्यय कर सकता था। सचमुच ही यह सब महत्वपूर्ण था।

---

1 शाह के टी फेडरल स्ट्रक्चर पृ 223

न्यायिक क्षेत्र म भी उसके अधिकार कम न थे। वह किसी हाइकोर्ट के क्षेत्र म परिवतन कर सकता था वह विशेष काल के लिय अतिरिक्त न्याया- धीशो की नियुक्ति कर सकता था, तथा मुख्य न्यायाधीश के कार्यालय या किसी हाईकोर्ट के किसी स्थान के रिक्त होने पर उसके लिये वह अतरिम व्यवस्था कर सकता था।

गवनर जनरल की शक्ति केन्द्र तक ही सीमित नही थी। इसे प्रातो पर निरीक्षणात्मक अधिकार प्राप्त था एव उसे गवनरो को स्वेच्छाधिकार व स्वनिणय के सबध म दिशा निर्देश देने का भी अधिकार था। किसी बिल को प्रातीय विधायिका मे लान के लिये उसकी स्वीकृति की भी आवश्यकता पडती थी। गवनर जनरल को देश मे शाति व व्यवस्था सबधी जो अधिकार प्राप्त था उसन प्रातो के एकाधिकार का मजाक उडाना प्रारम्भ कर दिया था। वह किसी भी प्रात की सीमा मे परिवतन कर सकता था तथा किसी भी प्रात का शासन सीधे अपने हाथ मे ले सकता था। उसे लोगो को व्यक्तिगत या पतृक उपाधि पूरे देश म देन का अधिकार था।

गवनर जनरल सेना को भी नियत्रित करता था। देश की सुरक्षा उसका अभिन्न कायक्षेत्र और विदेश नीति उसका प्रमुख विषय था। प्रेसीडेन्ट लावेल न तब ठीक ही कहा जब यह विचार व्यक्त किया कि 'भारत का गवनर जनरल या वायसराय और रूस का जार कभी कभी आधुनिक विश्व के दो प्रमुख निरकुश व्यक्ति स्वीकार किये जाते है। मि० विस्टन चर्चिल न स्वय स्वीकार किया कि गवनर जनरल हिटलर या मुसोलिनी के सभी अस्त्रो से सुसज्जित था।"

सघीय विधायिका

एक्ट म प्रस्तावित किया गया था कि देश मे द्विसदनीय सघीय विधायिका की रचना की जायगी जिसमे से उच्च सदन को राज्य सभा तथा निम्न सदन को सघीय परिषद कहा जायगा।

राज्य सभा

राज्य सभा के सम्पूण सदस्यो की सख्या 260 निश्चित की गयी। इसके 104 सदस्य या 40% भारतीय राज्यो से आने थे जिनका वर्गीकरण समूहो का व्यक्तिगत आधार पर उनकी महत्ता वशीय उच्चता या ऐसी ही अन्य बातो से निर्धारित होती थी। हैदराबाद जिसकी जनसख्या 1 करोड 44 लाख थी और जिसे 21 तोपो की सलामी मिलती थी उसे 5 सीटें मिली। मसूर जिसकी

जनसख्या 56 लाख थी व जिसे 21 तोपो की सलामी मिलती थी दूसरे स्थान पर था और उसे 3 सीट मिली। पटियाला बीकानेर एव उदयपुर म स प्रत्येक को दो सीट मिली जिनकी जनसख्या क्रमश 16 लाख, 9 लाख और 16 लाख थी। नाभा जिसकी जनसख्या 3 लाख और जिसे 13 तोपो की सलामी मिलती थी उस भी 1 सीट प्राप्त हुई। ऐसा ही अलवर के साथ हुआ पर उसकी जनसख्या 8 लाख थी और उसे 15 तोपो की सलामी मिलती थी। राज्यो की ओर से तब तक प्रतिनिधि नामित किय जाते थे जब तक कि उन क्षेत्रो मे म प्रजातत्रीय व्यवस्था न लागू हो जाय।

शेष ब्रिटिश भारत के हाथ 156 सीट आयी जिनम म 6 गवनर जनरल द्वारा नामित होत थ। 75 हिन्दुओ द्वारा सामान्य निर्वाचन क्षेत्रो से चुने जाने थे। इसके अतिरिक्त 49 मुसलमानो 4 सिखो 7 यूरोपीयो, 2 भारतीय ईसाइयो 1 आग्ल भारतीयो, 6 महिलाओ तथा 7 परिगणित जातियो के द्वारा चुने जात थ। विभिन्न प्रातो मे जो सीट निर्धारित की गई उनक लिय कई आधार बनाय गय जसे जनसख्या, व्यापारिक महत्ता एव एतिहासिक महत्त्व। इस तरह बगाल मद्रास तथा यू० पी० मे प्रत्येक को 20 सीट मिली जब कि बम्बई, बिहार तथा पजाब को 16 सीट मिली। मध्य प्रात व बरार मे स प्रत्येक को 8 सीटें मिली। उडीसा, आसाम तथा उत्तर पश्चिम सीमा प्रात व सिंध को 5 सीटें मिली और अतत दिल्ली ब्रिटिश बलूचिस्तान अजमर मारवाड तथा कुग को 1 1 सीट प्राप्त हुई।

राज्यसभा के प्रतिनिधि इस तरह सीधे बहुत अल्पमतीय मताधिकार स चुने जात थ। व सदन म 9 वष तक के लिए होत थ जिनम 1/3 प्रति तीन वष पर पद स हट जाते थे। इस तरह राज्य सभा एक स्थायी सदन था।

सघीय परिषद

सघीय परिषद निम्न सदन था जिसम 375 सीट थी। इनम से एक तिहाई या 125 सीटो पर भारतीय राज्यो के प्रतिनिधि आत थे। तथा शेष 250 सीटे ब्रिटिश भारत के लिए निर्धारित थी। यहा पुन राज्यो के प्रतिनिधि राजाओ के द्वारा नामित किय जाते थे जबकि ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि चुन जात थे।

राज्यो म स्थानो का विभाजन लगभग जनसख्या पर आधारित किया गया था। पर सबसे अधिक जनसख्या वाल राज्यो का प्रतिनिधित्व थोडा थोडा घटा दिया जाता था जिसस कि सभी राज्यो को प्रतिनिधित्व प्रदान किया जा सके। इस तरह हैदराबाद को 16 सीटे मसूर को 7 पटियाला को 2 तथा नाभा बीकानर तथा अलवर को एक एक स्थान प्राप्त हुए।

पर राज्य सभा की भांति संघीय परिषद में मनमाने ढंग से सीटों के विभाजन में प्रान्तों में जनसंख्या को आधार नहीं बनाया जाता था। इस तरह बंगाल अपनी 5 करोड 1 लाख आबादी के साथ मद्रास के समकक्ष आ गया था जिसकी आबादी 4 करोड 42 लाख थी। यू० पी० जिसकी आबादी 4 करोड 84 लाख थी, भी इसी के समकक्ष था। इन सभी प्रांतों को 37 सीटें प्रदान की गईं। और इसके अतिरिक्त ब्रिटिश भारत में विभिन्न हितों को ध्यान में रखते हुए 82 सीटें मुसलमानों, 8 सीटें भारतीय ईसाइयों तथा युरोपीयों को अलग अलग, 6 सीटें सिखों को, 4 मजदूरों को 7 जमींदारों को, 9 महिलाओं को तथा 105 सामान्य निर्वाचनार्थ हिन्दुओं के लिये तथा अन्य जातियों के लिए रखी गईं जिन्हें प्रतिनिधित्व नहीं प्रदान किया गया था। इस सूची में अनुसूचित जाति के लोगों को भी सम्मिलित किया गया।

आश्चर्यजनक तो यह था कि संघीय परिषद के लिये चुनाव जहां अप्रत्यक्ष था वहां राज्य सभा के लिये प्रत्यक्ष। इस संबंध में संयुक्त समिति का तर्क यह था कि 35 करोड जनसंख्या वाले देश में प्रत्यक्ष चुनाव या तो तमाम विधायकों को इसमें ला फसायेगा या क्षेत्र ही नियन्त्रण के बाहर हो जायेंगे। स्पष्टतः ये दोनों चीजें बुरी होंगी। इस तरह प्रत्येक प्रान्त में हिन्दुओं मुसलमानों और सिखों के लिये निर्धारित सीटें उस प्रांत में उस जाति के लोगों के द्वारा अलग-अलग आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर चुनी जाती थीं। अनुसूचित जाति के लिये यह व्यवस्था अलग से थी। यह प्रारंभिक चुनाव में योग्य व चुने अभ्यार्थी प्रान्तीय संघीय परिषद के लिये एक सीट पर चार लोगों को चुनते थे। इस तरह से चुने गये लोग ही चुनाव लडने के अधिकारी होते थे। यूरोपीयों, आंग्ल, भारतीयों भारतीय ईसाइयों तथा महिलाओं के प्रत्येक प्रान्त में प्रतिनिधि पूरे ब्रिटिश भारत के लिये निर्वाचकीय मंडल का रूप ग्रहण कर लेते थे जो संघीय परिषद के लिये निश्चित सीटें पूरा करने का कार्य करती थी।

इस तरह से बनी संघीय परिषद 5 वर्ष के लिए होती थी पर गवर्नर जनरल इसे पहले भी समाप्त कर सकता था।

विधायी शक्तियाँ

संघीय विधायिका तथा प्रांतीय विधायिका के मध्य विधायी शक्तियों के विभाजन का प्रश्न जब गोलमेज सम्मेलन में सामने आया, तो कुछ कठिनाइयां सामने आयीं। उदारवादी जो देश की एकता को शक्तिशाली बनाने की इच्छा रखते थे उनका मत था कि अवशिष्ट शक्तियां कनाडा की भांति केन्द्र में निहित होनी चाहिये, जबकि दूसरी ओर मुसलमान जो मुस्लिम बहुल प्रांतों

को एकाधिकार प्रदान करने के पक्ष म थे उनका विचार था कि अमरिका की तरह प्राता को अधिक अधिकार प्रदान किय जाय । पर अतत इस परामश के आधार पर काय किया गया कि केन्द्र व प्राता के अधिकारा की व्याख्या इतनी स्पष्ट व विस्तृत कर दी जाय कि अवशिष्ट अधिकारा की आवश्यकता ही न रहे । पर परिस्थिति के सही आकलन से ज्ञात होता है कि कुछ एस विषय थे जिसे न ता पूणतया केन्द्रीय और न प्रातीय क्षत्र म ही रखा जा सकता था । परिणाम यह हुआ कि तीन सूचिया तैयार की गइ (1) सघीय सूची जिसम रक्षा, विदेशी मामले तथा टकसाल थे, (2) प्रातीय सूची जिसम शिक्षा साव जनिक काय सिंचाई और नहरें थी, और (3) समवर्ती सूची जा दा भागा म विभाजित थी । इसमे से प्रथम म फौजदारी मामले और सविदायें तथा दूसर मे ट्रेड युनियने । औद्योगिक झगडे आतरिक जलागमन तथा बिजली थे । दाना म विवाद होने पर प्रात म सघीय कानून मान्य होता था ।

पर सघीय विधायिका किसी राज्य या प्रात के लिय वहाँ क राजा या गवनर की राय से कानून बना सकता था । गवनर जनरल द्वारा आपातकाल की घोषणा के बाद सघीय विधायिका प्रातीय सूची के किसी मसरा पर कानून बना सकती थी । पर चीफ कमिश्नरा के प्राता के सबध म सघीय विधायिका किसी भी ममले पर कानून बना सकती थी ।

राज्यो के सबध म कोई अलग सूची नही तयार की गयी थी । सघीय विधायिका अनुदेश प्रपत्र द्वारा प्रदत्त केन्द्र को प्रदान किसी भी विषय पर कानून बना सकता था । पर य विषय समवर्ती सूची मे रहते थे क्याकि इस सबध म प्रात भी तब तक ही कानून बना सकते थे जब तक कि केन्द्र का इन पर एकाधिकार न हो जाय ।

ऐक्ट ने सघीय विधायिका शक्ति पर कुछ विशेष पाबदिया भी लगायी । यह ब्रिटेन सम्राट और उसके परिवार को प्रभावित करने वाले विषय पर कानून नहीं बना सकता था, इसके अतिरिक्त 'आर्मी एक्ट , 'एअर फोस एक्ट' तथा 'नेवल डिफेंस ऐक्ट' के विरुद्ध कोई नियम भी यह नही बना सकता था । यह एक्ट के विरुद्ध, गवनर जनरल के स्वेच्छाधिकार के विरुद्ध या उसके द्वारा घोषित अधिघोषणा के विरुद्ध कोई कानून नही बना सकता था । सघ क्षेत्र म कायरत ब्रिटिश कम्पनी' 'शिपिंग एअर क्राफ्ट आदि के विरुद्ध कोई नियम यह नहीं बना सकती थी । कुछ बिल ऐसे भी थे जिन्हे किसी भी सदन मे प्रस्तुत करन से पूव गवनर जनरल की स्वीकृति प्राप्त करनी होती थी । कोई भी बिल दोनो सदनो म पारित होने क बावजूद गवनर जनरल की स्वीकृति के बिना कानून नही बन सकता था । उसके द्वारा स्वीकृत एक्ट को भी ब्रिटिश सम्राट रोक सकता था । गवनर जनरल किसी भी बिल को सदन को पारित करन के

लिये वह सकता था, और यदि वह ऐसा करने से इन्कार करे तो वह उसकी ही संस्तुति पर कानून का रूप ग्रहण कर सकता था। वह सदन को आमन्त्रित, स्थगित या समाप्त कर सकता था। दोनों सदनों में मतभेद की स्थिति में वह सदन की संयुक्त बैठक बुलाकर बहुमत से उस पर निर्णय दिला सकता था।

कार्यपालिका शक्ति के रूप में संघीय परिषद अपने सदस्यों में से स्पीकर एवं डिप्टी स्पीकर का तथा राज्य सभा अपने सदस्यों में से प्रेसीडेन्ट व वायस प्रेसीडेन्ट का चुनाव कर सकता था। ऐसे चुने गये अधिकारियों को बराबर के मत आने पर निर्णायक मत देने का अधिकार था। राज्य परिषद के प्रेसीडेन्ट या वायस प्रेसीडेन्ट को सदन का सदस्य न रहने पर अपना पद छोड़ना पड़ता था, पर संघीय परिषद का अधिकारी सदन के समाप्त होने पर भी अपने पद पर कार्य कर सकता था और नये सदन की प्रथम बैठक तक अपने पद पर रह सकता था। पर ये चुने गये अधिकारी अपने सदन के बहुमत से पद से हटाये जा सकते थे जिसके लिये उन्हें 14 दिन की नोटिस देनी पड़ती थी। सदन की सुचारु कार्यवाही के लिये दोनों सदनों को नियम बनाने का भी अधिकार था।

इसके अतिरिक्त कार्यकारिणी अधिकारों पर दोनों सदनों में प्रस्तावों स्थगन प्रस्तावों प्रश्नों और पूरक प्रश्नों द्वारा रोक लगाई जा सकती थी। संघीय सदन को इस दृष्टि से कुछ अतिरिक्त अधिकार भी थे क्योंकि यह मंत्रिपरिषद के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकती थी और उन्हें पद से हटा सकती थी। पर गवर्नर जनरल को स्वेच्छाधिकार व स्वनिर्णय द्वारा प्राप्त अधिकार के अंतर्गत दोनों सदनों की कार्यवाही हेतु कानून बनाने का अधिकार था। वह ऐसे नियम भी बना सकता था जिसके अंतर्गत भारतीय राज्यों के चरित्र पर दोषारोपण न किया जा सके। यह संयुक्त सदनों की बैठक के लिये भी नियम बना सकता था। पर ऐसे नियम बनाते समय उसे प्रेसीडेंट व स्पीकर से परामर्श करना पड़ता था। विधायिका को यह अधिकार नहीं था कि वह संघीय न्यायालय के न्यायाधीश को या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के आचरण पर विवाद करे।

दोनों सदनों के आर्थिक अधिकार कुछ भिन्न कोटि के थे क्योंकि आर्थिक बिल पहले परिषद में ले जाये जाते फिर राज्य सभा में प्रस्तुत किये जाते थे। पर संघीय विधायिका के आर्थिक अधिकार अति सीमित थे। गवर्नर जनरल के आदेशानुसार दोनों सदनों के पटल पर वार्षिक आर्थिक विवरण प्रस्तुत करना पड़ता था। पर संघीय राजस्व पर किये जाने वाले व्यय पर मतदान नहीं हो सकता था। इसने संघीय विधायिका को 80% व्यय के मसले पर कमजोर बना दिया। शेष 20% व्यय माँग के अनुदान के रूप में प्रस्तुत किया

जाता था। इसे पहले संघीय परिषद फिर राज्य सभा में प्रस्तुत किया जाता था। पर परिषद द्वारा अनुदान की अस्वीकृति पर भी गवर्नर जनरल की इच्छा पर राज्य सभा के समक्ष इसे पेश किया जा सकता था। और अनुदान के परिषद द्वारा कम किए जाने पर, इसे इसी आकार में राज्यसभा के समक्ष रखना पड़ता था। राज्यसभा भी इसमें कमी कर सकती या अस्वीकार कर सकती थी। पर गवर्नर जनरल को सभी मामलों में अस्वीकृत अनुदान को स्वीकार करने या घटाने का अधिकार था।

दो सदन—आपसी संबंधों में दोनों सदन परस्पर सहयोगी और समान अधिकार रखते थे। पर आर्थिक बिल केवल संघीय परिषद में पहले प्रस्तुत हो सकता था। इस अपवाद को छोड़ कोई भी बिल किसी भी सदन में रखा जा सकता था और यह गवर्नर जनरल के समक्ष दोनों सदनों से पारित होने के बाद ही प्रस्तुत किया जा सकता था। यदि एक सदन एक बिल को पारित कर देता और दूसरा नहीं तो यह समाप्त हो जाता था। ऐसे ही यदि एक जगह यह पारित होता और दूसरी जगह संशोधित होता तो संशोधन के अस्वीकृत होने पर भी वही स्थिति होती। इस एक्ट ने उच्च सदन को अनुदान पूर्ति का अधिकार प्रदान किया। यह स्मरणीय है कि इस सदन को प्रदत्त यह अधिकार 1919 के एक्ट में नहीं प्रदान किया गया था। दोनों सदनों में मतभेद दूर करने के लिए गवर्नर जनरल संयुक्त बैठक बुला सकता था जिसमें दोनों सदनों में उपस्थित सदस्यों के बहुमत के मत से निर्णय लिया जाता था।

मूल्यांकन—दोनों सदनों की रचना और शक्ति के विरोध में बहुत कुछ कहा जा सकता है। उच्च सदन में 40% और निम्न सदन के 1/3 सदस्य चूंकि भारतीय राजाओं द्वारा नामित होते थे इस कारण संघीय विधायिका की महत्ता घट गई थी, जिससे इसकी प्रगति अति धीमी हो गई। प्रांतों की सीटें पूर्णतया जनसंख्या पर आधारित नहीं थीं। तथाकथित ऐतिहासिक एवं भौगोलिक महत्त्व को अधिक महत्ता दी गई थी जिसका अर्थ दूसरे शब्दों में ब्रिटिश ताज के प्रति विश्वस्तता थी। वर्ग व साम्प्रदायिक हित साधन भी कम दुर्भाग्यपूर्ण नहीं था। लोगों को जातियों और वर्गों में केवल बांट ही नहीं दिया गया था बल्कि इसे महिलाओं को प्रदान कर चूल्हे तक पहुँचा दिया गया था। विभिन्न लोगों के लिए निर्धारित सीटें भी समानता पर आधारित नहीं थीं। ब्रिटिश भारत में मुसलमान केवल 26% थे पर उन्हें दोनों सदनों में 33% सीटें प्रदान की गई थीं।

एक अन्य दुर्भाग्यपूर्ण बात यह थी कि उच्च सदन में आश्चर्यजनक रूप से प्रत्यक्ष चुनाव और निम्न सदन में अप्रत्यक्ष चुनाव का प्रावधान किया गया

था। इसम कोई तकसगतता नही थी। लोकप्रिय सदन के लिय यह अप्रत्यक्ष चुनाव अपन ढग का विश्व म बिलकुल नय तरह का था। और पुन अप्रत्यक्ष रीति स निर्वाचित सदन का काल समाप्त हो जाता था और सीधे चुना गया सदन स्थायी था। उच्च सदन के सदस्या का 9 वप का काल असगत था। इससे चुन गय प्रतिनिधि अनुत्तरदायी हो सकत थ।

निम्न सदनाथ होन वाले अप्रत्यक्ष चुनाव की बुराइया का भी अनदेखी नही की जा सकती थी। इस सदन क सदस्य प्रान्तीय सदना स चुन जात थ जहा की प्रान्तीय व साम्प्रदायिक राजनीति सघीय सदन पर प्रभाव डालती थी। जो प्रान्तीय मसला के आधार पर चुनाव लडकर आत थे उनसे केन्द्र राष्ट्रीय भावना की आशा नही की जा सकती थी। एकमतीय आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली से प्रान्तीय सदना म भेदभाव की स्थिति पदा होती थी। इससे भ्रष्टाचार का भी बोलवाला हो जाता था क्योंकि केवल 8 प्रान्तीय निर्वाचक एक सघीय सदस्य का चुनाव करत थे जिनम से बहुत से लोगा के या धन के दबाव म आ सकत थे।

यह तक कि सघीय सदना के लिय प्रत्यक्ष चुनाव निर्वाचन क्षेत्रो पर नियन्त्रण असभव कर देंगे, ठीक नही लगता जो स्वतन्त्र भारत के चुनाव स ही स्पष्ट है। पुन अप्रत्यक्ष चुनावा के बहुत से दोष थ प्रत्यक्ष निर्वाचन क बहुत से गुण थे। प्रत्यक्ष चुनाव जितना शिक्षाप्रद होत है, इसका अनुभव हम स्वतन्त्र भारत म हुआ है, यही अपने म एक महत्वपूण गुण है। यदि ब्रिटिश सचमुच ही भारतीय हित म रुचि रखत थे तो इस पर उन्ह अमल करना चाहिय था।

दाना सदना की सह समान विधायी शक्तिया पूर सविधान म एक रोडा थी। इसा अनुदारवादी उच्च सदन को विश्व के द्वितीय सदना मसबस शक्तिशाली बना दिया था। सघीय विधायिका पर आरोपित सीमाय सामान्यतया गभीर एव तिरस्कार योग्य थी। गवनर जनरल की वह अपार शक्ति कि वह सदना की अस्वीकृति पर स्वय बिल को एक्ट म बदल सकता था कम दुर्भाग्यपूण नही थी। विधायिका और कायकारिणी म असहमति की स्थिति म कायपालिका विधायिका को समाप्त कर नय चुनाव करानी थी। पर इस क्षेत्र मे जो सिद्धात अपनाया जाता वह बडा विचित्र था जो सवधानिक नियमा या ब्रिटेन म भी प्रयोग म नही आता था।

इसके अतिरिक्त सघीय सदन का उन मन्त्रियो पर भी पूण नियन्त्रण नही था जो उन्ही के थे और जिनसे यह अपेक्षा की जाती थी कि वे उसके प्रति उत्तरदायी हागे। विधायिका पर गवनर जनरल के स्वेच्छाधिकार पर विचार न करने का अधिकार भी तिरस्कारयोग्य था। विधायिका के आर्थिक अधिकार

भी प्रशसायोग्य नही थे। लगभग 80%व्यय इसके अधिकार क्षेत्र के बाहर थे और शेष 20% पर भी शक्ति सीमित थी। किसी अनुदान के परिषद की अस्वीकृति पर राज्य सभा म अपील की जा सकती थी। निम्न सदन द्वारा कटौती प्रस्तुत करने पर गवनर जनरल द्वारा इसे ठीक किया जा सकता था। वैसे तो यह प्रावधान किया गया था कि बिल केवल सघीय परिषद म ही प्रारभ हो सकता था पर सच तो यह था कि व्यवहार म इसकी शक्ति राज्य सभा से बेहतर न थी।

सघ के अन्य अग

सघीय न्यायालय—एक सविधान म जहा स्वतत्र इकाइया मिलकर एक केन्द्रीय सघीय सरकार का निर्माण करती हैं, उसम एक सघीय न्यायालय की व्यवस्था आवश्यक हो जाती है जो इन इकाइयो के बीच होने वाले झगडो का निबटारा करती है। भारत म 1935 के ऐक्ट म एक ऐसे न्यायालय का प्रावधान था।

भारत के सघीय न्यायालय म मुख्य न्यायाधीश सहित 6 न्यायाधीशो से अधिक नही होते थ। पर इसम ब्रिटिश सम्राट गवनर जनरल के माध्यम से वृद्धि कर सकता था। ये कम स कम तीन होने थ, पर इस सख्या का निणय गवनर जनरल के अधिकार म था।

न्यायाधीश का पद प्राप्त करने वाले की योग्यता थी—(1) उस प्रात के हाईकोट या सघीय राज्य के कोट का 5 वष तक न्यायाधीश हुआ होना चाहिए, (2) या उस इग्लड या उत्तरी आयरलैड म 10 वष तक बरिस्टर होना चाहिए (3) या स्काटलैड के फकल्टी आफ ऐडवोकेटस का 10 वष तक सदस्य होना चाहिये, (4) या किसी प्रान्त या सघीय राज्य क हाईकोट म उसे 10 वष तक वकालत किये हुय होना चाहिये। मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति हेतु कम से कम व्यक्ति को 15 वष तक एडवोकेट बरिस्टर या वकालत का अनुभव होना चाहिय। अस्थायी पद के रिक्त होने की स्थिति म गवनर जनरल किसी भी सघीय न्यायाधीश को पदेन मुख्य न्यायाधीश का पद प्रदान कर सकता था।

पद प्राप्ति के बाद कोई भी न्यायाधीश 65 वष की आयु तक काय कर सकता था। पर वह अपने पद से स्तीफा पहले भी दे सकता था। उसे प्रीवी कौंसिल के न्यायिक समिति की सस्तुति पर ब्रिटिश सम्राट द्वारा पद से हटाया जा सकता था जिसके आधार के रूप म व्यवहार दोष अथवा शरीर या मस्तिष्क का दोष एक कारण हो सकता था। उनका वेतन कौंसिल मे सम्राट द्वारा निर्धारित होता था जो सघीय राजस्व से प्रदान किया जाता था। इस पर

विधायिका म मत नही लिया जा सकता था और न ही उसका कायकाल ही घटाया जा सकता था।

सघीय न्यायालय का कायक्षेत्र तीन तरह का था—अर्थात मूल, अपीलीय एव परामर्शी। मूल क्षेत्र के अतगत प्राता के आपसी झगडे, या एक प्रात से दूसर प्रात क झगडे तथा 'किसी तथ्य या कानून के प्रश्न को लेकर" सघीय सरकार के झगडे आत थ। अपीलीय क्षेत्र के अतगत प्रातो के हाईकोर्टो के निणय तथा सघीय राज्या के न्यायालया के निणय आत थे। पर इसकी शत यह थी कि व न्यायालय म यह कि इसम 1935 के भारत सरकार अधिनियम का परिभाषित करन का प्रश्न इसस जुडा है। राज्या की अपीलें भी वहा के शासक की स्वीकृति स होती थी। सघीय न्यायालय को नागरिक व फौजदारी मामला म अपील का अधिकार न था। पर एक निश्चय किया गया कि सघीय विधायिका न्यायालय को यह अधिकार नागरिक कानून के सबध म प्रदान कर सकती है यदि उनका मूल्य 50 हजार रुपय से कम न हो। यह काय गवनर जनरल से पूण अनुमति लेकर एक ऐक्ट पारित करके किया जा सकता था।

गवनर जनरल भी कानून के मसले पर न्यायालय से परामश ले सकता था। यह परामश खुली अदालत मे दिया जाता था और इस पर भी मुकदमे की तरह पैरवी होती थी। दोनो पक्ष के वकील अपनी दलीलें प्रस्तुत करते थे और तब परामश दिया जाता था। गवनर जनरल इस तरह से दिये गये परामश को मानने को बाध्य नही था, पर उसे अस्वीकार करना भी बडा सरल नही था।

सभी मसला पर न्यायालय बेंच क रूप मे बठता और बहुमत से निणय लेता था। विरोध मत देन वाले न्यायाधीशो का अपना मत देने का अवसर प्रदान किया जाता था। न्यायालय का काय दिल्ली म अग्रेजी म होता था।

अपन न्यायिक कार्यों के अतिरिक्त, न्यायालय अपन काय करने की पद्धति व नियम भी निर्धारित करना था। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश भारत और सघीय राज्यो म न्यायालया के लिये भी यह नियम बनाता था। इसके अतिरिक्त सघीय न्यायालय का कोई न्यायाधीश भी गवनर जनरल द्वारा व्यक्तिगत स्तर पर काय करने के लिये नियुक्त किया जा सकता था।

पर भारत का सघीय न्यायालय देश का अतिम उच्च न्यायालय या केन्द्र नही था। इसमे अनुमति लिये बिना ही प्रीवी कौसिल मे निम्न मसला पर अपील की जा सकती थी—(1) अनुदेश प्रपत्र के अतगत राज्य के द्वारा प्रदत्त सघीय शक्ति को सौप गये अधिकार के झगडे को लेकर, (2) सघीय कानून के सघीय राज्य पर लागू किय जाने के विवाद, एव (3) एक्ट के सही अथ

लगाने वे सबध म । इसके अतिरिक्त और सब मसलो पर अपील हेतु यायालय की अनुमति आवश्यक थी ।

1 अप्रल 1937 को प्राता म यह एक्ट लागू किया गया और दिसबर 1937 से सघीय यायालया का काय प्रारभ हुआ । पर चूकि कोई भी राज्य सघ म सम्मिलित नही हुआ और चूकि दश म सघ की स्थापना ही नही हो पाई इसलिय यायालय म मुख्य यायाधीश के अतिरिक्त केवल दो यायाधीश ही नियुक्त किय गय और इसी सख्या सहित यायालय कायरत रह ।

इस तरह मे यन सघीय यायालय म यायाधीशा की नियुक्ति एक विदशी अधिकारी सक्ट्री आफ स्टट द्वारा होती थी और के० टी० शाह के मतानुसार, इन परिस्थितियो म यह पूण सभव था कि वे बिल्कुल अप्रत्यक्ष रूप स इस शक्ति या वग से प्रभावित होते रह हा और अपन जीवन म उनकी महत्ता का अनुभव करते रहे हा ।[1] इस योजना का एक दोष यह था कि भारत म प्रीवी कौंसिल का अपीलीय अधिकार बना रहा और अतिम यायिक अधिकार सघीय सविधान के सघीय यायालय म बना रहा ।

पर फिर भी यह कहा जा सकता है कि इस तरह की अधिकार प्रदत्त सस्था का निर्माण भारत के याय सस्था के विकास म एक महत्त्वपूण कडी थी । *भारत के प्रथम मुख्य यायाधीश सर मारिस ग्वेर ने यायालय का श्रीगणेश* करत हुय कहा 'सरकार और दला स स्वतत्र रहकर यायालय का प्रथम कत्तव्य सविधान को परिभाषित करना है । यह शरीरशास्त्री की दष्टि स सविधान की अथ नही प्रदान करगा बल्कि एक जीवित सास लेते जीव की भाति दष्टि रखेगा जो भविष्य के विकास को भी ध्यान मे रखता है । परिभाषा के सिद्धात सविधान क विकास पथ पर रोडा नही अटकायेंग बल्कि राजनीतिविज्ञा को मनोभाव *व्यक्त* करन का अवसर प्रदान करग ।

सघीय यायालय के प्रारभ के साथ अतप्रा तीय झगडे राष्ट्रीय स्तर पर निबटाय जान लगे जिसमे देश म राष्ट्रीयता के विचार को सगठित होन का अवसर मिला ।

इसके अतिरिक्त उच्च नतिक चरित्र के प्रसिद्ध अधिकारी के निदेशन व *अध्यक्षता म दश म कायपालिका स स्वतन्त्र उच्च यायिक अधिकारी की शक्ति* का विकास हुआ । भारत सुरक्षा अधिनियमो' को नियम विपरीत घोषित कर यायालय ने द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान यायपालिका की स्वतत्रता की धाक जमा दी जिसम लोगो की स्वतत्रता की रक्षा हुई । इसके अतिरिक्त बहुत से उदाहरण थे जिसके द्वारा कायपालिका अधिकारियो के निरकुशता को तक की दिशा मे चलन को कहा गया । इससे कायक्षम्य रीति से ठीक ढग से काम करने

1 शाह के टी फडरल स्ट्रक्चर प 389 ।

गया कि वह संघ सरकार की आर्थिक स्थिरता व साख को बनाये रखे, और चूंकि सरकार की आर्थिक स्थिरता व साख का सबध सिक्का ढालन व विनिमय से है, इस कारण इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये रिजर्व बक की स्थापना की गई।

गवनर जनरल के अतिरिक्त बक व्यवस्था क लिय 15 डाइरक्टरो का एक बोड बनाया गया। डाइरक्टरो म स 8 बक क भागीदारो द्वारा चुन जात थ और शेष गवनर जनरल द्वारा नामित किय जात थ। गवनर जनरल स्वच्छा स उनका कायकाल व वतन आदि निर्धारित करता था। वह बोड का स्थान ल सकता था और उस परिसमाप्त कर सकता था। सिक्क ढालन नोट छापन और बक क सबध म गवनर जनरल की पूव अनुमति क बिना सधीय विधायिका म कोई बिल प्रस्तुत नही कर सकता था। यह बक 1935 म प्रारभ हुआ।

आर्थिक परामशदाता एव एडवोकेट-जनरल—इसक अतिरिक्त एक्ट क अनुसार गवनर जनरल अपन व्यक्तिगत निणय स इन दो अधिकारियो की नियुक्ति करता था। उनका वेतन और कायकाल भी वही निर्धारित करता था। आर्थिक परामशदाता गवनर जनरल और सघीय विधायिका को आर्थिक मसलो पर राय देता था और ऐडवोकेट जनरल कानूनी मसल पर राय दता था। इसके अतिरिक्त गवनर जनरल द्वारा प्रदत्त अन्य कत्तव्य का भी वह पालन करता था। एडवोकेट जनरल किसी भी सघीय विधायिका के सदन के समक्ष भाषण दे सकता था। पर उस देश के सामान्य राजनीतिक जीवन म भाग लेन का अधिकार नही था।

राज्य एव सघीय सरकार

हम पहले ही बता आय हैं कि जहा प्राता क लिए सघ म सम्मिलित होना अनिवाय था वहा राज्यो को सावभौम स्वतत्र इकाई माना गया और उन्ह सघ म सम्मिलित होने या न होने की सुविधा प्रदान की गई। यदि किसी राज्य का शासक सघ म सम्मिलित होन की इच्छा रखता तो उस अनुदेश प्रपत्र पर हस्ताक्षर करने होते। उसम उस स्पष्ट रूप से बताना होता कि वह किन किन विषयो का नियत्रण सघ सरकार को सौंपना चाहता है। सघ म सम्मिलित होने वाले राज्यो के लिये 260 राज्य सभा की सीटो म स 104 निर्धारित थी तथा सघीय परिषद की 375 सीटो म स 125 सीट। केन्द्रीय विधायिका मे राज्य प्रतिनिधि अलग अलग राज्यो का शासक नामित करता था। सघ म राज्य की स्थिति शक्तिशाली बना दी गई थी क्योकि यह कहा गया कि सघीय सविधान म परिवतन केवल ब्रिटिश ससद ही कर सकती थी।

पर इसम कोई मूल परिवतन सघ म सम्मिलित होने वाले राज्या के पूण सहमति के बिना सभव नही था।

केन्द्र और राज्यों के बीच सबध

यहा हम पुन यह सकत हैं कि राज्य चूकि स्वतत्न सावभौम इकाई के रूप म स्वीकार किय गये थे इसलिए गवनर जनरल उनके साथ दो ढग से व्यवहार करता था—प्रथम, भारत के गवनर जनरल के रूप म वह राज्या क उन विषया के सबध म कायवाही करता जिस राज्या न अनुदेश प्रपत्न पर हस्ताक्षर कर सघ को सौप दिया था, और द्वितीय ताज के प्रतिनिधि के रूप म वह भारतीय राज्या तथा ब्रिटिश सत्ता के राजत्व रेखा को विभाजित करके सपन्न करता था। पर एस० एम० बोस के शब्दा म कहा जा सकता है कि वस तो भारतीय राज्या और ब्रिटिश सत्ता के राजत्व के विभाजन था लकर इनके आपसी सबध 'लगभग-अतर्राष्ट्रीय' स्वभाव के हो जात थ पर राज्या का स्वतन्न राजत्व शेष नही रह गया था जिसके कारण अतर्राष्ट्रीय कानून मे उन्हें 'व्यक्तिया' क परिभाषा सीमा म लाया जा सकता है।[1]

सच तो यह था कि राज्या के पास एक समय राजत्व था। इस तरह उन्ह भारत सरकार द्वारा एक विदशी शक्ति स किये गय अतर्राष्ट्रीय समझौते का अनुपालन करना होता था। आतरिक क्षेत्र म ताज का राज्या के यूरोपीय ब्रिटिश निवासिया पर पूण अधिकार था। इसी तरह की बात रेलवे भूमि और कैण्टा के लिये भी थी। शासक की अल्पसख्यता पर ब्रिटिश शासन अस्थायी तौर पर पूरे अधिकार ग्रहण कर सकता था। ताज आतरिक व बाह्य विद्रोहा को दबाने के लिय उत्तरदायी था जिसके लिये राज्या को भारतीय सेनायें रखनी पडती थी। ताज राज्या के आन्तरिक शासन म भी हस्तक्षेप कर सकता था। उसे ही सलामी देन व अन्य नियम तय करने का अधिकार था। और इन सब ममला म, चाहे राज्य सघ म सम्मिलित हुआ हो या न हुआ हो गवनर जनरल ताज के प्रतिनिधि के रूप म वहा अपना अधिकार जता सकता था।

पर जिन राज्या न सघ मे सम्मिलित होन की घोषणा की उनके अतिरिक्त सघ सरकार की केन्द्रीय सस्थाओ, जिनका कि वह नता था, उसे कुछ अतिरिक्त उत्तरदायित्वो का निवाह करना पडता था। इस तरह विधायिका क्षेत्र मे राज्य म केन्द्रीय विधायिका की अधिकार सीमा वहा तक पहुच जाती थी जहा तक के अधिकार राज्य ने अनुदश प्रपत्न म हस्ताक्षरित कर केन्द्र को सौप दिय थे।

1 बोस एस एम द वकिंग आफ कास्टीच्यूशन इन इण्डिया ए कमेंट्री आन गवनमेण्ट आफ इण्डिया एक्ट 1935 प 38 39।

कार्यपालिका क्षेत्र में संघीय अधिकार की सीमा वहां तक बढ जाती थी जहा तक केन्द्रीय विधायिका को कानून बनाने का अधिकार था। पर यह तब संभव नही था जब यदि राज्य ने अनुदेश प्रपत्र मे इस तरह के कुछ अधिकार अपने हाथ मे सुरक्षित कर लिये हो। जहा तक अनुदेश प्रपत्र के निर्णयानुसार केन्द्रीय कार्यपालिका अधिकार को स्वीकार किया गया था उसमे कोई कठिनाई नही थी। यदि वह इसमे असफल होता तो गवर्नर जनरल इसके लिये आवश्यक कार्यवाही हेतु कह सकता था। पर यदि उसकी आज्ञा का पालन न होता तो गवर्नर जनरल को उच्च सत्ता को सूचना भेजनी पड़ती क्योंकि उसके पास इसके अतिरिक्त कोई चारा नही था।

न्याय के क्षेत्र में सब राज्य के उच्च न्यायालयो से संघीय न्यायालय मे अपीलें की जा सकती थी। पर ऐसा अनुदेश प्रपत्र के समझौते के अनुसार ही किया जा सकता था और संघीय न्यायालय का निर्णय राजा के माध्यम से ही घोषित किया जाता था। संघीय न्यायालय का चूंकि सीधा संबंध राज्य के उच्च न्यायालयो से नही था, इस कारण इसका निर्णय राजा को केवल संस्तुतियो के रूप मे था।

एक पुनरीक्षण—संघ मे राज्यो को जो स्थिति प्रदान की गई स्पष्ट रूप से देश मे प्रजातंत्र के विकास मे एक बाधा ही थी। संघ मे सम्मिलित होने का स्वरूप राजा का ही तय करना था। राज्य की जनता का इसमे कोई आवाज नही थी। संघीय विधायिका के लिए राज्य के प्रतिनिधि राजाओ द्वारा ही नामित होते थे पर उन्हे ब्रिटिश भारत के उन प्रतिनिधियो के साथ बैठने का अवसर मिलता था जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से चुनकर आते थे। उनके साथ वे समान अधिकार के भागी थे। संघीय परिषद मे राज्यो को 1/3 का मत प्राप्त था जो साम्प्रदायिक तथा स्वार्थी तत्वो के साथ सदन मे ब्रिटिश अधिकारियो की सहायता करते थे तथा लोकप्रिय व प्रगतिशील सरकार के गले का फंदा बन जाते थे।

यदि राज्य संघ मे सम्मिलित होते तो और कई लाभ प्राप्त होते। उनका आंतरिक राजस्व सुरक्षित रहता और केन्द्रीय अधिकार सीमित। यह अनुदेश प्रपत्र के अनुसार ही था। संघ के प्रारंभ होने के 10 वर्ष बाद तक राज्यो को सीधे कर से मुक्त रखा गया था। संघीय न्यायालय राज्य मे अपना अधिकार वहा के राजा के माध्यम से ही रखता था एवं संघ के कानून का प्रशासन राज्य पर वहा के राजा के माध्यम से ही लागू किया जाता था। गवर्नर जनरल को राजाओ के अधिकार व प्रतिष्ठा की रक्षा करनी पड़ती थी। काउंसिल मे गवर्नर का प्रदत्त सार्वभौम अधिकार ताज को सौंप दिये गये। गवर्नर जनरल अब इस स्वेच्छा के अधिकार से ही प्रयोग कर सकता था 'वह

अनुदश प्रपत्र की शर्तों का उल्लघन नही करता था, इसके बाहर की बाते सम्राट के प्रतिनिधि के प्रभाव क्षेत्र म आती थी । ' राज्यो की आतरिक और वाह्य सुरक्षा गवनर जनरल सुरक्षा विभाग के माध्यम से सीधे अपने हाथ मे रखता था ।

राज्यो की स्थिति निश्चित रूप से पहले से बेहतर थी । जहा सघीय विधायिका मे राज्य के प्रतिनिधियो को ब्रिटिश भारतीय मसलो पर प्रभाव डालने का अवसर था, प्रान्तीय प्रतिनिधियो को राज्य के मसलो पर ऐसा अधिकार नही प्राप्त था । राज्या का अपने देय करो के निर्धारण मे अपना मत प्रस्तुत करन और इसे धीरे धीरे देन का अवसर था । मघ राज्य के राजाओ व प्रजा का ब्रिटिश भारत मे कोई भी नागरिक पद प्राप्त करने का अधिकार था । यदि गवनर जनरल चाहता तो यह पद ऐसे राज्य के लोगो को भी प्रदान किया जा सकता था जो सघ मे सम्मिलित भी न हो । राज्यो और केन्द्र, राज्यो और प्रान्तो तथा राज्यो व राज्यो के बीच उठने वाले झगडे जो अभी तक कौंसिल मे गवनर जनरल तय करता था अब सघीय न्यायालय के हाथो मे चला गया, जिसकी अपील प्रीवी कौंसिल मे की जा सकती थी । सघ मे सम्मिलित राज्यो को भारत के हाई कमिश्नर की सेवायें सुलभ हुई ।

सघीय राज्यो को जो सबसे प्रतिक्रियावादी शक्ति सौंपी गई वह यह थी कि *उनमे से कोई भी सविधान के विकास मे बाधा खडी कर सकता था,* जिसस भारत के स्वतन्त्रता का काल अनिश्चित समय के लिये टल सकता था । ऐसा इसलिये था कि सविधान मे लिखा था कि सविधान मे कोई सशोधन सघ राज्यो के एक स्वर स स्वीकृति के बिना नही सभव था । यह सौभाग्य ही था कि सघ को अपना स्वरूप धारण करन का अवसर ही नही मिला ।

सघीय योजना का सामान्य मूल्याकन

सघीय सरकार की तीन विशेषतायें थी—(1) लिखित सविधान (2) केन्द्र और *इकाइयो के बीच शक्ति विभाजन,* एव (3) उच्चतम न्यायिक केन्द्र की स्थापना जो इकाइयो और केन्द्र तथा इकाइयो व इकाइयो के बीच झगडे तय कर । यह सब ऐक्ट के अतगत सघीय योजना म प्रस्तुत किया गया । पर इस योजना मे सघ का निचोड नही था, क्योकि इसम सभी आवश्यक चीजें गायब थी ।

सघ की आधारभूत बाते हैं कि (1) इसकी इकाइया स्वतन्त्र होनी चाहिये और इन्ह स्वय मिलकर सविधान की रचना करनी चाहिये, और (2) केन्द्र और इकाइया को एक दूसरे स स्वतन्त्र होना चाहिये और सघीय सरकार को विभिन्न इकाइयो को एक तार म जोडने का काय करना चाहिये ।

इस स्तर पर 1935 की सघ योजना का परीक्षण करने पर हम इसम ऐसी चीजा के दशन होत हैं जिसक सबध म सघीय परिषद के अध्यक्ष सर अब्दुल रहीम न ठीक ही कहा था, पूणतया अस्वाभाविक, बनावटी और किसी भी सविधान म लिय अनात चीज ।" प्रथम ता इस तरह जो इकाइया सगठित हुइ उनके राजनतिक चरित्र व परपरा म एकरूपता न थी। भारतीय राज्या पर निरकुश शासका का अत्यधिक नियत्रण था जा जनता का राजनतिक अधिकार प्रदान करन क प्रति अत्यधिक ईर्ष्यालु थे। इसकी तुलना म सघ म सम्मिलित हान वाले प्राता को कुछ प्रजातात्रिक अधिकार भी प्राप्त थे और उन स्थाना की जनता भी कुछ प्रगतिवादी विचारा की थी। सघ म सबधित इकाइया म समानता एव एकरूपता को एक मुख्य आधार प्रदान किया जाता है, पर दुर्भाग्य स इन दोना विशेषताआ का इस याजना म अभाव था।

सघ म सम्मिलित हान वाली इकाइया अपन क्षेत्र म स्वतत्र भी नही थी। एक सच्चा सघ एकता की ओर अग्रसर होता है पर यहाँ तो एक आश्चयजनक चीज सामने दखन म आइ कि तत्कालीन एकात्मक व्यवस्था इकाइया म बिखर गई तथा उन्ह मनमाने ढग स अपनी इकाई म स्वतत्र मान लिया गया। पर उन्ह अपनी सविधान रचना का अधिकार नही प्रदान किया गया और न तो उन्ह सविधान म परिवतन करन के अधिकार ही प्रदान किय गय, और उन्हे तथाकथित स्वतत्र इकाई मान जान के बाद उनम जो सगठन स्थापित किया गया वह स्वैच्छिक न होकर बाध्यतापूण था। प्राता की कोई स्वतत्र इच्छा नही थी। उन्ह केवल साधारण रूप स एक साथ करके सघ का स्वरूप प्रदान कर दिया गया था।

प्राता का अपन क्षत्र म स्वतत्र शक्ति भी प्रदान नही की गई। गवनर जनरल और गवनरो की शक्तिया स्वायत्तता की खिल्ली उडाते थ। सघीय, प्रान्तीय और समवर्ती तीनो सूचिया केन्द्र व प्रात की विधायी शक्ति के विभाजनाथ बनाई गई थी। पर अवशिष्ट शक्तिया केन्द्र के पास ही थी जिसके अतगत दा या उसम अधिक प्राता के प्राथना पर केन्द्र प्रातीय सूची स सबधित कानून भी बना सकता था। प्राता को प्रदत्त साधन सहग नहो थे जो आवश्यकताआ की वद्धि के बावजद टूटने की स्थिति म नही थे। दूसरी ओर केन्द्र की आर्थिक स्थिति मजबूत थी। इसक स्रोत कर क्षत्र स विस्तृत थ।

दूसरी ओर राज्यो के प्रति अधिक ध्यान दिया गया था। राज्यो ने सघ म सम्मिलित होने या न होने की छूट प्रदान की गइ। यदि वे सघ म सम्मिलित होत तो सघ के नियत्रण मे देन वाले विषयो का निणय भी वही करते थे। पूण ब्रिटिश भारतीय जनसख्या का 1/4 होन क बावजूद केन्द्रीय विधायिका मे इन्हे निम्न सदन म 33⅓ % सीटें और उच्च सदन म 40% सीटें प्रदान

की गई। उनके प्रतिनिधि राजा द्वारा नामित होते थे पर ब्रिटिश भारत के चुने गये सदस्यों के समान ही उन्हें अधिकार प्राप्त था। इसीलिये मुस्लिम लीग तक ने इसकी आलोचना करते हुए कहा, "यह एक चालाकी भरा ऐसा प्रयास था जिसके द्वारा प्रगतिवादी और राष्ट्रीय शक्तियों की बलि दे दी गई।" जवाहरलाल नेहरू के अनुसार, "कुछ दिनों पूर्व तक राज्यों की संधि या प्रभुता के विषय में कम ही सुना गया। राजाओं को अपनी शक्ति की जानकारी थी पर राष्ट्रीय आंदोलन के विकास ने भारत में इन्हें झूठी महत्ता प्रदान की जिसका कारण था ब्रिटिशों पर उनका विश्वास।"

पर राज्यों के संबंध में कोई एकरूपता नहीं थी। ऐसा इसलिये था क्योंकि प्रत्येक राज्य को संघीय नियंत्रण में सौंपे जाने वाले विषयों के विषय में स्वयं निर्णय करना था। इस तरह संघ में राज्यों के मिलने की स्थिति के महत्वपूर्ण मसलों में फर्क पड़ जाता था।

संघीय शासन में पुष्पित असामान्य द्वैत की योजना भी उचित नहीं थी। संघ का एक अंग ब्रिटिश ताज द्वारा नियंत्रित था जबकि इसके दूसरे अंग पर भारतीय विधायिका का नियंत्रण था। इस तरह की संघ व्यवस्था इसके पूर्व सुनी भी नहीं गई थी। पुनः गवर्नर जनरल के विस्तृत अधिकार व विशेष उत्तरदायित्व इस बात की सूचना देते थे कि इसका संघ नाम ही गलत रखा गया था। यदि रचित प्रशासन संघात्मक था तो गवर्नर जनरल के अधिकार ने उसे एकात्मक बना दिया था। निम्न सदन के लिये अप्रत्यक्ष और अभिजातवर्गीय उच्च सदन के लिये प्रत्यक्ष चुनाव की परंपरा भी संघीय परंपरा से मेल नहीं खाती थी। यह भी समझ में नहीं आता था कि इस व्यवस्था को बदसूरत बनाने के लिये अनेक रक्षोपाय क्यों किये गये थे। संघीय विधायिका को कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता भी नहीं थी। जिन्ना ने लिखा है कि, "बजट व उसके आकलन, विधान रचना में उसके हस्तक्षेप, उसकी विशिष्ट शक्तियां व उत्तरदायित्व, विधायिका के लिये करने को शेष ही क्या रखा था। 80% व्यय इसके नियंत्रण के बाहर था और शेष 20% पर भी कटौती का नियंत्रण लादकर गवर्नर जनरल दूसरी स्थिति पैदा कर सकता था।"

मंत्रियों को कृत्रिम अधिकार प्रदान कर कमजोर किया गया था। सुरक्षा और विदेशी मामलों को उनकी शक्ति दायरे के बाहर रखा गया था। राज्य रेलवे उनसे अलग कर दिया गया था। वे गवर्नर जनरल के समर्थक होते थे। संघीय विधायिका के सदस्य होने के बावजूद वे इसके प्रति पूर्णतया उत्तरदायी नहीं थे।

1935 के एक्ट के अंतर्गत 321 भागों और 10 अनुसूचियों में रेखांकित यह संविधान संभवतः विश्व का सबसे लम्बा और जटिल संविधान था।

इसमे प्रस्तुत समस्याओ के कुछ समाधान असवैधानिक थे। और इसके ऊपर तुर्रा यह था कि संघीय विधायिका किसी भी मसले पर इसमे संशोधन नही कर सकती थी। संशोधन की शक्ति ब्रिटिश संसद म निहित थी। पर यह संस्था भी संशोधन की पूर्ण शक्ति नही रखती थी क्योकि कुछ मामलो म संघीय राज्यो की पूर्ण स्वीकृति के बिना य भी संशोधन न ी कर सकता था। दूसरे शब्दो मे छोटा से छोटा एक राज्य पूरे देश की प्रगति म बाधा डाल सकता था। इस तरह सर्वशक्तिमान शक्ति भी यहाँ असहाय हो जाती थी। सच्चे अर्थों म संघ राज्य म स्वायत्तशासी इकाइयाँ भी संघीय सिद्धाता की अवहेलना किये बिना अपने संविधान म संशोधन करने की शक्ति रखती हैं। पर प्राता को इस तरह की कोई शक्ति नही प्रदान की गई।

इस तरह इससे इकार नही किया जा सकता कि संघ का उद्देश्य भारत को एक उत्तरदायी सरकार से दूर रखने की इच्छा ग्रस्त था। 11-12 अप्रैल 1936 के मुस्लिम लीग प्रस्ताव म कहा गया कि "केन्द्रीय सरकार की अखिल भारतीय संघीय योजना ब्रिटिश भारत व भारतीय राज्यो के हितो के विरुद्ध अत्यधिक प्रतिक्रियावादी, प्रतिगामी और हानिकर थी। प्रस्ताव म आगे कहा गया कि संविधान की प्रान्तीय योजना का उपयोग इन कठिनाइयो क कारण सरल न था। फरवरी 1937 की काग्रेस की काय समिति के प्रस्ताव म भी कहा गया काग्रेस न विधायिका म नवीन संविधान के साथ सहयोगार्थ प्रवेश नही किया है वरन इस ऐक्ट म निहित नीति का विरोध करने के लिए आया है।"[1]

प्रान्तीय स्वायत्तता

1935 के एक्ट भारत सरकार अधिनियम के अतगत भारतीय राज्यो के अतिरिक्त भारत मे तीन तरह की क्षत्रीय इकाइयाँ थी। प्रथम तो दिल्ली और और अजमेर मारवाड की तरह थी मुख्य कमिश्नर के प्रात थे जिसमे मुख्य कार्यपालिका अधिकारी मुख्य कमिश्नर था जो गवनर जनरल कौंसिल के द्वारा नियुक्त होता था और उसी के प्रति उत्तरदायी भी। दूसरे तरह के प्राता की संख्या 11 थी। पर इसम भारत से अलग हुआ बर्मा सम्मिलित नही था पर नये निर्मित प्रात उडीसा और सिंध इसम सम्मिलित थ। इसक अतिरिक्त कुछ प्राता मे कुछ बहिष्कृत और अर्द्ध बहिष्कृत क्षेत्र भी थे। य क्षेत्र तीसरी तरह के थ और चकि पिछडा होने के कारण इ ह उत्तरदायी सरकार के योग्य

1 देखें फिलिप्स द इवाल्यूशन आफ इंडिया एण्ड पाकिस्तान प 201 235, शर्मा ज एम पूर्वोद्धृत प 505 589।

नही माना जाता था, इसलिये इन्हे लोकप्रिय मंत्रियो के हाथ मे न रखकर गवर्नर के अंतर्गत रखा जाता था। पर इन बहिष्कृत क्षेत्रो को छोडकर उपरोक्त 11 प्रातो मे स्वायत्तता की स्थापना की गई थी। यहा प्रातीय स्वायत्तता की मशीनरी की जानकारी कुछ विस्तार मे आवश्यक है।

यह समझा जाता है कि एक सच्ची प्रातीय स्वायत्तता ऐसी सरकार का नाम है जिसके ऊपर कोई वाह्य नियंत्रण व बोझ न हो और जो आतरिक रूप से लोकप्रिय विधायिका द्वारा चुने गये लोगो के प्रति उत्तरदायी हो। इन दोनो आधारो पर परीक्षण करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते है कि क्या प्रातो ने स्वायत्तता थी भी अथवा नही।

वाह्य नियंत्रण

वाह्य नियंत्रण के मसले मे जो स्वतंत्रता प्रातो को प्रदान की गई उसका परिचय केन्द्र व प्रातो के मध्य ऐक्ट के अंतर्गत स्थापित कार्यकारिणी, विधायी और आर्थिक सबधो मे देखी जा सकती है।

कार्यपालिका सबधी सबध—जहा तक केन्द्र व प्रातो के मध्य कार्यपालिका सबधी सबध का प्रश्न है 1935 का ऐक्ट निश्चित रूप से 1919 के ऐक्ट से बेहतर था जिसमे प्रातीय हित का ध्यान रखा गया था। पुरानी परपरा म प्रातो की समस्त कार्यपालिका शक्ति भारत सरकार द्वारा उन्हे सौंपी गई थी जो प्रातीय प्रशासन में किसी सीमा तक हस्तक्षेप कर सकती थी। पर यह शक्ति नकली थी। विशेषकर मंत्रिया को हस्तातरित विभागो म तो यह कतई सभव नही था। पर 1935 के ऐक्ट ने इसमे विशेष परिवर्तन प्रस्तुत किया। कलम की एक नोक से इसने उस पुरानी एकात्मक प्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया जिसके अंतर्गत शक्ति केन्द्र से प्रातो के हाथ मे घूमती रहती थी। नई व्यवस्था मे एक सघीय व्यवस्था प्रारभ हो गई जिसमे स्वायत्तशासी इकाइया अपनी इच्छा से सघ का सदस्य बन जाती हैं। पुरान प्रात जो केन्द्र सरकार के मात्र एजेन्ट थे, उन्हे पहली बार व्यक्तिगत इकाइयो के रूप मे स्वीकार किया गया जिन्हे अलग वैधानिक अधिकार प्राप्त हुए। पर इसके बाद ऐक्ट ने अधैय का परिचय देते हुये और इस बात की प्रतीक्षा किये बिना कि प्रात सघ मे सम्मिलित हो रहा है या नही, इनके ऊपर सघ आरोपित कर दिया गया। पर इतना होने पर भी यह बहुत बुरा नही था क्योकि प्रातीय विधायिकाओ को उन सब मसलो पर कानून बनाने का अधिकार प्रदान किया गया जिनके लिए वे सक्षम थे। पर असली कठिनाई तब खडी हुई जब प्रातो पर कुछ एहतियाती प्रतिबध लगा दिय गये जिसके कारण प्रातीय स्वायत्तता ने व्यंगपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया।

इस तरह ऐक्ट म यह प्रावधान किया गया कि प्रातीय कायकारिणी अधिकार इस तरह प्रयोग म लाय जायेंगे कि जिसम व प्रात हेतु बन केन्द्रीय कानून का उल्लघन न कर। व उनका इस ढग स प्रयोग न करन को भी बाध्य थे जिससे कि केन्द्रीय कायपालिका अधिकार पर कोई आघात न हो। गवनर जनरल को यह अधिकार दिया गया कि अपन एजेंट के रूप म वह गवनर को अपनी इच्छानुसार काय करन का कह। गवनर जनरल गवनर को यह निर्देश भी द सकता था कि भारत या उसके किसी भाग म शाति व व्यवस्था की स्थिति को खतरा पैदा होन पर उस रोकन हेतु किस तरह से अपनी कायपालिका शक्ति का प्रयोग करे। दूसरी ओर गवनर व्यक्तिगत ढग स या अपनी इच्छानुसार काय करते समय गवनर जनरल के आदेशो को ध्यान म रखता था। गवनर जनरल या केन्द्रीय विधायिका गवनर की राय से प्रातीय सरकार या उसके अधिकारियो पर केन्द्रीय विषयो सबधी कत्तव्य और शक्तियाँ सौप सकता था। पर एसी स्थिति म सारा व्यय केन्द्र वहन करता था। यदि प्रातीय सरकारें सघीय सरकारो के आदेश का पालन न करती तो गवनर जनरल अपनी शक्ति के अतगत गवनर को तत्सबधी आदेश दे सकता था और एसी स्थिति म मत्रियो के विरोध के बावजूद इसका पालन करना पडता था। सघ या सभी प्राती के आपसी झगडा के सबध म गवनर जनरल गृह अधिकारियो के पास अतर्प्रातीय कौंसिलो की रचना की सस्तुति कर सकता था। इस तरह के प्रतिबध प्राता पर आरोपित किये गये थे फिर भी प्रातीय स्वायत्तता की बात की जाती थी।

विधायिका सबधी सबध— केन्द्र और प्राता के बीच विधायिका सबधी सबध भी ठीक नही थे। तत्सबधी विषया की तीन सूचिया थी। प्रथम सघीय सूची के अतगत सघीय विधायिका को अपनी इच्छानुसार कानून बनाने का पूण अधिकार प्रदान किया गया था। द्वितीय प्रातीय सूची के अतगत प्राता को कानन बनाने का अधिकार प्रदान किया गया था। तृतीय समवर्ती सूची म केन्द्र और प्रात दोनो कानून बनाने म सक्षम थे। सूचिया को इतनी विस्तृत रूप से व्याख्या की गई थी कि अवशेष सूची नही के बराबर रह जाती थी। केन्द्र अथवा प्रात को अवशिष्ट शक्ति नही प्रदान की गई।

यह भी प्रावधान किया गया कि यदि समवर्ती सूची म केन्द्रीय और प्रातीय कानून म विरोधाभास हो तो केन्द्रीय कानून ही सर्वोपरि होगा। इस प्रावधान मे कोई कमी नही थी। पर इसके कारण प्रात ईर्ष्यालु केन्द्रीय नजरो से ओझल नही हो पाते थ। बहुत स विषया मे यह आवश्यक था कि प्रातीय विधायिका म कानन बनने हेतु बिल लान क पूव गवनर जनरल की सहमति ले ली जाय। इसके अतिरिक्त, जहा सच्चे प्रातीय स्वायत्तता के अतगत एसी

स्थिति मे कि अमुक विषय केन्द्र से सबद्ध है या प्रातो से, केन्द्रीय न्यायालय ही न्सका निणय करती थी व इस स्थिति मे जिसमे कि यह शक्ति मुख्यतया न्यायिक थी, इसे गवनर जनरल को सौपा गया। न्सके अतिरिक्त यह प्रावधान किया गया कि गभीर आपातकाल मे सघीय विधायिका को प्रातीय सूची के किसी भी विषय के सवध मे कानून बनाने का अधिकार होगा।

अथ सबधी सबध—1919 के मोण्टफोड सुधारो के अतगत आर्थिक स्थिति के सबध मे 1935 के ऐक्ट ने कई महत्वपूण सुधार किये जिसके द्वारा प्रातो को पर्याप्त आर्थिक स्वायत्तता प्राप्त हो गई। पुरानी व्यवस्था मे प्रातो को करारोपण का स्वतत्र अधिकार नही था और न ही वे अपने राजस्व के आधार पर ऋण ही प्राप्त कर सकत थे। राजस्व के स्रोत अब अधोलिखित थे—(1) भू राजस्व, आवकारी कर आदि कुछ ऐसे कर थे जो प्रातो द्वारा लगाये जाते और एकत्रित किये जाते थे। (2) मुद्रा और सिक्के ढालने, आयात व नियात आदि केन्द्र के अधिकार मे थे। (3) इनम से कुछ जिनमे नमक, गर कृषि आय आदि थे, उन्ह केन्द्र व प्रातो के बीच विभाजित किया गया। (4) कुछ कर जिनम रेल व वायुयानो द्वारा ले जाने वाली वस्तुओ और यात्रिया पर सीमा कर भी था तथा कृषि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति पर लगने वाले कर भी, केन्द्र द्वारा लगाये और एकत्रित किये जाते थे पर इन्हे प्रातो को सौंप दिया जाता था। प्राता को अपने राजस्व के आधार पर ऋण प्राप्त हो जाता था और आर्थिक स्थिरता प्रदान करने के लिये तथा भारत के अदर व बाहर उसकी साख के लिये रिजव वक आफ इडिया जस अराजनतिक अधिकार को स्वीकार किया गया। इस तरह सघीय विधायिका द्वारा रिजव वक आफ इडिया ऐक्ट पारित किया गया और वेक की स्थापना की गई जिसमे सविधान आदि की चर्चा पहले ही की जा चुकी है।

इस तरह से प्राता की आर्थिक शक्ति बढा दी गई। फिर भी जो व्यवस्था स्थापित की गई वह पूणतया सतोषजनक नही थी। प्रातो के ऋण लेने के अधिकार पर कुछ प्रतिवध लगाये गये। इसके अतिरिक्त प्राता को सौपे गय राजस्व स्रोत न तो उनकी आवश्यकता के लिए प्रर्याप्त थे और न ही विस्तृत जिससे प्राना का विकास हो सके। वाद वाली बुराई का अनुभव पहले से ही किया गया जिसको दूर करने के लिए यह प्रावधान किया गया कि प्राता की आर्थिक कमी को दूर करन के लिए सघीय राजस्व स अनुदान दिया जाय। वाद मे नीमेयर अवाड न यह भी निश्चित कर दिया कि किस दर पर यह सहायता प्रदान की जाय।

रिक उत्तरदायित्व

प्राता को इस एक्ट के अतगत जो कायपालिका और विधायिका की निया प्रदान की गई उसी के आधार पर प्रातीय विधायिका व आतरिक रदायित्व का बोध हो सकता है।

कायपालिका सगठन—1919 के एक्ट के अतगत चलाय गये पुरान ात्र सरकार को समाप्त कर दिया गया और उसके स्थान पर 1935 के ट ने पूण प्रातीय स्वायत्तता की स्थापना की। जहाँ पहले प्राता की यपालिका शक्ति केन्द्र से दी हुई मिलती थी वहा अब प्रात और केन्द्र दोना सविधान से शक्ति मिलती थी और अपन-अपन क्षेत्रा म दोना की अलग क्तया थी तथा प्रात केन्द्र का अनुगामी नही रहा था। प्राता की काय लिका शक्ति सविधान के अतगत उन सब क्षेत्रा पर लागू होती थी जिनम की प्रातीय विधायिका को कानून बनाने का अधिकार था। यह शक्ति नर म निहित थी जो प्रत्यक्ष रूप स या मन्त्रिमडल के माध्यम स इसका ोग करता था।

गवनर—गवनर प्रात का मुख्य कायपालिका अधिकारी था। बगाल, बई और मद्रास म यह पद किसी प्रतिष्ठाप्राप्त व्यक्ति को मिलता था जिसे रत के राज्य सचिव की सलाह पर ताज द्वारा नियुक्त किया जाता था। य प्राता क गवनर भारतीय सिविल सर्विस से लिय जात थ और उनकी युक्ति गवनर जनरल की सलाह पर होती थी। आमतौर पर इसकी काला ध 5 वष होती थी पर उसका वेतन अलग अलग प्राता म अलग अलग था। ा एक प्रेसीडेंसी का गवनर प्रतिवष 120000 रुपए पाता था उडीसा गवनर को 66000 रुपए और पजाब के गवनर को 100000 रुपय मिलते । बगाल के गवनर को सत्ता सहित जो वेतन मिलता था वह 607300 रु० जबकि पजाब के गवनर का 141200 रुपए। कोई भी प्रातीय विधायिका नर के वेतन मे परिवतन नही कर सकती थी।

कायपालिका शक्तिया—गवनर की शक्तिया विस्तृत थी और प्रात की ाम कायवाहिया पर लागू होती थी। गवनर की कायपालिका शक्तिया ि तरह की थी अर्थात जो वह मत्रियो की सलाह के बिना अपन मन स ता था, वह जो मत्रिया से सलाह करने पर बिना बाध्यता के व्यक्तिगत ाय के आधार पर करता था तथा वह जो मत्रियो की सलाह के आधार पर करता था।

गवनर की विवेकाधीन शक्ति जो वह गवनर जनरल के नियत्रण म रह र करता था वे लगभग 32 तरह की थी जिनमे से प्रमुख निम्नलिखित थी।

) प्रारभ मे यह गवनर का ही निणय करना होता था कि कौन सी चीज

उसके विवेकाधीन शक्ति के अतगत आती है (2) वह मत्रियो को नियुक्त करता, बुलाता और बर्खास्त करता था तथा उनका वेतन निर्धारित करता था पर वेतन निर्धारण का काम जब प्रातीय विधायिका करती थी तो उसके अधिकार कम हो जाते थे, (3) वह मत्रिमडल की बैठको की अध्यक्षता करता था, (4) कार्यपालिका कार्यवाही को सुगमतापूर्वक चलाने के लिए वह नियम बनाता था (5) सरकार को समाप्त करने के प्रयास वाले अपराधो को रोकता था, (6) वह विधायिका को बुला सकता या स्थगित कर सकता था तथा निम्न सदन को समाप्त कर सकता था, (7) वह किसी बिल या उसकी किसी धारा पर बहस को रोक सकता था, (8) वह यह तय करता था कि किस व्यय के मद पर मत लिया जा सकता था और किस पर नही, (9) वह दोनो सदनो को आमत्रित कर सकता था। द्विसदनीय सभा की स्थिति म भी उसे यह अधिकार था, (10) किसी व्यक्ति को जो चुनाव म खडे होने के अयोग्य घोषित कर दिया गया हो उसे योग्य करार दे सकता था, (11) प्रातो के लोक सेवा आयोग के चेयरमन और सदस्य उसी के द्वारा चुने जाते थे (12) और उसे एक विशिष्ट विवेकाधीन शक्ति भी प्राप्त थी जिसके अतगत वह गवनर ऐक्ट पारित कर सकता था। यह शक्ति उसके अध्यादेश घोषित करने और नियम बनाने के अतिरिक्त थी जो वह बहिष्कृत व अद्धबहिष्कृत क्षेत्रो के प्रशासन के लिए प्रयोग मे लाता था। इसका विस्तृत विवरण आगे है।

पर सबसे बुरी थी इस ऐक्ट की 93वी धारा जिसमे सविधान की समाप्ति की अवस्था मे उसके विवेकाधीन शक्ति को परिभाषित किया गया था। यदि गवनर इससे सतुष्ट हो कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जब ऐक्ट के अनुसार सरकार चलाना कठिन है, तो वह सारी शक्ति या शक्ति का कुछ भाग स्वय ग्रहण कर सकता था। पर इस स्थिति म भी वह प्रातीय उच्च न्यायालय को कब्जे म नही ले सकता था। इस तरह की उद्घोषणा की सूचना भारत के राज्य सचिव को पहुचानी पडती थी जो उसे ब्रिटिश ससद के दोनो सदनो के समक्ष प्रस्तुत करता था। यह घोषणा 6 माह के लिये लागू रहती थी, पर इसे इसकी समाप्ति की तिथि से 12 माह आगे तक और बढाया जा सकता था। पर किसी भी स्थिति म यह 3 वर्ष से अधिक तक लागू नही रह सकता था। बाद मे इसमे एक सशोधन जोडा गया जिसमे कहा गया कि यह घोषणा युद्ध के बाद तक चल सकती है। यह घोषणा गवनर जनरल की सहमति से ही की जाती थी और इसे दूसरी घोषणा द्वारा समाप्त या परिवर्तित किया जा सकता था। घोषणा काल मे गवनर द्वारा पारित ऐक्ट इस घोषणा की समाप्ति के दो वर्ष बाद तक चलता रह सकता था।

व्यक्तिगत निर्णय के अंतर्गत जो शक्ति गवर्नर को प्राप्त थी उसमें ऐक्ट की 52वीं धारा में गवर्नर के विशिष्ट उत्तरदायित्वों का उल्लेख किया गया। ये विशेष उत्तरदायित्व थे—(1) अल्पसंख्यकों के उचित हितों की रक्षा, (2) असमान व्यवहार से असैनिक कर्मचारियों की रक्षा, (3) प्रांत में शांति व व्यवस्था के विरुद्ध स्थिति पैदा होने से लोगों की रक्षा, (4) किसी भेदभाव से ब्रिटिश प्रजा की रक्षा (5) शासकों के अधिकारों व प्रतिष्ठा की रक्षा और ऐसे उपाय जिससे पड़ोसी राज्यों के अधिकारों में हस्तक्षेप न हो व भेदभाव न उत्पन्न हो, (6) बहिष्कृत व अर्द्धबहिष्कृत क्षेत्रों में शांति व अच्छे प्रशासन की व्यवस्था, (7) गवर्नर जनरल द्वारा सौंपे गये उत्तरदायित्व का भारवहन, और (8) प्रांत में सिंचाई की व्यवस्था की सूचना देते रहना। एक्ट के अंतर्गत राज्य सचिव के लिए यह एक विशेष रुचि की चीज थी, एवं (9) मध्य प्रांत एवं बरार के गवर्नर पर बरार व हैदराबाद के संबंध में विशेष उत्तरदायित्व थे।

गवर्नर जनरल को यह जानने के लिए कि उसके किसी विशेष उत्तरदायित्व की अवहेलना नहीं हुई है मंत्रियों तथा विभाग के सचिवों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे ऐक्ट के नियमों के अंतर्गत उसे सब बातों की सूचना प्रेषित करते रहेंगे।

उसके उन उत्तरदायित्वों का जिसका विवरण हम ऊपर क्रम संख्या 2 पर दे आये हैं विशेष विवरण यहां आवश्यक है। असैनिक सेवायें पूर्णतया गवर्नर के अधीन थी जो उनके तबादला, उन्नति अवकाश और दंड के विषय में निर्णय करता था और उपरोक्त मसलों पर होने वाले व्यय पर विधायिका में मत नहीं लिया जा सकता था।

गवर्नर को शेष अधिकारों का प्रयोग मंत्रियों के परामर्श से करना होता था। पर चूंकि मंत्री उसी के द्वारा नियुक्त होते और बर्खास्त किये जाते थे इसलिये इसमें भी उसकी इच्छा ही विशेष रूप से कार्य करती थी।

विधायिका शक्ति—गवर्नर की विधायिका शक्ति प्रत्यक्ष रूप से और साथ ही साथ प्रांतीय विधायिका के नियंत्रण के माध्यम से कार्यपालिका शक्ति की ही भांति उच्चकोटि की थी। वह किसी भी सदन को आमंत्रित कर सकता या स्थगित कर सकता था तथा विधान सभा को समाप्त कर सकता था। वह उन्हें अलग-अलग और एक साथ संबोधित कर सकता था, व दोनों सदनों में भेदभाव होने पर उन्हें एक साथ बैठक के लिए आमंत्रित कर सकता था, उनकी कार्यवाही के लिए नियम बना सकता था जिसमें उसे दोनों सदनों के अध्यक्षों से परामर्श लेना पड़ता था, विवाद के अंतर्गत किसी बिल को विचारार्थ कुछ संदेश भेज सकता था, यदि किसी बिल के या उसकी किसी धारा के या उसमें किये गये किसी संशोधन के कारण सार्वजनिक शांति व व्यवस्था का

खतरा पैदा होने की संभावना होती तो वह उस पर विचार रोक सकता था, विदेशी मामला या किसी राज्य से संबंधित या किसी शासक के चालचलन के बारे मे या किसी शासकीय परिवार के बारे म होने वाले विवाद या प्रश्नो पर वह रोक लगा सकता था और इससे वह बिल कानून का रूप धारण कर सकता था। ऐसे बिल को वह रोक सकता था या उसे पुन विचारार्थ वापस कर सकता था या इसे ब्रिटिश शासक के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु सुरक्षित रख सकता था। विधायिका म तमाम विषयो पर बिलो का प्रस्तुतीकरण उसकी अनुमति के बिना सभव न था।

सीधे कानून बनाने के सबध मे गवनर ऐक्ट के सबध म उसके अधिकार रुचिकर थे। वह बिल के प्रारूप को विधायिका म पारित होने हेतु भेज सकता था, पर यदि विधायिका यह काय एक महीने म न करती, तो गवनर इस बिल को कानून का रूप देने का अधिकार रखता था। वसे तो विधायिका और मत्रिमडल का ऐसे एक्ट के सबध म कोई उत्तरदायित्व न होता था, पर इस ऐक्ट की भी शक्ति वैसी ही होती थी जैसी विधायिका द्वारा पारित बिल की।

इसके अतिरिक्त गवनर को दो तरह के अध्यादेश घोषित करने का अधिकार था अर्थात ऐसे अध्यादेश जो सदन के न चलने के काल म घोषित हो और मत्रिमडल अपने उत्तरदायित्व पर उन्हे घोषित कराये तथा ऐसे अध्यादेश जो गवनर अपने विवेकाधीन घोषित करे जिसके लिये वह स्वय उत्तरदायी होता था।

आर्थिक शक्ति—गवनर के आर्थिक अधिकार भी कम महत्व के न थे। सदन मे बजट के आकलन व मागें उसके आदेश व सस्तुतिया से प्रस्तुत किये जाते थे, प्रान्तो म राजस्व मद का निश्चय उसी से होता था। उसे अस्वीकृत माग को स्वीकृत करने का अधिकार था और कटौती को भी समाप्त करने का।

अनुदेश का प्रपत्र—स्वेच्छा से एव अपनी व्यक्तिगत शक्ति के सही प्रयोग के लिये, गवनर हेतु अनुदेश प्रपत्र जारी किया गया था जिसे राज्य सचिव ने तैयार किया था और ससद के दोनो सदनो ने स्वीकार किया था। किसी प्रपत्र मे भावी परिवर्तन भी ससद के दोनो सदनो द्वारा स्वीकार किया जाता था। पर अनुदेश प्रपत्रो की कोई कानूनी औकात न थी क्योंकि यदि गवनर उनमे से किसी की अवहेलना करता तो वह इसके लिये किसी न्यायालय म उत्तरदायी न होता। इस प्रपत्र का मूल उद्देश्य स्वस्थ सवैधानिक परपराओ का विकास करना था।

वसे तो विवेकाधीन शक्ति से गवनर किसी मत्री को नियुक्त व बरखास्त कर सकता था पर प्रपत्र उसे य राय देते थे कि वह उन्हे उनके मत से नियुक्त

करे जिनका विधायिका मे स्थायी बहुमत है। मन्त्रिमडल मे महत्वपूर्ण अल्प सख्यक समुदाय का प्रतिनिधित्व देने का परामश प्रपत्र देता था और ऐसे ही मन्त्रियो के सामूहिक उत्तरदायित्व की बात वह करता था। उसे यह भी परामश दिया गया कि मन्त्री सामूहिक रूप से निम्न सदन का विश्वास अर्जित किये हुए थे।

मन्त्रिमडल—गवनर को सहायता व परामश देने हेतु ऐक्ट के अतगत मन्त्रिमडल का प्रावधान था। प्रान्तीय विधायिका से ही गवनर मन्त्रियो की नियुक्ति करता था और वे उसकी इच्छाकाल तक इन पदो पर बने रहते थे। विवेकाधीन शक्ति के अनुसार वह उनकी बैठको का सभापतित्व कर सकता था। पर मन्त्री गवनर के सपूण नियत्रण म नही थे। उनकी विधायिका से जुडी अपनी इच्छाये भी थी। इसका प्रावधान था कि विधायिका अविश्वास प्रस्ताव द्वारा उन्हे पदमुक्त कर सकती थी पर वह उनका वेतन उनके कायकाल मे नही बढा सकती थी। इसके अतिरिक्त अनुदेश प्रपत्र भी गवनर से यह अपेक्षा करता था कि वह मन्त्रियो की नियुक्ति उस व्यक्ति के परामश से करे जो विधायिका म स्थायी बहुमत रखता हो। पर गवनर के लिये यह अनुपयुक्त परामश था कि वह महत्वपूर्ण अल्पसख्यक जातियो म से भी लोगो को अपने मन्त्रिमडल मे रखे क्योकि यह बात सामूहिक नतृत्व के विरुद्ध जाती थी।

एक्ट म प्रान्त मे मन्त्रियो की सख्या की सीमा निर्धारित नही की। यह सख्या अलग अलग प्रान्तो मे अलग अलग थी। सबसे अधिक 12 मन्त्री बगाल म थे और सबसे कम 3 उडीसा मे थे। ससदीय सचिव का प्रावधान नही था पर अधिकतर प्रान्तो मे बहुमतदलीय सदस्यो मे से इन्हे नियुक्त कर दिया जाता था जो ससदीय और प्रशासकीय मसलो पर सहायता करते थे तथा भविष्य म मन्त्री पद हेतु प्रशिक्षित लोगो को सूची मे रखते थे। काग्रेस ने ससदीय सचिव का वेतन 250 रु० महीने उन प्रान्तो म निश्चित किया जहाँ उसने मन्त्रिमडल बनाया।

मूल्याकन—इस तरह यह स्पष्ट है कि यदि प्रान्तीय स्वायत्तता बाह्य नियत्रण के मसले पर मजाक थी तो यह कायपालिका मशीनरी के आतरिक मसले म और मही थी। सिद्धात रूप मे ब्रिटिश ससद और राज्य सचिव प्रान्तो मे नियत्रण अधिकार से पूणतया मुक्त कर दिये गये थे, पर व्यवहार म 1937 मे राज्यसचिव लाड जटलड ने स्वीकार किया, "इस देश की ससद सीमित पर स्पष्ट रूप से परिभाषित दायरे म अपने अपने हाथ मे महत्वपूर्ण बातो पर नियत्रण रखती है—जिसे गवनरो का विशेष उत्तरदायित्व कहा जा सकता है। गवनर की विवेकाधीन शक्ति एव व्यक्तिगत निणय गवनर

बनाने के उसके अधिकार उसकी अथ सबधी शक्ति जिसके अतगत वह उन मदा का निणय करता था कि किन पर मत लिया जा सकता है और किन पर नही व उन्ह पारित करना अस्वीकार करना तथा कटौती समाप्त कर तत्सबध म कानून बनाना आदि सभी उत्तरदायी सरकार के योग्य प्रावधान नही थे। पर इनम सवस बेहूदी धारा 93 थी जिसके अतगत सविधान समाप्ति की घोषणा कर वह सपूण प्रशासकीय शक्ति अपने हाथ म ले लेता था। इन विवरणा क सदभ म यह कहना अतिशयाक्ति न होगी कि प्रातीय स्वायत्तता गवनर की स्वायत्तता थी जिसकी प्रतिष्ठा परपराओ स ढकी थी और प्रशासन पर उसका प्रभाव अकथनीय था।

गवनर के लिय निर्धारित अनुदेश प्रपत्त सोद्देश्य था। इस तरह के दस्तावज स्वतत्र उपनिवशो म विस्तार से प्रयोग मे लाये गय थे जिससे व्यवहार रूप म स्वायत्तता के दशन होत थे। पर स्वतत्र उपनिवेश के सबध म यह इसीलिय सभव हुआ क्योकि इसकी ससद द्वारा स्वीकृति आवश्यक नही थी। पर भारत के मामले म ससद ने यह सरकार को भी विश्वास मे नही लिया क्योकि इसस प्राता मे उत्तरदायी सरकार की स्थापना हो जाती। दस्तावेज मे सशोधन का अथ था ससद द्वारा निश्चित रूप से उसकी स्वीकृति।

प्रान्तीय विधायिका—*ऐक्ट ने प्रत्यक प्रात म एक विधायिका का प्राव*धान किया। असम, बगाल, बिहार, यू० पी०, बम्बई और मद्रास मे ब्रिटिश ताज जिसका प्रतिनिधित्व गवनर करता था तथा वहा दो सदन थे—लजिस्लेटिव कौसिल तथा लेजिस्लेटिव असेम्बली। अय प्राता मे गवनर के अतिरिक्त लेजिस्लेटिव असेम्बली नामक एक ही सदन होता था।

लेजिस्लेटिव कौंसिल अथवा द्वितीय सदन—द्वितीय सदन की रचना का भारतीया ने इसलिय विरोध किया कि यह पूण रूप से निहित स्वार्थी प्रतिक्रियावादी और रूढिवादी सदस्यो द्वारा नेतृत्व ग्रहण करेगा जो देश के प्रगतिवादी कानून को आगे बढने का अवसर नही प्रदान करेगा। इसके अतिरिक्त उनका तक था कि विधायिका द्वारा शीघ्र निणय के विरुद्ध आवश्यक सुरक्षात्मक कदम उठाय जा चुके थे जो गवनर अपन विवेकाधीन शक्ति एव व्यक्तिगत निणय के अतगत प्रयोग मे ला सकता था। इस तरह द्वितीय सदन की कोई आवश्यकता न थी। यह भी सरल न था कि इस सदन के लिय योग्य व वयोवृद्ध सदस्य सुलभ हो सके।

सभवत इन्ही कारणा से द्विसदनीय व्यवस्था को 1919 म माटग्यु एव चेम्सफोड ने अस्वीकार कर दिया था। पर 1935 के ऐक्ट न इन म कुछ और गुणा का अवलोकन किया और इन्ह कुछ प्राता म प्रतिस्थापित किया। इसके प क्ष म जो तक दिय गये थ, व थ इसम उन लोगा की सेवाय प्राप्त

की जा सकेंगी जो चुनाव लड़ना न पसद करते, जमीदारो व पूजीपतिया का प्रतिनिधित्व आवश्यक था, गवनर की विशेष शक्ति उतनी सुरक्षा नही प्रदान कर सकती थी जितना कि यह द्वितीय सदन और इसके अतिरिक्त इसके माध्यम से एक विशिष्ट और परिपक्व ज्ञान की प्राप्ति होगी जो अति उत्साही राष्ट्रीय प्रगति के लिये प्रतिभार होगा ।

उस समय ये तक भारतीया को नही भाते थे, पर आश्चयजनक रूप से द्विसदनीय परपरा स्वतत्र भारत के कुछ प्राता म आज भी चल रही है । ऐसा सभवत इसलिये ह क्याकि आज द्वितीय सदन के लिये और सुयोग्य लोग उपलब्ध है, कुलीना, पूजीपतिया आदि के अनुभव से लाभ उठाया ही जाना चाहिये, और द्वितीय सदन तब तक तो चलता ही रहना चाहिये जब तक अनुभव से लाभ की जगह हानि न होने लगे । और अब ये सदन एक प्रात स दूसरे प्रात मे समाप्त किय जा रहे है ।

रचना और अधिकार—विभिन्न प्रान्तो मे लेजिस्लेटिव कौसिला का आकार प्रकार भिन्न था । बगाल म जहा कौंसिल की सदस्यता 63 और 65 के बीच होनी थी वहा बम्बई मे इसे 29 और उनके बीच मद्रास म 54 और 56 के बीच, असम म 21 और 22 क बीच बिहार म 29 और 30 के बीच अथा यू० पी० म 58 और 60 के बीच होनी थी । ऐक्ट के अन्तगत कौसिल म कुछ सीटा पर गवनर लोगो को नामित करता था । उदाहरणाथ, बगाल मे गवनर 8 स 10 लोगा का नामित करता था । पर शेष सदस्या का चुनाव होता था । बगाल और बिहार की कौसिला म 2/5 सदस्यो को उनके लेजिस्लेटिव एसेम्बली से चुना जाता था जिसका आधार था एक हस्तान्तरणीय मत के आधार पर आनुपातिक प्रतिनिधित्व । कौसिल स्थायी सस्था थी जिसके 1/3 सदस्य प्रति तीसरे वष पदमुक्त हाते थे ।

लेजिस्लेटिव एसेम्बलियो की सख्या भी प्रान्तो म भिन्न थी । बगाल मे यह सदस्य सख्या 250 थी, बम्बई मे 175, मद्रास म 215, असम म 108, बिहार म 152, यू० पी० म 288 सन्ट्रल प्राविन्सेज एव बरार म 112 पजाब मे 175, सिंध और उडीसा म प्रत्यक मे 60 तथा उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त म 50 । एसम्बलिया म सरकारी गुट समाप्त कर दिये गये और उनकी सभी सीट अब सीधे चुनाव से भरी जाने लगी । इसका काल 5 वष का हुआ । पर गवनर इस इसके पूव भी समाप्त कर सकता था ।

1932 के रेम्जे मक्डोनाल्ड के बेहूदे कम्युनल अवार्ड की सस्तुतिया के आधार पर दोना सदना म साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली का प्रारभ किया गया । इसके अतगत भिन्न भिन्न 16 सम्प्रदाया व वर्गों को अलग-अलग प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया, अर्थात् (1) सामान्य सीटें जा मुख्यतया हिन्दुआ

के लिए थी, पर इसमें पारसी जैसी कुछ और जातियाँ सम्मिलित थीं जिन्हें अलग से प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त हुआ (2) सामान्य सीटें जो अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित थीं जिसका कि पूना पैक्ट में सदैव आ चुका है (कम्युनल अवार्ड में पूना पैक्ट योजना को ही परिवर्तन के तौर पर जोड़ा गया) (3) मुसलमान (4) सिख (पंजाब तथा उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त में), (5) यूरोपीय (6) भारतीय ईसाई (7) आंग्ल भारतीय (8) पिछड़े क्षेत्र एवं कबीले (9) महिलायें (सामान्य) (10) महिलायें (मुसलमान) (11) महिलायें (सिख) (12) महिलायें (भारतीय ईसाई) (13) महिलायें (आंग्ल भारतीय) (14) श्रमिक (15) जमींदार, (16) व्यापार एवं उद्योग एवं (17) विश्वविद्यालय। इस तरह एक हिन्दू केवल हिन्दू, मुसलमान केवल मुसलमान के लिए मत दे सकता था। और यह विभाजन प्रत्येक परिवार में कर दिया गया जहाँ पति केवल पुरुष को और पत्नी केवल महिलाओं को ही मत दे सकती थी।

लेजिस्लेटिव एसेम्बली में दोनों सदन के सदस्य अपने में से एक स्पीकर तथा एक डिप्टी स्पीकर का चुनाव करते थे। ये अध्यक्ष सदन की कार्यवाही का काम सम्भालते थे और किसी मसले पर बराबर मत आने पर अपना निर्णायक मत का प्रयोग करते थे। कोई भी व्यक्ति दोनों सदनों का सदस्य नहीं हो सकता था और न ही प्रान्त के एवं केन्द्र का तथा केन्द्र के सदन का भी। प्रत्येक सदस्य को भाषण की स्वतन्त्रता थी। वह प्रश्न आदि पूछ सकता था। सदस्य का वेतन व भत्ता विधायिका ही तय करती थी। मंत्री को किसी सदन को सम्बोधित करने का अधिकार था, पर वह मत नहीं दे सकता था जिस सदन का वह सदस्य था। उसी तरह से एडवोकेट जनरल किसी भी सदन में बैठ सकता था और कार्यवाही में भाग ले सकता था, पर उसे मत देने का अधिकार नहीं था। गवर्नर को यह देखना था कि सदन की बैठक [illegible] साल में अन्तर हो जाय।

मताधिकार एवं योग्यतायें—[illegible] में मताधिकार एवं योग्यताओं को परिभाषित [illegible] किया गया था। इनका निर्धारण [illegible] द्वारा [illegible] [illegible] में सामान्यतया [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] का विस्तार कर [illegible] थे। 1919 के [illegible] के मताधिकार के [illegible] का विस्तार [illegible] गया। [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] कुछ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] 10%, [illegible] [illegible] [illegible] मताधिकारियों की [illegible] 115000 से बढ़कर 6000000 कर [illegible] था। [illegible] मताधिकार [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible]

न्यायाधीश विश्वविद्यालया के सीनेटर सम्राट की सेना से पद निवृत्त व पेन्शनभोक्ता सैनिक तथा साम्पत्तिक योग्यता रखने वाले लोग व शिक्षा की योग्यता रखने वाले लोगा (मैटीकुलट) को मत देने तथा चुनाव लडने का अधिकार था। इसके अतिरिक्त व्यक्ति को 21 वष का होना चाहिए था, जहा मतदाता को मत देना हो वहा उसे कुछ काल तक रहा हाना चाहिये था जैसे बम्बइ मे 180 दिन तथा मद्रास मे 120 दिन, उसे ब्रिटिश प्रजा होना तथा एक राज्य की प्रजा होना चाहिये, था, उस मुस्लिम क्षेत्र मे मुसलमान सिख क्षेत्र मे सिख होना चाहिये था। विश्वविद्यालय क्षेत्र मे सीनेटर या 7 वष पुराने ग्रेजुएट ही मत दे सकते थे।

मताधिकार योग्यता मे प्राता प्राता मे अन्तर था। कौसिल के लिये यह योग्यता एसेम्बली की तुलना मे ऊँची थी पर मताधिकार मे अब सामान्य विस्तार के कारण जहा पहले 3% लोगो को ही यह अधिकार था अब यह सख्या बढकर 14% हो गई।

विधायी शक्तिया—प्रान्तीय विधायिका की शक्तिया को तीन भागो मे बाटा जा सकता है यथा विधायी, आर्थिक तथा कार्यपालिका सबधी। अपनी विधायी शक्तियो मे प्रातीय विधायिका प्रातीय व समवर्ती सूची के सब विषयो पर कानून बना सकती थी। प्रातीय सूची मे स्थानीय महत्व के विषय थे जसे स्थानीय स्वशासन एव जन स्वास्थ्य, जबकि समवर्ती सूची मे प्रातीय तथा राष्ट्रीय दोनो हिता के विषय थे जैसे बीमा, नौकरी की कमी तथा अपराध के निरोध हेतु कानून।

पर प्रातीय विधायिकाओ के कानून बनाने की शक्ति पर अकुश भी थे। उदाहरणार्थ, इसे ऐसा कानून बनान का अधिकार नही था जो ताज की सप्रभुता पर प्रभाव डालता हो, इसे ऐसे कानून भी बनाने का अधिकार नही था जो ब्रिटिश प्रजा के विरुद्ध भेदभाव पदा करे या ब्रिटिश व्यापार हितो को हानि पहुँचाय। समवर्ती सूची मे प्रातीय एव सघीय कानून के बीच सघष की स्थिति मे सघीय कानून ही सर्वोपरि होते थे चाहे वे प्रातीय कानून के बाद बने हा या पहले।

इसके अतिरिक्त विधायिका के ऐसे कानून, जो ससद के कानून पर प्रभाव डाल सकते थे, उनके लिये रचना से पूव गवनर जनरल स पूव अनुमति लिया जाना आवश्यक था जिसमे आते थे—गवनर जनरल द्वारा विवेकाधीन पारित ऐक्ट या अध्यादेश, गवनर जनरल की विवेकाधीन स्वतत्रता, यूरोपीय ब्रिटिश प्रजा के विरुद्ध आपराधिक मुकदमा। विवेकाधीन पारित किसी एक्ट या अध्यादेश के लिये गवनर जनरल स पूव अनुमति लेना जरूरी था। ऐसे ही पुलिस बल के लिये भी यह आवश्यक था।

विधान बनाने की प्रक्रिया वही थी जो ब्रिटिश ससद म थी । धन सबधी बिल को छोडकर कोई भी बिल किसी भी सदन म पहले प्रस्तुत किया जा सकता था । पर धन सबधी बिल केवल लेजिस्लेटिव एसम्बली म ही प्रस्तुत हो सकता था । एक सदन जब दूसरे सदन का बिल भेजता था उसस पूव उसके तीन पाठन होते थे और यदि दूसरा सदन उस उसी रूप म बिना किसी सशोधन के पारित कर देता या एस सशोधना सहित पारित कर देता जो पहले सदन को मान्य होता तो एस बिल को गवनर क समक्ष स्वीकृति हेतु प्रस्तुत कर दिया जाता । दोना सदना म मतभेद एक स्थान पर बठकर निबटाये जा सकते थे । ऐसी बैठकें गवनर अपनी विवेकाधीन शक्ति के अतगत बुलाता था ।

विधायिका स बिल पारित हो जाने और गवनर के पास उस स्वीकृति हेतु प्रेषण के बाद विधायिका को पुन अपनी शक्ति म सीमाओ का अनुभव करना पडता था । (1) यदि गवनर ऐस बिल को स्वीकृति प्रदान कर देता तो वह कानून हो जाता । पर यदि उस पर वह अपनी स्वीकृति रोक देता तो वह बिल समाप्त हो जाता और विधायिका का सारा परिश्रम बेकार जाता । (2) गवनर बिल को अपनी सस्तुतिया सहित विधायिका को वापस कर सकता था और उनमे सुधार करन के बाद उन्ह पुन माग सकता था । (3) वह बिल को गवनर जनरल के विचाराथ सुरक्षित रख सकता था और गवनर जनरल उस स्वीकार कर सकता था या अस्वीकार या इसे विधायिका के पास वापस कर सकता था या इस ब्रिटिश ताज के लिये आरक्षित रख सकता था । (4) यदि ब्रिटिश ताज के लिये आरक्षित विचाराथ बिल 12 माह के अदर (गवनर जनरल द्वारा प्रस्तुत किये जान के बाद) सबके समक्ष अधिसूचित हो जाता तो यह ऐक्ट बन जाता अन्यथा समाप्त हो जाता । (5) गवनर या गवनर जनरल की स्वीकृति से पारित ऐक्टो को भी ब्रिटिश ताज इसकी स्वीकृति के 12 महीने के भीतर अस्वीकार कर सकता था ।

आर्थिक शक्तियां—वित्त वष प्रारम्भ होने के पूव गवनर सदन या सदनो के पटल पर वार्षिक अथ विवरण प्रस्तुत करने को कह सकता था । इस विव रण मे अलग स यह बताया जाना आवश्यक था कि प्रात से प्राप्त राजस्व से उनके व्यय कसे पूर पडेंग तथा उन व्यया की पूर्ति कैसे होगी जिसके लिये कोई वसूली नही हुई है । गवनर के उत्तरदायित्व के वहन पर होने वाले व्यय का अलग से दिखाया जाता था ।

प्रातीय राजस्व के खात से हान वाले व्यय अधोलिखित थ (1) गवनर का वेतन भत्ता तथा उसके कार्यालय पर होन वाला व्यय (2) कज आदि लेने के लिए किये जाने वाले व्यय, (3) मत्रियो और एडवोकेट जनरल का वतन

व भत्ता, (4) उच्च न्यायालय के न्यायाधीशो का वेतन व भत्ता, (5) बहिष्कृत क्षेत्रो सबधी व्यय, (6) न्यायालय के फैसले के आधार पर धन अदायगी, (7) और अन्य कोई व्यय जो एक्ट के अतर्गत देय हो। प्रथम व्यय को छोडकर अन्य व्यया के सबध मे विधायिका मे विचार हो सकता था, पर इस पर मत नही लिया जा सकता था। दूसरा व्यय विधान सभा के समक्ष अनुदानो की माग के रूप मे रखा जाता था और इस पर मतदान होता था। विधान सभा इसे स्वीकार कर सकती थी या इसमे कटौती कर सकती थी। पर वह न तो इसे परिवर्तित कर सकती थी और न बढा सकती थी।

विधायिका की आर्थिक शक्ति पर कुछ गभीर सीमायें भी थी (1) व्यय का प्रस्ताव कार्यपालिका के माध्यम से ही आ सकता था, व्यक्तिगत रूप से इसे कोई सदस्य नही ला सकता था, (2) प्रान्तीय राजस्व के रूप म जो धन लिया जाता उस पर विधायिका को मत देने का अधिकार नही था। गवर्नर के वेतन और भत्ते पर विचार तक नही हो सकता था। विधायिका के मताधिकार के अन्तर्गत मन्त्रियो के वेतन व भत्ते को न रखना ससदीय नही था, (3) जिन व्यया पर मत लिया जाता था, गवर्नर उनके अस्वीकृत मद को बहाल कर सकता था और विधायिका द्वारा आरोपित कटौती को समाप्त कर सकता था, और (4) इसके अतिरिक्त गवर्नर की सस्तुति के बिना विधायिका निम्न विषयो पर किसी बिल पर विचार नही कर सकती थी—(अ) उधार लिये गये रुपये को नियमित करना, (ब) कर लगाना या बढाना और (स) व्यय म वृद्धि करके इसे प्रान्तीय राजस्व से प्राप्त करना।

जब विभिन्न मागो पर विधायिका अपना मत दे चुकती तो गवर्नर द्वारा हस्ताक्षरित एक अनुसूचित पत्र निम्न विवरणो के साथ आ जाता। (1) विधायिका द्वारा स्वीकृत अनुदान। (2) अस्वीकृत और कम किये गये तथापि अपने उत्तरदायित्वा के निर्वाह के लिये धनराशि को पूरा करने का आदेश। (3) प्रान्तीय राजस्व पर लिया गया व्यय। इसके बाद यह अनुसूचित पत्र विधान सभा के समक्ष प्रस्तुत किया जाता, पर इस पर विचार नही किया जा सकता था। पूरे वर्ष के लिये व्यय इसी अनुसूचित पत्र के अनुसार करना पडता था। यदि उसमे वृद्धि की आवश्यकता पडती तो इसे पूरक मागो द्वारा पूरा किया जाता।

कार्यपालिका शक्ति—प्रान्तीय मत्री वस्तुत विधायिका द्वारा नियुक्त किये जाते और हटाये जाते थे। ऐसा इसलिए था क्योकि वह अविश्वास का मत प्रस्तुत कर सकती या मत्रिमडल द्वारा प्रस्तुत कानूनो को रोक सकती और इस तरह इसे हटा सकती थी। इसके अतिरिक्त दोनो सदन प्रश्न और पूरक प्रश्न कर सकते थे, निश्चित विधि से कार्य करने का प्रस्ताव पारित कर

सकते थे, कार्य स्थगन का प्रस्ताव रखकर महत्वपूर्ण जन मसलों की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट कर सकते थे और सुविधा से कार्य करने के लिये नियम बना सकते थे। इन तमाम विधियों से वे मंत्रियों का जीवन दूभर कर सकते थे।

पर उनकी शक्ति की सीमायें भी थी। गवर्नर प्रांत में शांति और व्यवस्था को लेकर अपने उत्तरदायित्वों के निर्वाह के नाम पर वह अपनी विवेकाधीन शक्ति के द्वारा किसी बात पर विचार करना रोक सकता था। विधायिका को यह अधिकार नहीं था कि वह उच्च न्यायालय या संघीय न्यायालय के किसी न्यायाधीश के कार्य पर विचार करे। विवेकाधिकार के आधार पर वह आर्थिक कार्यों का पूर्ण करने की कार्यवाही की व्यवस्था कर सकता था और विदेशी राज्य या राजा से संबंध के विषय में फैसला कर सकता था। इस अधिकार के अंतर्गत वह किसी भारतीय राजा या उसके परिवार के किसी सदस्य तथा किसी कबीले या बहिष्कृत क्षेत्र के विषय में भी निर्णय ले सकता था पर व्यय के आकलन के संबंध में उसका यह मत नहीं था। गवर्नर इन सभी विवेकाधिकारों का प्रयोग प्रमुख अधिकारियों की राय से करता था।

एक मूल्यांकन—इस तरह 1935 के एक्ट के अंतर्गत बनाई गई प्रांतीय विधायिका 1919 के एक्ट से बेहतर थी। सदनों का आकार भी विस्तृत कर दिया गया, प्रत्यक्ष चुनाव प्रारंभ कर दिये गये एवं नामित गैर सरकारी सदस्यों की परंपरा विधान सभा से समाप्त कर दी गई। वैसे परिषद में इस तरह के कुछ सदस्य बनाये रखे गये। मताधिकार की योग्यता घटा दी गई और इनके सदस्यों का कार्यपालिका के नियंत्रण व आलोचना का अधिक अधिकार हुआ। मंत्रिमंडल को सदन के अविश्वास मत द्वारा हटाया भी जा सकता था।

पर अभी और भी बहुत कुछ होना था। ब्रिटिश सम्राट को विधायिका का अभिन्न अंग बनाये रखना बेतुकी बात थी। प्रतिक्रियावाद का गढ़ द्वितीय सदन छः प्रांतों पर उनकी इच्छा के विरुद्ध आरोपित कर दिया गया। मंत्रियों को मांग का अधिकार था पर विधान सभा को समाप्त करने का अधिकार नहीं दिया गया। साम्प्रदायिक एवं वर्गीय प्रतिनिधित्व बढ़ा दिया गया और कुछ सम्प्रदायों को आवश्यकता से कम प्रतिनिधित्व दिया गया। मद्रास और यू० पी० में क्रमशः अपने 7 1% और 14 8% जनसंख्या के बावजूद मुसलमानों को 13% और 27% प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। अपने 1 3% से भी कम जनसंख्या के बावजूद युरोपीयों को प्रांतीय विधायिका में 3% सीटें दी गई। मताधिकार की योग्यता घटने के बावजूद अब भी इतनी

ऊची थी कि वयस्को मे से 73% लोगा को मताधिकार नही प्राप्त था। कुछ मसला पर विधायिका के हाथ से शक्ति का अपहरण तथा प्रातीय विधायिका म कुछ बिला को प्रस्तुत करने से पूव गवनर जनरल एव गवनर से अनुमति लेने की आवश्यकता तथा विधायिका पर अन्य अनेक विधायी आर्थिक और कायकारिणी सबधी सीमायें प्रातीय स्वायत्तता को झुठला देत थे। प्रातीय व्यय के अधिकतर भागो पर मत नही लिया जा सकता था और जिस व्यय के मद पर मतदान की आवश्यकता थी वह भी विधायिका के अधिकार की खिल्ली उडाता था। व्यय मे किसी भी कटौती या अस्वीकृति को गवनर बहाल कर सकता था। यह कम दुर्भाग्यपूण नही था कि पुलिस विभाग और उच्च सेवाओ को विधायिका की शक्ति परिधि के बाहर करके उस गवनर के हाथो सौप दिया गया था। पर सबसे विचित्र बात यह थी कि गवनर को एक शक्ति के अतगत विधायिका की काय प्रगति रोक देने का अधिकार प्राप्त था।

इस तरह से चाह बाह्य नियत्रण की दृष्टि से देखा जाय अथवा आतरिक उत्तरदायित्व की दृष्टि से प्रातीय स्वायत्तता मे पूणता नही थी। बस महत्व पूण प्रगति की जा चुकी थी पर पूण प्रातीय स्वायत्तता अभी कोसो दूर थी।

दमन की दुहरी नीति

जसा कि निम्न विवरणा से स्पष्ट होगा विलिंग्डन न दमन एव राज नतिक-आर्थिक सुधारा की दुहरी नीति अपनाई।

1931 का प्रेस ऐक्ट

जैसा हम देख आय हैं, गाधी जी ने द्वितीय असहयोग आदोलन 1930 मे प्रारभ किया। यह वय भारतीय राजनैतिक जीवन म अत्यधिक उत्तेजना और साहसपूण घटनाओ को लेकर उपस्थित हुआ। भारतीय प्रेस म इसन कम महत्वपूण भूमिका नही अदा की। इसीलिए इनकी स्वतत्रता पर अकुश लगान के लिए 1930 का प्रेस एक्ट पारित किया गया।

इस ऐक्ट म यह नियम बनाये गये कि (1) प्रेस और प्रकाशन के धारक का सरकार के पास सुरक्षा धनराशि जमा करने को कहा गया, (2) मजिस्ट्रेट के आदेशानुसार 1,000 रुपये से 10,000 रुपय के बीच सुरक्षा धनराशि जमा करने पर ही छापेखाने को नवीन घोषणा पत्र प्रदान किया जाना था (3) द्रोहराजपूण छपाई पर उपरोक्त सुरक्षा धनराशि जब्त की जा सकती थी (4) प्रातीय सरकार भी कुछ प्रकाशना का जब्त कर सकती थी और सीमा शुल्क अधिकारियो का ऐस कागज पत्रो को रोकन का अधिकार

दे सकती थी। पर ऐसी जब्ती के विरुद्ध उच्च न्यायालय में प्रार्थनापत्र देकर निर्णय लिया जा सकता था, (5) जो प्रेस या प्रकाशक बिना सुरक्षा धनराशि जमा किये अखबार निकालते या प्रेस रखते थे उन्हें दंडित किये जाने की व्यवस्था भी इस ऐक्ट ने की।

प्रांतीय सरकारों को अखबार एवं प्रेसों के संबंध में जो अधिकार इस ऐक्ट के अंतर्गत प्राप्त हुये वे बहुत विस्तृत थे। इससे बहुत से छापेखाना और प्रकाशकों को कठिनाइयां हुई। कलकत्ता के 'लिबर्टी' से 6000 रुपये सुरक्षा धनराशि जमा करने को कहा गया जिसमें से अधिकतर जब्त कर लिया गया। इसी तरह बम्बई के 'बाम्बे क्रानिकिल' के प्रकाशक को 3000 रुपये जमा करने को कहा गया जिसका कारण यह बताया गया कि उस अखबार में मि० हार्नीमैन ने एक एतराज भरा लेख लिखा था।

1932 का 'फारेन रिलेशन्स ऐक्ट'

1932 में एक और प्रेस ऐक्ट पारित हुआ जिसमें विलिंग्डन सरकार ने 'फारेन रिलेशन्स ऐक्ट' पारित किया। इसके अंतर्गत ऐसे प्रकाशन को दंडित करने की व्यवस्था थी जो ब्रिटिश भारतीय सरकार और अन्य विदेशी मित्र सरकारों के बीच संबंध बिगाड़ने में सहयोग करती थी। इस ऐक्ट की इसलिए आवश्यकता अनुभव की गई क्योंकि बहुत से अखबार पड़ौसी देशों के प्रशासकीय मसलों पर हस्तक्षेपपूर्ण लेख लिखते थे।

1934 का 'इण्डियन स्टेट्स प्रोटेक्शन ऐक्ट'

इस ऐक्ट को इसलिये पारित किया गया जिससे कि अखबार भारतीय राज्यों के प्रशासन की आलोचना न कर सकें। इसके अतिरिक्त इसका उद्देश्य इन राज्यों में कार्य कर रहे अर्द्धसैनिक संगठनों का वह प्रयास रोकना था जो वहां अव्यवस्था पैदा कर सकता था। स्पष्टतः इस ऐक्ट का उद्देश्य इन राज्यों के लोगों को भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की धारा में सम्मिलित होने से रोकना था।

सिंध—राजनैतिक आंदोलनों को दबाने के लिए कूटनीति और कठोरता का प्रयोग करते हुए भी विलिंग्डन ने संवैधानिक सुधारों की अनदेखी नहीं की। बम्बई प्रेसीडेंसी से अलग होने के लिये सिंध की मांग जोरों पर थी। मुसलमानों ने इस मांग को गोलमेज सम्मेलन में भी उठाया था और वे चाहते थे कि सिंध एक पूर्ण प्रांत के रूप में स्वीकार किया जाय। इस कार्य को करने के लिए एक समिति गठित की गई जिसे सिंध गवर्नर, विधायिका व सचिवालय सहित एक स्वतंत्र प्रांत बनाने की योजना तय करनी था।

उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत—पर उसने उत्तर पश्चिम सीमा के लिए अधिक सुधार किया। यहां पर 1930 मे लाल कुर्ती वालों के आंदोलन ने तूफान खड़ा कर दिया था। 1919 के सुधारों का लाभ देने के लिए उन्हें आश्वासन तो दिया गया था, पर उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया था। विलिंग्डन ने इस ओर ध्यान दिया। वैसे तो प्रांत मे पूर्ण शांति स्थापित नहीं हो पाई थी पर मतदाता सूचियां इत्यादि तैयार की गईं, चुनाव सम्पन्न कराये गये और द्वैधशासन का लाभ इन्हें प्रदान किया गया। पर यह सब कार्य इन संदेहों के बीच हुआ कि वहां के लोग उत्तरदायित्व की परंपरा से दूर हैं, वर्तमान सभ्यता उनसे कोसों दूर है और शक्ति की अधीनता के वे आदी नहीं हैं। वातावरण मे पूर्ण परिवर्तन आ गया और प्रांत मे सामान्य स्थिति उत्पन्न हो गई। पर इसे अत्यधिक खतरे का एक चिह्न माना गया।

कश्मीर समस्या—विलिंग्डन सरकार को कश्मीर मे एक लंबे अरसे के विद्रोह का सामना करना पड़ा। यहां पर अनाजों का भाव गिर गया था जिसके कारण मुस्लिम किसानों ने विद्रोह कर दिया। चूंकि अधिकतर जमींदार, व्यापारी और सौदागर हिन्दू थे, इस कारण इन गरीब मुसलमानों की इस आर्थिक कठिनाई ने एक धार्मिक स्वरूप ग्रहण कर लिया था। एकाएक 'जिहाद' घोषित कर दिया गया जिसके फलस्वरूप कश्मीर महाराजा की उदारता और विशाल हृदयता भी कुछ खास प्रभाव न डाल सकी। पंजाब और उत्तर पश्चिम भारत से मुस्लिम जत्थे प्रकट होने लगे। "आगजनी और हत्या का नंगा नृत्य होने लगा, इस हिन्दू राज्य मे हो रहे मुस्लिम प्रतिक्रियावादी आंदोलन से पूर्ण भारत के मुसलमान हमदर्दी जताने लगे। अत्यधिक उग्र मुस्लिम समाचार पत्रों ने मोटी मोटी सुर्खियों मे हत्या और आगजनी के विवरण प्रसन्नतापूर्ण मुद्रा मे छापे और इस हत्याकांड की सफलता का बखान किया।"[1] महाराजा के निवेदन पर विलिंग्डन ने स्थिति पर नियंत्रण हेतु एक शक्तिशाली सैनिक टुकड़ी भेजी। इस तरह की अफवाह थी कि सरकार महाराजा को पद से हटाना चाहती है। स्पष्टतया इन परिस्थितियों मे मुसलमानों के जीवन की हानि देश की मुस्लिम राजनीति पर भी प्रभाव डाल सकती थी, पर दूसरी ओर यदि सरकार शांति और व्यवस्था स्थापित न करती तो हिन्दुओं की संदेहशीलता मे वृद्धि हो जाती। कट्टर मुस्लिम जत्थों से सीधे संघर्ष से बचा जाना था और ब्रिटिश सैनिकों को इस आदेश के अंतर्गत कार्य करना था कि वे जहां तक संभव हो एक नैतिक शक्ति के रूप में कार्य करें। छः महीने में शांति की स्थापना हो गई और इस तरह मुस्लिम कठिनाइयां तथा हिन्दुओं का भय जाता रहा। महाराजा को एक विस्तृत मताधिकार के आधार

1 ट्रेंच विक्टर, पूर्वोद्धृत पृ 222।

पर चुनी गइ विधान परिषद का उदघाटन करने को तयार किया गया तथा उसस विस्तृत रूप से राजक्षमा करने को भी कहा गया।

आर्थिक सुधार—विलिंग्डन न आर्थिक सुधारो की ओर भी ध्यान दिया। भारत के किसाना की स्थिति मे सुधार के लिय बहुत से व्यावहारिक कदम उठाय गय। विदेश व्यापार के विकास के लिए विश्व की आवश्यकतानुसार खेती की फसला का प्रोत्साहित किया गया। आटावा म होने वाले 'इम्पीरियल इकोनामिक काफ्रेन्स म एक भारतीय प्रतिनिधिमडल भेजा गया जिसस भारतीय कृषि उत्पादन के लिए उचित शर्तों पर व्यापार की बात तय हो सके। सैनिक बजट मे विस्तृत कटौती की गई और विलिंग्डन के अन्य प्रयासो से व्यापार और उद्योग मे काफी सुधार हुआ। विलिंग्डन ने इसीलिए गव स कहा, 'आयात म कटौती इस बात का चिह्न है कि भारत अब अधिक अपन ही औद्योगिक उत्पादन पर निभर कर रहा है। इसके कारण ही देय सतुलन मे भी वद्धि हा गई है जिसस भारत की आतरिक स्थिति शक्तिशाली हो गई है हमारी स्थिति यह हो गई कि अब हमारा देश किसी और की तुलना म खडा हो गया है।"

वदेशिक सबध—विलिंग्डन का बर्मा और चीन के अनिर्धारित सीमा की समस्या का भी एकाएक सामना करना पडा जहा अद्धप्रशासित कबीले शाति के लिए समस्या बन जाते और इस तरह अतर्राष्टीय पेचीदगी पैदा कर देते थे। वायसराय न चीन मे ब्रिटिश प्रतिनिधि की सेवाओ की सहायता ली। चीन से बातचीत प्रारभ की गई और कुछ सिद्धात बनाये गये जिनके आधार पर अतर्राष्टीय सीमायें निर्धारित की गइ। इसके परिणामस्वरूप बर्मा और चीन के बीच एक पुराना भेदभाव समाप्त हो गया।

चीनी अधिकार म काशगर म कुछ विद्रोह हुये। एक अति गभीर विद्रोह म टोगन विद्राहिया ने ब्रिटिश कौसिल के ऊपर आक्रमण कर दिया। उस नगर मे स्थित भारतीय व्यापारिया को लूट लिया गया जिसके कारण उनम से बहुता का भारत म शरण लने के लिय भागना पडा। विलिंग्डन सरकार ने तुरत हस्तक्षेप किया। चीनी सरकार ने इस बात के लिए माफी मागी कि उसके कारण कमनेट की तटस्थता का उल्लघन हुआ है। चीनी तुर्किस्तान म भारतीय हिता की रक्षा के लिये कदम उठाये गय और इस तरह एक अतर्राष्ट्रीय पेचीदगी स बचा गया।

1933 म तिब्बत के दलाई लामा की मत्यु हो गई। उसकी मत्यु के कारण प्रभुत्व प्राप्ति हतु अतराष्ट्रीय स्पद्धा की सभावनायें बढ गइ। दलाई लामा क पुनजन्म हान तक एजेन्ट की नियुक्ति से ब्रिटिश मत्री सबध वहा वग ही बन रह जग कि दलाइ लामा के वात म थ। इस तरह ब्रिटिशो न

विरुद्ध तिब्बत पर विदेशी प्रभाव टल गया ।

भारत सरकार और जापान के व्यापार म इसी बीच कुछ कठिनाइया आइ पर इन पर 1905 के आग्ल जापानी कामर्सियल क वे शन द्वारा नियत्रण कर लिया गया । ऐसा इसलिय हुआ कि जापानी यन का अवमूल्यन हो गया जिसके फलस्वरूप भारत म सूती माल का ढेर लग गया । इनकी कीमत इतनी घट गई कि उससे कम कीमत पर भारत म भी वह सामग्री मिलनी कठिन थी । प्रचलित कर भी भारतीय हितो की रक्षा नही कर सके जिसके फलस्वरूप सरकार न करो म कुछ परिवतन करके दढता से आग्ल जापानी कन्वशन की भत्सना की। जापान से नय सिर से बातचीत प्रारभ हुई जिसक फलस्वरूप एक अय कन्वेशन किया गया और दोनो दलो के बीच अप्रल 1934 म एक प्रोटोकल स्थापित हुआ । इसके परिणामस्वरूप भारत और जापान के बीच जो मतभद पैदा हो गया था और जो बहुत गभीर था समाप्त हो गया । भारतीय टक्सटाइल हितो की रक्षा हुइ और जापान म कपास क स्थायी बाजारो की स्थापना हुई।

सीमा समस्यायें—उत्तर पश्चिम सीमा प्रातो म भी कुछ विद्रोह हुय । 1933 मे अपन अद्ध स्वतत्र राज्य स मोहमदो न एकाएक हलिनजाई पर आक्रमण कर दिया जहा के लोग ब्रिटिशो के प्रति स्वामिभक्त थे । सभावना होन लगी कि यह विद्रोह पूरी सीमा मे बढ जायगा । सरकार ने शीघ्र कदम उठाय और सेना भेजी जिसन विद्रोही तत्वो को तितर-बितर कर दिया ।

पर मोहमद क्षेत्र म प्रारभ होने वाला विद्रोह और उत्तर पश्चिम म बाजौर म होन वाले विद्रोह की एक भूमिका मात्र थी । यहा पर बातें उतनी सीधी साधी न थीं क्योकि यहा के गावो म पहुचना सरल न था और इस तरह यहा कायवाही करना भी कठिन था । पूरी बात पर विचार क बाद कुछ एग ध्यक्तियो को नोटिसें जारी की गइ जिनक पास शरण पान क लिय लोग गडरा रहे थ । उनसे विद्रोहियो को वापस करन को कहा गया । इस काय म सहा यता करन वालो को इनाम दन की भी घोषणा की गई । पर जब इसका कोई प्रभाव नही हुआ तो हवाई जहाज स कायवाही क आदश दिय गय । इग्लड म इस कायवाही की बडी आलोचना हुई कि वायुनाहा पर हवाई हमल किय गय और तमाम धन व जीवन की हानि की गई । लाड विलिग्डन न इसक उत्तर म कहा और अपन आलोचको को आश्वस्त किया कि इन आक्रमण म क्वल एक गाव पर आक्रमण किया गया है और बम भी कम गिराय जान क पूव आक्रमण आगाह करन की सूचनायें प्रसारित कर दी गई थी और लोगो न अपन घरो को छोड दिया था । इस तरह इन आक्रमण का प्रभाव आर्थिक अधिक था । जो भी हो सरकार की इस गभीर कायवाही म उस क्षेत्र म पुन शांति स्थापित हो गई ।

विलिंग्डन 1936 में भारत सेवा से पदमुक्त हो गया। इंग्लैण्ड पहुँचते ही उसे मार्क्विस का पद प्रदान कर दिया गया। 1941 में उसने दक्षिणी अमेरिका में एक व्यापार प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व किया और 12 अगस्त 1945 में अपनी मृत्यु से पूर्व कई महत्वपूर्ण पद ग्रहण किये। 'उसके उत्तम स्वास्थ्य, सदेच्छा एवं सुन्दर स्वभाव ने उसे जीवन-भर प्रसन्नता प्रदान की। वह जीवन के अंतिम क्षणों तक कार्य व्यस्त रहा।'[1]

1 भरत विरराज, पूर्वोद्धृत पृ 144।

6
मार्क्विस लिनलिथगो
(1936-1943)

प्रान्तीय स्वायत्तता की कार्यवाही

विक्टर अलेक्जान्डर जान होप का जन्म 24 सितंबर 1887 को हुआ। वह लिनलिथगो के प्रथम मार्क्विस और होपटाउन के सप्तम अर्ल का सबसे बडा पुत्र था। उसकी शिक्षा ईटन मे हुई और 1908 म वह अपने पिता की उपाधियो का उत्तराधिकारी हुआ। 1911 मे उसने सप्तम बरो सर फ्रेडरिक मिल्नर की पुत्री डोरीन माड स विवाह किया। वह 1922 मे एडमिरैल्टी का सिविल लाड हो गया। 1924 मे वह कन्जर्वेटिव दल का डिप्टी चेयरमैन हो गया तथा 1926 मे वह भारत मे कृषि के रॉयल कमीशन का चेयरमन हो गया। उसने इस कार्यालय मे 1928 तक काय किया और इसी समय उसे जी० ई० सी० आई० ई० बना दिया गया। उसे थिसिल के नाइट की उपाधि भी प्रदान की गई। जब 1951 मे ससद के दोनो सदनो की सयुक्त समिति गठित की गई, जिसका उद्देश्य 1935 के भारतीय अधिनियम का पथ प्रशस्त करना था तो लिनलिथगो को इसका चेयरमन बनाया गया। यह एक महत्वपूण पद था, और जब 1936 मे विलिंग्डन पदमुक्त हुआ तो उसे ही स्वाभाविक उत्तराधिकारी माना गया।

18 अप्रैल 1936 को लिनलिथगो न अपने पद ग्रहण की शपथ ली और उसके बाद उसने भारत के लोगो के समक्ष अपना भाषण प्रसारित किया। प्रसारित भाषण मे उसने कहा 'आप लोग अपने घरो म अपन प्रियजनो सहित मेरी बात सुन रहे होगे। मरी यह इच्छा है कि मैं आपको यह बताऊँ कि मैंने सम्राट के प्रति स्वामिभक्त बने रहने का वादा किया है और साथ ही भारत की सेवा करने का भी। मैं इस बात के लिय सचेत था कि मैं मात्र अपने लिये ही नही बल्कि आपकी ओर से भी बोल रहा हूँ। मरा विश्वास है कि इस पुनीत अवसर पर हमारे साथ आप सभी अपनी मातृभूमि तथा साथियो की सेवा की शपथ लेंगे।" भारतीय बच्चो को सबोधित करत हुये उसने कहा, "बच्चो! मैं तुमसे सम्राट के प्रतिनिधि वायसरॉय के रूप मे बोल

रहा हूँ, और एक मित्र की हैसियत से भी। यह याद रखा कि जब तुम बडे होगे तो तुम्हारे साथ ही देश की प्रतिष्ठा जुडी रहेगी। ईश्वर न मुझ पाच बच्चा का पिता बनाकर बडी कृपा की है। पर मैं अपने बच्चा म स किसी एक को सबस अधिक प्यार नही करता।'[1] भाषण का प्रसारण अग्रजी म किया गया पर उसी के परामर्श से इस हिन्दी म बार बार प्रसारित किया गया। वायसराय के इस कायवाही की जनता न बडी प्रशसा की।

लाड लिनलिथगो के काल ही मे 1935 के ऐक्ट को काय रूप म बदला गया।

चूकि भारतीय राजाओ न सघ मे सम्मिलित होन स इन्कार कर दिया था। इस कारण सविधान के सघीय भाग पर कायवाही नही हो पाई। एक्ट के तीसरे भाग जिसमे प्रातीय स्वायत्तता का विवरण था पर कामयाही की गई और प्रातीय स्वायत्तता का शुभारभ 1 अप्रल 1937 को किया गया। ऐक्ट बनकर तयार होने तथा प्रा तीय स्वायत्तता के प्रारभ हाने के मध्यकाल के बीच चुनाव सूचिया बनाई गई क्षत्रा की सीमाय निर्धारित की गई और चुनाव कराये गये।

जिन दलो ने चुनाव म भाग लिया उनम काग्रस भी थी पर काग्रेस न ऐसा सविधान की भावना को आदर दन के लिय नही किया बल्कि उस तोडन के लिय किया। पर लीग ने प्रा तीय याजना का स्वाकार किया और 'यह उसी के योग्य था ही'। वैसे उसन एक्ट के सघीय भाग को स्वीकार नही किया। उदारवादी सविधान की कुछ धाराओ स असतुष्ट तो थे, पर इसकी परीक्षा करन का निश्चय किया। मद्रास की जस्टिस पार्टी और अन्य ने भी यही रास्ता अपनाया और इस तरह 1935 के एक्ट के अतगत होन वाले चुनाव अति रुचिकर हो गय।

चुनाव परिणाम भी कम रुचिकर नही थ। काग्रस ने 1161 सीटो पर चुनाव लडा और 711 पर विजय प्राप्त की और 11 प्राता मे स 5 म पूण बहुमत प्राप्त कर लिया। जहा बहुमत मिला वे प्रात थ—मद्रास, बम्बई सी० पी०, यू० पी० और बिहार। तीन प्राता म यह दल सबसे बडे दल के रूप म चुनकर आया। दूसरा ओर मुस्लिम लीग ने 482 की अपनी पूरे भारत की सुरक्षित सीटो मे स केवल 51 सीटें जीतन मे सफलता प्राप्त की। इस पूरे मुसलमाना म स 4 8% मत मिले जिससे स्पष्ट था कि यह उतना शक्ति शाली अब नही था जितना 2 वष पूव। काग्रेसी मुसलमान 26 सीटो पर जीत जबकि बगाल मे स्वतत्र, मुस्लिम लीग और प्रजा पार्टी का क्रमश 46 40 और 35 सीट प्राप्त हुई। पजाब म 175 सीटो म से 106 सीट हिन्दू

1 ग्लैडविन जॉन द वाइसराय एट व लदन, 1971 प 22 23।

मुसलमान और सिखा को मिली जुली युनियनिस्ट दल को प्राप्त हुई तथा अन्य मुस्लिम सीटें अन्य बिखरे हुये समूहो का प्राप्त हुइ। उदारवादी हार गये और ऐसे ही मद्रास की जस्टिस पार्टी भी जबकि 1922 से इसका विधायिका पर नियत्रण था।

काग्रेस का चुनाव लडने का उद्देश्य सविधान को तोडना था। पर एक बार इसन चुनावा म इतनी जबरदस्त सफलता प्राप्त की ता पुरानी योजना पर फिर से विचार होन लगा। डा० सी० राजगोपालाचारी, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद और सरदार पटल पद पर अधिकार करन की नीति पर जार देने लगे। पर जवाहरलाल जसे कुछ महत्वपूण नेताओ न इस विचार का विरोध किया। पर अतत गाधी ने एक बीच का फामूला निकाला जिसमे यह कहा गया कि काग्रेस मत्रिमडल का गठन वहा करेगी जहा बहुमत म है। पर यह तभी होगा जब गवनर जनरल इस बात का आश्वासन दगा कि प्रान्तो के गवनर अपने विशिष्ट अधिकारो का प्रयोग नही करेग और दनिक प्रशासन मे वे मत्रिया के परामश पर काय करेंगे।

लाड लिनलिथगो के समक्ष काग्रेस की उपरोक्त बात रखी गई पर उसने इस तरह का काई आश्वासन देने से इन्कार कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि काग्रेस ने अधिकार प्राप्त करने से इकार कर दिया। इस पर गवनर न द्वितीय बड़े दल के नेताआ को सरकार बनाने के लिये आमत्रित किया। इस तरह से अतरिम गर काग्रेसी सरकारें बनाई गइ, पर चूकि उनका विधायका पर पूण नियत्रण नही था, इस कारण वे सही सरकारें नही चला सके। इसी बीच गवनर जनरल से बातचीत चलती रही जिसके फलस्वरूप यह घोषणा की गई कि वसे तो कोइ वधानिक आश्वासन नही दिया जा सकता पर इसम सदेह नही कि इस ऐक्ट की भावना के अतगत यह गवनरो के लिये उचित न होगा कि वह मत्रिया की कायवाहियो मे हस्तक्षप करे जिस सबध मे विधान उस पूण नियत्रण शक्ति प्रदान करता था और जिस क्षत्र म गवनर को हस्तक्षेप करने का काई अधिकार नही दिया गया था।'[1] स्पष्ट था कि यह विवरण स्पष्ट रूप स काग्रेस की माग की पूर्ति नही करता था पर गाधीजी न इसम सुलहभाव का तिनका खोज लिया। अतरिम सरकारो ने स्तीफा द दिया और काग्रेस ने अक्टूबर 1937 मे छ प्रातो मे सरकारें बनाली जिसका उद्देश्य यह था कि "एक ओर तो नय ऐक्ट से लडा जाय और दूसरी ओर रचनात्मक योजना मे बाधा डाली जाय।"[2] दूसरे वष काग्रेस के नतृत्व मे

1 मार्क्विस आफ लिनलियगो स्पीचेज एण्ड डाकुमेन्टस प 80 81।

2 देखें सीतारमैय्या पूर्वोल्लिखित, प 51-71।

आसाम म मिला जुला मन्त्रिमडल बना और इसी बीच उत्तर पश्चिम सीमा क्षेत्र म लीग मन्त्रिमडल पराजित हो गया जिसके फलस्वरूप वहाँ भी काग्रेस मन्त्रिमडल ने शपथ ग्रहण की। बगाल पजाब और सिंध प्रान्तो मे मिले जुले मन्त्रिमडल बने जिसम काग्रेस की कोई भूमिका नही थी।

स्वायत्तता की काय प्रणाली

यहाँ स्वायत्त शासन प्रणाली की परीक्षा रुचिकर होगी। काग्रेस मन्त्रिमडल न आठ प्रान्ता म कायभार ग्रहण किया और अक्टूबर 1939 तक काय करती रही और इसके बाद युद्ध के प्रश्न पर स्तीफा दे दिया। इसका विस्तार स विवरण अगले अध्याय म आयगा। 1941 के अत म उडीसा म एक गर काग्रेसी मन्त्रिमडल ने कायभार ग्रहण किया और इसी तरह का मन्त्रिमडल उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त म भी स्थापित हुआ। पर शेष काग्रेस बहुल प्रान्ता म सेक्शन 93 के अतगत गवनर का शासन चलता रहा 1946 म नवीन चुनाव होन पर यहा लोकप्रिय मन्त्रिमडल पुन स्थापित हुय। बगाल, पजाब और सिंध के गर काग्रसी प्रान्ता म प्रान्तीय स्वायत्तता 10 वर्षों तक फूलती फलती रही।

गवनरो की भूमिका—आठ काग्रेसी प्रान्तो म इस काल म प्रान्तीय स्वायत्तता कायरत रही। गाधी के ही शब्दो मे गवनर ल दकर सविधान के अनुरूप काय करते रहे। चार अवसरो को छोडकर प्रान्तीय विधायिका से पारित विधान को गवनर ने अपनी सहमति प्रदान की और अनतिक अधिकारियो ने मन्त्रियो को उनके कायक्रम को सफल बनान मे पूण समथन प्रदान किया। पर इसका अथ यह नही कि इन काग्रेस प्रान्तो म कोई सवधानिक कठिनाई ही उत्पन्न नही हुई। सच तो यह था कि ऐसी कठिनाइया सामने आइ पर उन पर आसानी स विजय प्राप्त करली गई। उनका सक्षिप्त सदभ यहा उपादेय होगा।

उडीसा मे जब गवनर न अवकाश लिया तो वहा की सरकार के मुख्य सचिव को कृत गवनर बना देने का प्रस्ताव किया गया। उस प्रान्त के काग्रेस मन्त्रिमडल न काग्रेस हाई कमान स समथन प्राप्त कर एक कमचारी को पदोन्नति देकर उनके सर पर लादन की क्रिया का विरोध करत हुये स्तीफा देने की धमकी दी। पर स्थिति उस समय सभल गई जब गवनर ने अपनी छुट्टी रद्द करा दी।

मध्य प्रान्त म तो गवनर न मन्त्रिमडलीय एकता की रक्षा क लिय रास्ते से हटकर भी काय किया। यहा मुख्यमत्री डॉ० एन० बी० खर न अपन दो मन्त्रियो से स्तीफा मागा जिससे कि मन्त्रिमडल का फिर सगठन किया जा सके।

मन्त्रियो ने यह कहकर ऐसा करने से इन्कार कर दिया कि उन्हे उच्च कमान से कोई आदेश नही मिला है जिसके फलस्वरूप मुख्यमत्री ने स्वय स्तीफा दे दिया। गवनर ने इस पर हस्तक्षेप किया और विरोधी मत्रियो को बर्खास्त करते हुय डॉ० खरे को पुन मन्त्रिमडल बनाने के लिये आमन्त्रित किया। गवनर ने यह काय तो उचित किया था, पर उसके काय के पीछे उत्तम दष्टि नही थी। काग्रेस हाई कमान ने काग्रेस को विभाजित करन का आरोप गवनर पर लगाते हुये डॉ० खरे के विरुद्ध ही अनुशासनात्मक कायवाही करके उन्ह पद मुक्त करके प० रविशकर शुक्ल को मुख्यमत्री बना दिया। यह गवनर के लिये एक ऐसा पाठ था जिसम उसे बतलाया गया था कि उसे सहायता करन म या हानिया पहुचाने मे अधिक रुचि नही लेनी चाहिये।

युनाइटेड प्राविसेज और बिहार मे फरवरी 1938 मे उस समय पुन कठिनाई सामने आई जब काग्रेस सरकारो ने अपन वादे के अनुसार राजनतिक कैदियो को रिहा करने का प्रश्न उठाया। गवनर को इसमे अशाति की गध आई और गवनर जनरल ने धारा 126 के अतगत हस्तक्षेप हेतु आदेश दे दिये। यह मन्त्रिमडल के लिए एक चुनौती थी जि होने विरोध म स्तीफे दे दिये। यू० पी० के मुख्यमत्री प० पत ने अपने स्तीफे के पत्र मे लिखा, "यह समझ मे नही आता कि 50 राजनैतिक बदियो की रिहाई, जिन मे से कुछ तो ऐस हैं कि जो दडित किये जाने के समय लडके थे तथा जिनमे से अधिकतर ने लम्बी अवधि तक जेले काट ली हैं और कुछ ही महीनो मे अपन आप रिहा होन वाले हैं, भारत के किसी प्रात की सुरक्षा और व्यवस्था के लिय समस्या बन सकते हैं। हम हर दष्टि से ऐसा अनुभव करत हैं कि उन्होने हिंसा के पथ का परित्याग कर दिया है। जेल अधिकारियो का भी ऐसा ही विचार है हमने इस प्रश्न पर आप से अनेक अवसरो पर विचार विमश भी किया है।" इसके अतिरिक्त गवनर जनरल की इस कायवाही को प्रा तीय स्वायत्तता मे एक गभीर अपवादात्मक हस्तक्षेप माना गया। पर यहा पुन स्थिति पर काग्रेस उच्चकमान और वायसराय लाड लिनलिथगो के बीच समझौते के फल स्वरुप काबू पा लिया गया। इसके अतगत यह तय हुआ कि बदियो की रिहाई धीरे धीरे अलग-अलग बंदियो के मामले को ध्यान मे रखकर की जायेगी। स्पष्टतया गवनर और वायसराय ने मामले को टाला था।

यू० पी० सकट एव पीरपुर का प्रतिवेदन—यू० पी० मे एक अधिक गभीर और आवयक सकट उत्पन्न हो गया। काग्रेस बहुल प्राता म पद भार ग्रहण करते समय यह तय किया गया था कि काग्रेस मुस्लिम लीग का सहयोग अर्जित करने के लिय उन्ह भी अपन साथ सम्मिलित करले। परीक्षण के तौर पर यू० पी० म इसे प्रारभ किया गया जहा काग्रेस को प्रातीय शाखाओ और

लीग के बीच दोनो के उच्च कमानो के आदेशानुसार बातचीत प्रारभ हुई। काग्रेस ने मुस्लिम लीग के साथ मिलकर काय करने की इच्छा व्यक्त की पर उसने इसके साथ कुछ शर्तें जोड दी जैसे (1) कि मुस्लिम लीग अलग से काय न करके काग्रेस के नेतृत्व म काय करें, (2) कि मुस्लिम लीग ससदीय बोड यू० पी० अपना अस्तित्व समाप्त करदे और भविष्य मे अपने अभ्यार्थी चुनाव हेतु नामित न करे। स्पष्टतया ये शर्तें कठोर थी और इन मागो को मानने का अथ था, यू० पी० की मुस्लिम लीग शाखा को समाप्त करना।[1] पर प्रात मे काग्रेस का बहुमत होने के कारण यह बात आश्चयजनक नही थी। यह बात तो रास्ते से हटकर लीग से सहयोगात्मक दृष्टि का प्रतीक थी। इसके अतिरिक्त यदि इन शर्तों के बिना सविद सरकार बनाई जाती तो जवाहरलाल ने ठीक ही कहा था कि कांग्रेस को इसमे षडयत्र का भय था। उनके अनुसार 'अ य मत्रियो के सिर पर सरकार के होने के कारण एकता का कोई सूत्र न होता, आपसी वफादारी न होती एक तरह की गन्तव्य दिशा न होती और मत्री व्यक्तिगत रूप से भिन्न भिन्न दिशाओ की ओर दौडते होते।"[2] पर यह वार्ता सफल न हुई और यू० पी० मे काग्रेस ने अकेले ही मत्रिमडल की रचना की।

यू० पी० म अब मुस्लिम अल्पवयस्को की काल्पनिक कठिनाइयो का चित्र प्रस्तुत कर लीग ने शिकार करने की चेष्टा की। जिन्ना ने एस कई काग्रेस अत्याचारो की सूची तयार की और 20 माच 1937 के एक प्रस्ताव के अनुसार मुस्लिम लीग ने पीरपुर (यू० पी०) के राजा के नेतृत्व मे एक समिति इन मसलो की छानबीन के लिये नियुक्त की। अपने आठ महीने के कठोर परिश्रम के उपरान्त समिति ने प्रतिवदन प्रस्तुत करते हुए यह बताया कि मुसलमानो की कठिनाइया सत्य थी। उसने अ य बातो के अतिरिक्त काग्रस पर यह आरोप लगाया कि (1) नौकरियो मे मुसलमानो के साथ भेदभाव बरता जाता है (2) मुस्लिम स्कूलो का सहायता कम दी जाती है (3) हिंदी के प्रचार के लिए सरकारी प्रयास होते हैं और उसमे अधिक रुचि ली जाती है (4) सरकार ने वन्दे मातरम गान की छूट दे दी है जिस पर ब्रिटिश सरकार ने प्रतिबंध लगा रखा था, एव (5) काग्रेस झडा का सावजनिक भवनो पर प्रयोग किया जाता है। प्रतिवदन म निष्कर्ष रूप मे कहा गया कि मुसलमानो के लिए काग्रेस के शासन से ब्रिटिश शासन बेहतर था।

---

1 पेडरेलमन ने लिखा है कि यह बहुत बडी भूल सिद्ध हुई—पाकिस्तान रचना का एक प्रमुख कारण—पर उस परिस्थिति में यह स्वाभाविक ही था। डिवाइड एण्ड क्विट प 15 16।

2 नेहरू आटोबाईग्राफी प 371।

इससे कांग्रेस हल्कों में आक्रोश छा गया। कांग्रेस ने यह प्रस्ताव रखा कि इन ममलों की छानबीन के लिए भारत के मुख्य न्यायाधीश, जो एक अंग्रेज था को नियुक्त किया जाय। पर इसे स्वीकार नहीं किया गया। जिन्ना ने इस पर यह प्रति प्रस्ताव किया कि न्यायाधीशों का एक रॉयल कमीशन बनाया जाय जिसका अध्यक्ष प्रीवी कौंसिल का ला लार्ड हो। कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को भी स्वीकार किया। पर वायसराय और गवनर चूंकि यह जानते थे कि इस मसले में सत्यता का कोई अंश नहीं है, हस्तक्षेप करके इस मसले को समाप्त कर दिया। यह एक अन्य अवसर था जब गवनर ने उत्तरदायित्वपूर्ण और तटस्थ ढंग से अपनी भूमिका अदा की।

पर गैर कांग्रेसी प्रांतों में गवनरों की भूमिका भिन्न कोटि की थी। इन स्थानों पर प्रशासकीय मसलों पर ये अधिक हस्तक्षेप करते थे। विशेषकर युद्ध काल में मंत्रियों की स्थिति दयनीय हो जाती थी। 1938 में सिंध के मुख्य-मंत्री अल्लाह बक्श ने सरकार की युद्ध नीति के विरुद्ध अपनी खान बहादुर की पदवी का परित्याग कर दिया। इस पर गवनर ने इसके बावजूद कि वह विधायिका में स्थायी बहुमत में था, उसे पद से बर्खास्त कर दिया। 1937 43 के बीच सिंध में पांच परिवर्तन किये गये और 1946 में गवनर ने सबसे बड़े दल के नेता को कार्य करने के लिये आमंत्रित किया जबकि सदन में स्थायी सविद कार्यरत थी। पुनः बंगाल में मुख्यमंत्री फजलुलहक को स्तीफा देने के लिये गवनर ने उस समय बाध्य किया जब सदन में अनुदानों पर मत लिया जाने वाला था। और 1945 में जब मुख्यमंत्री को अनुदान पर मत देने से ही रोक दिया गया था तो गवनर ने सदन के अध्यक्ष से सदन को स्थगित कराकर उसे पद पर बनाये रखा। सदन में बहुमत में न होने पर भी लीग मंत्रिमंडल को गवनर ने शक्ति प्रदान की भले ही इसके लिये उसे बंगाल, सिंध और उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत में कांग्रेस सदस्यों को जेल में बंद करना पड़ा। इन प्रांतों के गवनर लीग की तरफदारी करते थे और बंगाल के एक नेता श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने उचित ही कहा था कि यह बेहतर होता कि इन प्रांतों के गवनर लीग की सीटों पर जा बैठते।

पंजाब में गवनर ने अपनी शक्ति इतनी बढ़ा ली कि मुख्य मंत्री 6 माह के लिये व्यक्तिगत कार्य से अनुपस्थित रहा, तब भी गवनर ने उसके स्थान पर किसी को नियुक्त नहीं किया। इस प्रांत के मुख्यमंत्री सर सिकंदर हयात खाँ ने दिन प्रतिदिन की गवनर की निर्देशक शक्ति को स्वीकृति प्रदान की। गवनर ने उनके साथ इतनी निर्भीकता के साथ व्यवहार किया कि जब उससे बिहार एवं यू० पी० के राजनैतिक बंदियों के रिहाई के संबंध में मत मांगा गया तो उसने गवनर जनरल को यह सूचना भेज दी कि प्रांत के मुख्यमंत्री

ने उसे परामश दिया है कि शाति और व्यवस्था के हित म ऐसा न किया जाय। जब इस सबध मे सदन म मुख्यमत्री से प्रश्न किया गया तो सर सिकदर न कहा कि उ होन गवनर को इस तरह की सस्तुति कभी नही दी।

स्पष्ट है कि गर काग्रेसी प्रातो म गवनर का हस्तक्षेप प्राय आपत्तिजनक सीमा तक चला जाता था। सभवत इसी कारण 1939 म जब काग्रेस प्राता पर गवनर का शासन लादा गया तो गैर काग्रसी प्राता म मत्रिमडल काय करत रहे।

मन्त्रिमडलों की काय प्रणाली—काग्रेसी और गर काग्रेसी प्राता मे मत्रिमडला की काय प्रणाली सतोषजनक थी। काग्रेसी प्राता मे बहुमत वग के नेताओ को ही मत्रिमडल बनाने के लिये आमत्रित किया गया। गर काग्रेसी प्राता मे वस तो गवनर ही मुख्यमत्री का चुनाव करता था पर उन्होने काय ठीक ढग से किया। विभिन्न विभागा का वितरण वसे गवनर को ही करना था, पर गवनरा ने यह काय मुख्यमत्रियो को सौंप कर स्वस्थ परपरा का श्रीगणश किया। मत्री सदन के विश्वास प्राप्ति काल तक काय करते रहते थे और अपने विरुद्ध अविश्वास का मत पारित होते ही पद त्याग कर देते थे। आसाम के मन्त्रिमडल न सदन मे एक महत्वपूण कानून के अस्वीकार हो जाने पर स्तीफा देकर एक स्वस्थ परपरा की शुरुआत की। इसन अविश्वास के मत पडने पर जोर नही दिया, सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धात का भी विकास किया गया और मन्त्रिमडल मे अल्पसख्यका को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। उडीसा म योग्य काग्रसी मुस्लिम सदस्य के अभाव मे ही अपवाद बरता गया। उडीसा के मुसलमाना न गवनर स मुलाकात की और विरोध प्रकट किया। गवनर ने बुद्धिमत्ता से काय करते हुये उनके हित साधन को हानि न पहुचन के लिये आश्वस्त किया पर साथ ही मन्त्रिमडल के काय मे हस्तक्षप करने से इ कार कर दिया। काग्रेस प्रातो म मत्रिमडल की बैठकें मात्र औपचारिक होती थी क्योकि सविधान के अनुसार इनकी अध्यक्षता गवनर करता था जिसकी उपस्थिति मे नीति विषयक निणय नही लिये जा सकते थे। इसी कारण मत्री अपनी व्यक्तिगत बठको म निणय लेकर ही ऐसी बैठको म सम्मिलित होत थे। पर गर काग्रेसी प्रातो मे गवनर की अध्यक्षता म होने वाली बैठक मात्र औपचारिक नही होती थी। यहा गवनर मन्त्रिमडल की बठको म कायपालिका कार्यो म अत्यधिक रुचि लेता था जो कोई गुप्त बात न होती थी। पजाब के सर सिकदर हयात खा जस मुख्यमत्री तो इसका स्वागत तक करते थे।

इस काल म एक और स्वस्थ परपरा का प्रारभ हुआ जिसके अतगत अवरमत्री नियुक्त किये जाते थे। इन्हें ससदीय सचिव भी कहा जाता था।

इसका प्रावधान ऐक्ट मे नही था। ससदीय सचिव सावजनिक सेवा के अधिकारी स्थायी सचिव से भिन्न था। स्थायी सचिव एक विभाग का प्रशासकीय मालिक होता था। ससदीय सचिव सदन का सदस्य होता था और शासक दल का होता था। उसका काय उस मत्री की सहायता करना होता था जिसकी सहायतार्थ वह नियुक्त होता था। सचिव मन्त्रिमडलो म ये सचिव सदन मे शासक दल को मूल्यवान एव महत्वपूण समथन प्रदान करते थे। यह परपरा जो इग्लैण्ड से ग्रहण की गई थी इसलिए अच्छी मानी जाती थी क्योकि इसके कारण भविष्य मे होने वाले मन्त्रियो को काय करने का अवसर मिल जाता था।

नागरिक सेवायें—मन्त्रियो के नेतृत्व म नागरिक सेवाये भी सतोषजनक रीति से चलती थी। उच्च सेवाओ मे नियुक्ति, पदमुक्ति और सेवा शर्तों का नियन्त्रण सदन के राज्य सचिव द्वारा होता था और उनके जोर देने पर ही ऐक्ट के अतगत उन्ह कुछ अतिरिक्त सुरक्षा भी प्रदान की गई थी जिससे कि वे ठीक से काय कर सकें। पर वे तीन श्रेणी म बटे थे। प्रथम तो व जिन्होने प्रातीय स्वायत्तता के प्रारभ होने पर स्तीफा दे दिया, द्वितीय वे जो मन्त्रियो को परेशान करने के लिए अब भी काय कर रहे थे और तृतीय वे जो सचमुच सहयोग करने को इच्छुक थे। दूसरे तरह का उदाहरण यू० पी० के मुख्य सचिव मे देखा जा सकता है जिसने प्रशासकीय अधिकारियो को आदेश प्रसारित किया कि सरकार का आदेश तभी मान्य किया जाय जब उस पर सचिव के भी प्रति हस्ताक्षर हो। पर मुख्यमत्री जी० बी० पत की कठोर कायवाही उसे रास्ते पर ले आई जिसके बाद पूरे देश मे अधिकारियो को अपनी स्थिति का ज्ञान हो गया और वे नई परिस्थिति मे काय करने को तैयार हो गये। वैसे उनके लिए इन भारतीय नेताओ के साथ काय करने मे कठिनाई आती थी क्योकि भूतकाल मे इन अधिकारियो ने उन नेताओ के साथ दुव्यवहार कर रखा था। अधिकारी प्राय कहत सुने जाते कि मत्री प्रतिदिन के उनके काय मे अत्यधिक हस्तक्षेप करते है। यह पूणतया असत्य भी नही था जो उनकी नेताओ के नीचे काय करने के क्षोभ का प्रतीक था जिसके प्रति वे धीरे धीरे अभ्यस्त होते जा रहे थे।

काग्रेस हाई कमान—काग्रेस प्रातो मे मत्री स्वय काग्रेस हाई कमान के निर्देशन म काय करते थे जिसका निर्माण माच 1937 मे किया गया था। इसमे तीन सदस्य थे—डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, सरदार वल्लभ भाई पटेल, मौलाना अबुल कलाम आजाद। ये काग्रेस काय समिति के ससदीय उपसमिति के रूप म काय करते थे। मि० कूपलैण्ड ने यह कहते हुये काग्रेस हाई कमान की आलोचना की है, "काग्रेस एकता की नीति प्रातीय स्वायत्तता और उत्तरदायी

सरकार पर आघात करती थी।"[1] पर यह आलोचना उचित नहीं है। यह आवश्यक था कि प्रांतीय कांग्रेस मंत्रियों पर एक नियंत्रक शक्ति हो जो भारतीय प्रशासन के स्तर एवं व्यवहार में एकरूपता की स्थापना कर सके। इसके अतिरिक्त इससे ही राष्ट्रीय स्तर पर दल का विकास हो सकता था और यह कोई गलत बात नहीं थी कि इस मसले पर अमरिका, कनाडा और आस्ट्रेलिया से उदाहरण लिया जाता था।

1939 तक इस तरह कांग्रेस मंत्रिमंडल लगभग ठीक ढंग से कार्य करते रहे। इसके बाद इन्होंने स्तीफे दे दिये और मंत्रिमंडलीय प्रणाली के आवश्यक सिद्धांत अब पर्दे के पीछे चले गये। आसाम के मुख्यमंत्री सदन में पराजय के बाद भी पद पर बने रहे। 60 सदस्यीय विधान सभा में उड़ीसा के मुख्यमंत्री का केवल 14 पर ही अधिकार था पर फिर भी उसके पद पर बने रहने में कोई अनौचित्य नहीं दिखाई पड़ा। दूसरी ओर बंगाल और सिंध के मुख्य-मंत्रियों को बहुमत में रहने पर भी पद से त्याग पत्र देने को बाध्य होना पड़ा। अब पहले की भांति सामूहिक उत्तरदायित्व की भी महत्ता नहीं रही क्योंकि जब मुख्यमंत्री स्तीफा देता तो आवश्यक नहीं था कि उसके मंत्री साथी भी स्तीफा दें।

उपलब्धियां—फिर भी जब तक इन्होंने कार्य किया इन लोकप्रिय मंत्रिमंडलों ने बहुमुखी विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया। प्रारंभिक शिक्षा के विकास का कार्य हाथ में लिया गया और वयस्कों को शिक्षित करने के प्रयास किये गये। ग्राम विकास के कई कदम उठाये गये। ग्रामीण विधान बनाये गये सूदखोरों तथा ऋण से किसानों को मुक्त करने का प्रयास किया गया। भूमि के विकास के लिए ऋण प्रदान किये गये बाजार सुविधा का विकास किया गया, दुर्भिक्ष काल में सहायता कार्य को मजबूत आधार प्रदान किया गया तथा सिंचाई का विकास किया गया। उद्योग क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किये गये। कुटीर उद्योग धंधों को प्रोत्साहित किया गया तथा अन्य उद्योगों के विकास के लिये ऋण प्रदान किये गये। बिजली के सामान के उत्पादन को प्रोत्साहन दिया गया। कांग्रेस प्रांतों में अखिल भारतीय स्तर पर शराब बंदी का महान कार्य प्रारंभ किया गया जिससे 18 करोड़ रुपये के आबकारी कर की हानि थी। बम्बई और मद्रास इस क्षेत्र में बहुत आगे थे। वैसे कदम बड़े सावधानीपूर्ण थे। राजनैतिक क्षेत्र में भी विकास किया गया। गांवों में पंचायत प्रथा को प्रोत्साहित किया गया और बम्बई के कांग्रेस मंत्रिमंडल ने विधायिका का पूर्ण समर्थन प्राप्त करते हुये अत्यधिक साहसपूर्ण कदम

1 कूपलैंड इंडिया ए रिस्टेटमेण्ट पृ 161।

उठाते हुये सविनय अवज्ञा आदोलन मे सम्मिलित होने वाले लोगा की वह भूमि वापस कर दी जो ब्रिटिश साम्राज्यवादियो न उनसे छीन ली थी। मद्रास मन्त्रिमडल ने भी उस समय साहस का ही परिचय दिया जब उसने एक सावजनिक स्थान से खुराफाती जनरल नेह की मूर्ति को हटा देन का आदेश दिया। और कांग्रेस जिस रास्ते पर चल रही थी उसी रास्त पर गैर कांग्रेसी सरकारें भी चली। जे० एल० नहरू ने लिखा है कि, "महत्वपूण मनोवज्ञानिक परिवतन दृष्टिगोचर हो रहे थे और देहात मे लोगो मे बिजली सी दौड गई थी   पुलिस का भय और गुप्तचरा की गुप्त सवाओ का डर जाता रहा   और गरीब से गरीब किसान भी आत्माभिमान तथा आत्मनिभरता के भाव मे मस्त हो गया।"[1]

पर मन्त्रिमडलो के सचालन मे कुछ दोष भी थे। प्राय यह रवया था कि अधिक से अधिक व्यय किया जाय। प्राय बहुमत का शासन अल्पसख्य मत से पूछे बिना लाद दिया जाता था। विधान शीघ्रता म बनाये जाते, फिला म गुणात्मक बातें न होती जिन्ह बाद मे सशोधित करना पडता। कूपलण्ड लिखता है कि, "भारतीय राजनीति मे कांग्रेस एक रचनात्मक शक्ति बन चुकी थी   इसने अब यह दिखा दिया था कि इसकी सगठन शक्ति और इसके सदस्यो का अनुशासित उत्साह अधिक व्यावहारिक उद्देश्या के लिए प्रयोग मे लाया जा सकता है।"[2] इसके अतिरिक्त लोकप्रिय मन्त्री न जो व्यावहारिक अनुभव इस समय प्राप्त किया, वह भविष्य के लिय फलदायी सिद्ध हुआ।

'अगस्त प्रस्ताव' एव क्रिप्स मिशन

'अगस्त प्रस्ताव'

3 सितम्बर 1939 को युरोप मे द्वितीय विश्वयुद्ध छिड गया। अप्रल 1939 मे ही ब्रिटिश न भारतीय सेना की एक टुकडी अदन भेजी। कांग्रेस ने भारत पर युद्ध थोपन के विरुद्ध चेतावनी दी और यह भी कहा कि 'युद्ध मे भारतीय साधनो का प्रयोग बिना भारतीय जनता की अनुमति म न किया जाय। पर इस चेतावनी की ओर अंग्रेजो ने ध्यान नही दिया और अगस्त मे अदन, मिस्र और सिगापुर और भारतीय सेनायें भेजी गइ। उस समय तो बम की तरह धमाका ही हुआ जब भारतीय नताओ से परामश किय बिना

---

1 नहरू ऑटोबाइग्राफी प 378।

2 कूपलण्ड पूर्वोद्धत प 165-68, शर्मा जे एम पूर्वोद्धत प 502 68।

लिनलिथगो ने भारत को युद्धरत राष्ट्र घोषित कर दिया। इस पर भी विचार किया जाने लगा कि 1935 के भारतीय अधिनियम में संशोधन कर भारत सरकार के हाथ मजबूत किये जाय और जनता की स्वतन्त्रता में कटौती की जाय।

कांग्रेस में इसकी तीखी प्रतिक्रिया हुई और 14 सितम्बर को इसने एक प्रस्ताव में घोषणा की "प्रजातान्त्रिक स्वतन्त्रता के नाम पर लड़े जाने वाले ऐसे किसी युद्ध में भारत अपना सबंध नही रख सकता जिसने उसके देश की जनता की स्वतन्त्रता का ही हनन कर दिया हो और जो थोड़ी सी सीमित स्वतन्त्रता उसके पास थी उसका भी अपहरण कर लिया हो। यदि ग्रेट ब्रिटेन प्रजातन्त्र के रखरखाव और विकास के लिये लड़ रहा है तो उसे आवश्यक रूप से अपने द्वारा फैलाये गये साम्राज्यवाद को समाप्त करना चाहिये ... एक स्वतन्त्र प्रजातान्त्रिक भारत प्रसन्नता से स्वतन्त्र देशों की *आक्रामकों से रक्षा में सहायता में भागीदार होगा और आर्थिक मामलों में* सहयोग करेगा।" कांग्रेस ने स्पष्ट रूप से यह माग की कि यदि ब्रिटिश हमसे सहयोग चाहते है तो वे घोषित करें कि (1) युद्ध के बाद भारत को अपना संविधान बनाने की स्वतन्त्रता प्रदान की जायेगी तथा (2) ब्रिटिश तुरन्त भारत में लोकप्रिय शासन की स्थापना का अवसर देंगे।[1] उदारवादियों ने कांग्रेस का समर्थन करते हुये कहा कि सरकार ... वर्तमान केन्द्रीय सरकार के स्थान पर जनता के प्रति उत्तरदायी एक सरकार की स्थापना करे।" दूसरी ओर मुस्लिम लीग ने युद्ध की घोषणा में कोई अवगुण नही पाया और माग की कि कांग्रेस को उनसे पूछे बिना कोई आश्वासन न दिया जाय।

कांग्रेस मन्त्रिमंडल के स्तीफे

मुस्लिम लीग की माग ने वायसराय लार्ड लिनलिथगो को 'बाटो और राज्य करो' की नीति अपनाकर कांग्रेस को पराजित करने का अवसर प्रदान किया। उसने अपने मनोगम्य वर्ग, रुचि और जाति के लोगों से साक्षात्कार करके अपने निष्कर्ष में यह बताना प्रारंभ किया कि भारतीयों में एकता नहीं है। उनकी इस कार्यवाही से ब्रिटिश लोक सभा के विरोधी दल के नेता मि० एटली तक असन्तुष्ट हो गये और उन्होंने लिनलिथगो की यह कहकर आलोचना की कि वे सत्यता से काफी दूर है और उन्होंने अपनी कल्पना शक्ति[2] को गवा दिया है। वायसराय ने 52 व्यक्तियों से परामर्श किया

1 नार्मन डोरोथी नेहरू द फर्स्ट सिक्सटी इयर्स हिज स्टटमेण्ट्स स्पीचेज इक्सेट्रा I पृ 643 46।

2 ग्लेन्डन, जॉन द वायसराय एट बे लन्दन 1975 पृ 155।

और अतन 17 अक्टूबर 1939 को यह घोषणा की। उसने अपने इस वक्तव्य मे कहा (1) यह सरकारी घोषित नीति है कि भारत और ब्रिटेन के बीच भागीदारी अत तक साम्राज्य की सीमा म बढाया जायगा और वह अधिराज्य के रूप म बना रहेगा। (2) सरकार युद्ध समाप्ति के बाद भारत के लिये सविधान रचना के प्रश्न पर पुर्नविचार करगी। (3) शक्ति हस्तान्तरण की कार्यवाही करना तुरन्त सभव नही है। (4) सभी दलो से सहायता व परामश प्राप्त किया जायगा। अल्प सख्यको को परेशान नही होना चाहिये, और (5) युद्ध सचालन मे वायसराय के सहायतार्थ महत्त्वपूर्ण सम्प्रदायो और हितो के प्रतिनिधियो का एक 'परामशदाता समूह' बनाया जायेगा।[1]

स्पष्टतया यह घोषणा भारतीयो को बाटने का एक बेहूदा प्रयास था। इसमे भारत के लिये अधिराज्य प्रदान करने की बातें अतिम उद्देश्य के रूप म दुहराई गईं। इस बीच कांग्रेस को परामशदाता समूह' की सदस्यता स अधिक और कुछ प्राप्त नही हुआ। दूसरे शब्दो म गाधी न ठीक ही कहा कि, "कांग्रेस ने रोटी मागी और उसे पत्थर प्रदान किया गया।' कांग्रेस काय समिति न मागो के प्रति टालमटोल की नीति अपनाये जाते देख कांग्रेस मत्रिमडल को ई अक्टूबर को स्तीफा दे देने को कहा। तुरत स्तीफे द दिये गये और नवम्बर मे इन 8 कांग्रेस प्रान्तो म धारा 93 लागू कर दी गई और वहा परामशदाताओ के माध्यम से शासन करना प्रारभ कर दिया गया।

पुन बातचीत

पर वायसराय लोकप्रिय मागो के प्रति विस्मरणशील नही बना रह पाया और उसने गाधी, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद एव जिन्ना जैसे नेताओ स पुन बात चीत प्रारभ की। 2 नवम्बर 1939 को उसन डॉ० प्रसाद और जिन्ना का लिखा और अपनी बातचीत का स्मरण दिलाया। उसन कहा (1) युद्ध काल म जिस तरह की अस्थायी व्यवस्था स्थापित की गई थी जिसके अनुसार कांग्रेस और लीग के प्रतिनिधियो के अतिरिक्त कुछ और महत्त्वपूर्ण समूहो के लोग सम्मिलित किये गये थे उन्हें वायसराय की कौंसिल म सम्मिलित किया जा सकता था। इन सदस्यो के अधिकार और कत्तव्य उसी तरह क होगे जसे कि अन्य सदन के सदस्यो को प्राप्त हैं और यह पूरी व्यवस्था कानून के तहत होगी। (2) पर यह तभी सभव है जब कांग्रेस और लीग आपस म

---

1 नामन डोरोथी पूर्वोद्धृत भाग 1 पृ 650-60।
2 सीतारमय्या पूर्वोद्धृत भाग 2, पृ 124-44।

प्रातो म शासन करने के किसी सिद्धात पर समझौता करले। पर डॉ० प्रसाद ने 3 नवम्बर को वायसराय को अपने उत्तर मे प्रथम यह घोषित करने को कहा कि "वह अपने युद्ध के उद्देश्यो को स्पष्ट कर जिसके बिना काग्रेस के लिये कोई अय प्रस्ताव स्वीकारना दुष्कर है। हम साम्प्रदायिक प्रश्न को हल करना चाहते हैं पर इसे अनावश्यक रूप से लबे समय तक के लिये न तो खीचा ही जाना चाहिये और न इसे भारत की स्वतनता की घोषणा मे बाधा ही बनना चाहिये। दूसरी ओर जिना का उत्तर अय तरह का था। वायसराय के प्रस्ताव ने प्रश्न के साम्प्रदायिक उत्तर को प्रोत्साहित किया था और उसने अपने 5 नवम्बर के पन म इस बात पर जोर दिया कि (1) सिद्धान्त रूप मे या अय भाति की कोई घोषणा हिदुआ और मुसलमाना दोना की सहमति के बिना नही की जायगी। उसने तो यहा तक कहा कि इसके लिये आश्वासन दिया जाय कि (2) ब्रिटिश सरकार फिलिस्तीन में अरबो की उचित मागो का समथन करेगी, एव (3) यह कि कोई भारतीय सेना भारत के बाहर किसी मुस्लिम शक्ति या देश के विरुद्ध प्रयोग मे नही लाई जायेगी। वायसराय न डा० प्रसाद के प्रस्तावा को स्वीकार करने मे असमथता व्यक्त की। दूसरी ओर जिना के प्रथम दो प्रस्तावो पर सहानुभूतिपूवक विचार करने के लिये आश्वस्त किया गया पर तीसरे के प्रति कोई गारटी नही दी गई। पर भारतीय मुसलमाना की भावना का आदर करने के लिये फिर भी आश्वस्त किया गया। स्पष्ट है कि वायसराय और भारतीय नेता दोनो भिन्न भिन्न दिशाओ की ओर अग्रसर हो रहे थे। जहा वायसराय का उद्देश्य पूणतया राजनतिक प्रश्नो को साम्प्रदायिक रग प्रदान करता था वहा काग्रेसी साम्प्रदायिकता और राजनीति को अलग अलग रखना चाहते थे। इस तरह गतिरोध पदा हो गया और बातचीत मे कोई प्रगति सभव न रही।[1]

इसी बीच काग्रेस द्वारा प्रातो म मत्रिमडल से त्यागपत्र देने के बाद जिना के प्रसनता की सीमा न रही। उन्होने 2 दिसम्बर 1939 को पीरपुर प्रतिवेदन के आरोप पुन दुहराते हुये काग्रेस सरकारो की भत्सना की और 22 दिसम्बर को पूरे भारत मे मुसलमाना से 'मुक्ति दिवस' मनाने का आह्वान किया। इसके अतगत पूरे भारत म मुसलमानो की बठकें आयोजित करने और प्रस्ताव पारित करने थे जिसम यह लिखा जाना था कि 'काग्रेस मत्रिमडल ने अपने प्रशासकीय तथा विधायिका के शक्ति का प्रयोग इस बात

1 5 नवम्बर 1936 का वायसराय का स्टटमेण्ट आदि सीतारमय्या पूर्वोद्धत भाग 2 पृ 145 49।

के लिये पूणतया लगा दी जिससे कि मुस्लिम सस्कृति बर्बाद हो जाय। उसने उनके धार्मिक एव सामाजिक जीवन म हस्तक्षेप किया है तथा उनके आर्थिक व राजनैतिक अधिकारो को रौद डाला है और यह सब इसलिय किया गया है कि जिससे हिदुओ के इस विश्वास को बल मिले कि देश मे हिदू राज्य स्थापित हो गया है।" प्रस्ताव म इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त की जानी थी कि काग्रेसी मन्त्रिमडल मे विभिन्न प्रान्तो ने स्तीफे दे दिये हैं। इसीलिये इस दिवस को निरकुशता, अत्याचार एव अयाय के विरुद्ध मुक्ति दिवस' के रूप मे मनाने को कहा गया। प्रान्तो के गवनरो से यह आग्रह करने को कहा गया कि वह मुसलमानो की उचित वैधानिक मागो को माने तथा छानबीन करे तथा उनके कष्टो को शीघ्रातिशीघ्र दूर करे।[1]

जिन्ना के दृष्टिकोण से खिन्न होकर ही नेहरू ने महादेव देसाई को लिखा, 'राजनैतिक धोखाधडी एव अशिष्टता की भी आखिर एक सीमा है पर सारी सीमाएँ पार कर ली गई हैं।" काग्रेस मे आम धारणा यह थी कि वायसराय ही जिन्ना मे इस धार्मिक उन्माद और निदयता को उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी है।

1940 के मध्य म युद्ध की स्थिति और बिगड गई। हालैण्ड, बेल्जियम और डेनमार्क को जमनी के समक्ष नतमस्तक होना पडा और नार्वे का पतन निकट था। ब्रिटिश सेनाए स्वय डक्क म बुरी तरह स पराजित हो गई थी और पूरा ग्रेट ब्रिटन बमबारी का शिकार हो रहा था। ब्रिटिश के प्रति सहानुभूति से जब गांधी का दिल भर आया उस समय प्रजातत्र का जीवन ही अधर मे लटका हुआ था। गाधी न ऐसी ही स्थिति म 1 जून 1940 को यह घोषणा की, 'हम ब्रिटन के खडहरो मे से अपनी स्वतत्रता नही चाहत है।' जिन्ना की कायवाहिया गभीर रूप धारण करती जा रही थी। माच 1940 मे द्विराष्ट्र सिद्धात की घोषणा हुई और मुस्लिम लीग न पाकिस्तान की माग रखी। जिन्ना भी वायसराय से वार्ता मे जुटे थे और इसकी सभावना थी कि काग्रेस की अनुपस्थिति म लीग सरकार मे प्रभावशाली हो जाएगी। इ ही कारणो से 7 जुलाई 1940 को पूना म काग्रेस काय समिति ने प्रस्ताव म कहा कि, 'पूरे देश मे काग्रेस अपनी पूण शक्ति और हृदय से व्यक्तियो व धन से सरकार की सहायता करेगी' यदि (1) सरकार यह स्वीकार कर ले कि भारत का गन्तव्य स्वतत्रता है और (2) वह केन्द्र मे तुरत एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकार स्थापित कर ले।

1 श्री प्रकाश पाकिस्तान, बथ एण्ड ग्रोथ टज प 57 कूपलण्ड इण्डियन कान्स्टीट्यूशनल प्राब्लम भाग 2 पृ 184 85।

2 इण्डियन नेशनल काग्रेस रिजोल्यूशन्स प 74 75।

पर इसी बीच इंग्लैण्ड में एक मन्त्रिमण्डलीय संकट उत्पन्न हो गया। घोर अनुदारवादी चर्चिल चेम्बरलेन की जगह प्रधानमंत्री हो गये तथा जेटलैंड के स्थान पर एमरी भारत के लिए राज्य सचिव हो गये। इस अवसर पर चर्चिल ने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि अटलांटिक चार्टर के अंतर्गत मित्र राष्ट्रों को स्वशासन देने का जो वादा किया गया है वह भारत के लिए नहीं है। उसने यह घोषित करने में भी संकोच का अनुभव नहीं किया कि 'वह ब्रिटिश राज्य का ऐसा पहला मंत्री नहीं बनना चाहता जो ब्रिटिश साम्राज्य की समाप्ति का श्रीगणेश करे।'[1] पर वायसराय को इस बात के लिए अधिकृत कर दिया गया कि वह भारतीयों से सहयोग प्राप्ति के लिए उन्हें और कुछ भी प्रदान कर सकता है।

8 अगस्त 1940 को नए प्रस्तावों की घोषणा की गई और इसी कारण इन वायसराय का 'अगस्त प्रस्ताव' कहा जाता है। इसमें निम्नलिखित बातें थीं (1) भारत के लिए ब्रिटिश धारणा उसे अधिराज्य का दर्जा प्रदान करना ही थी (2) सरकार ने प्रथम बार यह स्वीकार किया कि नवीन संविधान की रचना का कार्य भारतीयों की स्वयं की प्रारम्भिक जिम्मेदारी है जो भारत के सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक जीवन के आधार पर भारतीय दृष्टि से करनी चाहिए। (3) युद्ध के तुरन्त बाद कम से कम समय में सरकार भारतीय राष्ट्रीय जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाली एक ऐसी संस्था बनायेगी जो नए संविधान की रचना कर सके। (4) यह नई संविधान योजना ब्रिटिश कामनवेल्थ राष्ट्रों के अंतर्गत होगी। इसके प्रावधानों में यह पूर्ण ध्यान दिया जायेगा कि भारत व ब्रिटेन के सब सम्बन्धों की बात निश्चित होगी और ब्रिटेन अन्ततः ब्रिटिश शासन अपने उत्तरदायित्वों से मुक्त नहीं होगा। (5) वर्तमान संविधान में संशोधन के समय अल्पसंख्यकों के विचारों का पूर्ण रूप से ध्यान रखा जायेगा। (6) वायसराय शीघ्र ही अपनी कार्यकारिणी परिषद् के लिए कुछ भारतीय प्रतिनिधियों को आमंत्रित करेगा। (7) वह एक युद्ध परामर्श परिषद् की भी स्थापना करेगा जो समय समय पर बैठक करेगा और जिसमें भारतीय राज्यों के प्रतिनिधि तथा पूर्ण भारत के राष्ट्रीय जीवन के कुछ विभिन्न हितों के लोग सम्मिलित होंगे। (8) सरकार सभी दलों और सम्प्रदायों से सहयोग की आशा करती है जिससे ब्रिटिश कामनवेल्थ के राष्ट्रों के साथ उस समानता एवं स्वतन्त्र भागीदारी प्राप्त होगी।[2]

---

1 बनर्जी, पूर्वोद्धृत भाग 2 पृ 125।

2 [illegible] पूर्वोद्धृत पृ 250-52।

एक मूल्यांकन

अगस्त प्रस्ताव अभी तक घोषित ब्रिटिश अधिकारियों के प्रस्तावों में निश्चित रूप से प्रगति का सूचक था। वायसराय के अक्टूबर 1939 की घोषणा में जहां युद्ध के बाद पूर्ण संविधान की योजना का पुनरीक्षण करने को कहा गया था वहां भारतीयों द्वारा अपना संविधान स्वयं बनाने की बात स्वीकार नहीं की गई थी। पर अब यह स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया गया था कि नवीन संविधान की रचना 'भारतीयों का स्वयं अपना मुख्य उत्तरदायित्व है।" युद्धोपरान्त अधिराज्य स्थिति का भी वादा किया गया। कार्यकारिणी प्रस्ताव और परामर्शदात्री समिति में भी जनता की इच्छाओं को समादरित करने की चेष्टा की गई।

पर ये प्रस्ताव कांग्रेस की मांगों की तुलना में कुछ नहीं थे। चर्चिल ने पहले ही घोषणा कर दी थी कि अटलांटिक चार्टर भारत पर लागू नहीं होगा और इस कारण वायसराय की घोषणा से यह अपेक्षा नहीं थी कि वह उपरोक्त सिद्धान्तों की आधारभूत बातों से हटकर कार्य करेगा। प्रथम तो युद्ध के उपरांत अधिराज्य स्थिति प्रदान करने हेतु निश्चित समय नहीं बताया गया था। द्वितीय, यह वादा किया गया कि 'भारतीय राष्ट्रीय जीवनधारा का प्रतिनिधित्व करने वालों के द्वारा नवीन संविधान का ढांचा तैयार किया जायेगा', पर यह नहीं बतलाया गया कि यह सभा संविधान परिषद का कार्य करेगी या केवल गोलमेज सम्मेलन का। तृतीय, यह पता नहीं था कि संविधान की उस धारा के अंतर्गत जिसमें यह कहा गया था कि 'ब्रिटेन के भारत से लंबे संबंधों के कारण जो उत्तरदायित्व उसके कंधों पर आये हैं वह उसे पूरा करेगा", क्या अर्थ है? चतुर्थ अल्पसंख्यकों के मत को स्वीकार करने का वादा लीग की मांग स्वीकार करने के बराबर था जिसमें यह कहा गया था कि बिना लीग के परामर्श के भारत का उत्थान नहीं हो सकता। सच तो यह था कि ऐसा करके लीग को निषेधाधिकार प्रदान कर दिया गया था। भारत पर अपना स्वत्व बनाए रखने के लिए ब्रिटिशों ने साम्प्रदायिकता का यह हौवा खड़ा कर दिया था। कांग्रेस ने तो ब्रिटिश राजनयज्ञता में विश्वास करना ही छोड़ दिया और उनके मन से "ब्रिटिश कामनवेल्थ के अंतर्गत अधिराज्य की स्थिति में भी विश्वास जाता रहा। नेहरू का यह कहना ठीक ही था कि अब यह विचार वैसे ही समाप्त हो गया था जैसे दरवाजे की कील।[1] इसीलिए कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

पर दूसरी ओर इस आश्वासन से प्रसन्न कि उनके परामर्श के बिना

1 नामन होरावी पूर्वोध्दृत भाग 2 पृ 38।

सविधान भविष्य मे नही पूरा हो सकता मुस्लिम लीग को भी इस प्रस्ताव को ठुकराना पडा। उनके अनुसार ' भारत का विभाजन ही भारत की समस्याओ का एकमात्र हल था। पर अगस्त प्रस्ताव मे इसके विषय मे कोई आश्वासन नही दिया गया था।

उदारवादियो ने इस प्रस्ताव को न तो स्वीकार किया और न अस्वीकार। प्रथम तो उनका विचार था कि ब्रिटिश नीति महत्वपूण मसला पर स्पष्ट नही है। द्वितीय वे चाहत थे कि अधिराज्य स्वीकृति की एक निश्चित तिथि घोषित कर दी जाय चाहे एक सम्प्रदाय विशेष इसे माने या न माने। और तृतीय कायकारिणी परिषद म भारतीय सदस्य दल के ही नेता बनाये जाने चाहिये।[1]

क्रिप्स मिशन

'अगस्त प्रस्ताव' जनाकाक्षाओ को सतुष्ट नही कर सका। सी० राजगोपा लाचारी एव जवाहरलाल नेहरू जसे ब्रिटिशो को युद्ध म सहायता दने के समथक नताओ ने भी उनका विरोध प्रारभ कर दिया और अखिल भारतीय काग्रेस ने गाधी जी को पुन सविनय अवज्ञा आदोलन प्रारभ करने का अधिकार प्रदान कर दिया। पर युद्ध की कठिन स्थिति के कारण गाधी न सावजनिक सविनय अवज्ञा के स्थान पर व्यक्तिगत अवज्ञा आदोलन का प्रारभ किया जो सवथा नवीन बात थी। इसके अतगत गाधी जी द्वारा व्यक्तिगत तौर पर व्यक्तियो का चुनाव किया जाता था। इस तरह से चुना गया व्यक्ति जिला धिकारी को यह सूचना देता कि वह अपन जिले के लोगो को सरकार के युद्ध कार्यो स विरत करन के लिय काय करना प्रारभ कर रहा है क्योकि यह उनकी इच्छा के विपरीत उन पर थोपा गया है। इसके बाद वह सभाय आयोजित करके उसमे भाषण देगा और अय कायविधिया अपनायगा।[2]

यह नवीन आदोलन नवम्बर 1940 मे प्रारभ हुआ और इस काय के लिये विनोबा भावे को प्रथम सत्याग्रही चुना गया। उन्होने अधिकारियो को आवश्यक सूचना भेज दी और एक युद्ध विरोधी सभा को सबोधित किया जिसके बाद उन्हें कद करक जेल म डाल दिया गया। अय कद किये जाने वालो की लाइन

---

1 और विस्तार के लिये देखें ग्वेर एव अप्पादोराई (सपादित) स्पीचेज ऐण्ड डाकुमेण्टस आन द इण्डियन कास्टीच्यूशन भाग 2 इण्डियन एनुअल रजिस्टर (1940) भाग 2 प 244।

2 देखें नामन डी गाधी ट नेहरू पूर्वोन्धत भाग 2 पृ 43।

लग गइ । नेहरू जी को अक्टबर 1941 मे जेल भेज दिया गया और उनके बाद काग्रेस के सभी महत्त्वपूण नेता एक के बाद एक जेल के अदर ठूस दिये गये । जेल भेजने के लिय सभा मे भाषण देने की आवश्यकता भी न रही । अब तो केवल अधिकारी को सूचना ही इसके लिये पर्याप्त थी । इस तरह से लगभग 30 हजार लोग जेल भेज दिये गये । "इनमे से 6 प्रातो के भूत पूव मुख्यमत्री थे 29 मत्री और 290 प्रातीय विधान सभाओ के सदस्य थे ।"[1]

कुछ लोगो न गाधी के इस कदम की इसलिय आलोचना की कि उन्होने यह काय तब प्रारभ किया जब ब्रिटिश अपने जीवन व मरण के प्रश्न मे उलझे हुये थे । सर सिकदर हयात खा ने इस काय को 'ब्रिटिशो के पीठ मे छुरे" की सज्ञा प्रदान की । पर जिन्होने गाधी के इस काय की आलोचना की उन्होने दूसरा कोई बेहतर रास्ता नही सुझाया जिसके द्वारा ब्रिटिशो के उस काय की भत्सना की जाती जो उन्होने भारतीयो की वैधानिक महत्वाकाक्षा और अधिकारो को रौंदकर किया था । साथ ही विरोधाभासी तौर से अपने दश के बाहर के इन्ही अधिकारो की रक्षा के नाम पर लडाई कर रहे थे । यह भी नही कहा जा सकता था कि काग्रेस के नेता युद्ध के खतरो से भिज्ञ नही थे और न यह ही कि वे मित्र राष्ट्रो की कठिनाई बढ जाने से परिचित नही थे । पर बात सच मे यह थी कि इन्ही कारणो से जिसम ब्रिटिश का दृष्टिकोण भारतीयो के प्रति इस बात की अपेक्षा करता था कि जोरदार आदोलन प्रारभ किया जाय, तब कवल एक साधारण सा प्रतीकात्मक आदोलन प्रारभ किया गया ।

कुछ काल तक तो ब्रिटिश सरकार को कोई दिक्कत नही हुई । पर जसे-जैसे कैदियो की सख्या बढती गई आदोलन और तत्सबध मे विस्तृत सूचनायें समाचार पत्रो मे प्रतिदिन आने लगी । जनता की दृष्टि युद्ध की ओर से आदोलन की ओर मुडने लगी । अब ब्रिटिश सम्राट को भय ने सताना प्रारभ किया और उन्होने जनता के मत को अपनी ओर मोडने का प्रयास किया ।

परिषदीय विस्तार

इसी कारण वायसराय ने अपनी कायकारिणी परिषद एव परामशदात्री समिति का विस्तार किया । यह काय अक्टूबर 1941 की घोषणा के अतगत किया गया । कायकारिणी परिषद म अब 13 सदस्य हो गये और इस तरह 2 भारतीय सदस्य इसमे और जोड दिये गये । सभी भारतीयो की सख्या अब 8 हो गई । पर यह सब अब बहुत महत्व का नही था । काग्रेस

1 एच एल ब्रेल्स फोड ब्जेक्ट इण्डिया प 59 ।

और लीग ने चूंकि इस सदस्यता को अस्वीकार कर दिया था, इसलिय डा० अम्बेदकर ही एक संगठित दल के प्रतिनिधि के रूपमे वहा थे और शेष तो वायसराय की हां मे हा मिलाने वाले लोग ही वहा थे। ये सदस्य गवनर जनरल के प्रति उत्तरदायी थे, विधान सभा के प्रति नहीं। उन्हे गवनर जनरल ही पदासीन और पदमुक्त करता था और उनके हाथ मे कोई शक्ति नही था। विदेशी मामले, रक्षा गृह और अर्थ—ये सभी विभाग ब्रिटिशो के हाथ मे सुरक्षित रहे और कुछ महत्वहीन विभाग जिनमे कुछ को रक्षा पूर्ति के लिये बनाया गया था भारतीयो को प्रदान किया गया। इस तरह स्पष्टतया जनमत को आकर्षित नही किया जा सका।

जेल से रिहाई

कार्यकारिणी परिषद के विस्तार के लगभग एक माह बाद एकाएक लगभग सभी बंदी सत्याग्रहियो को छोड देने का आदेश दिया गया। किसी को यह समझ मे नहीं आया कि सरकार ने ऐसा क्यो किया। पर कुछ लोगो का मत था कि ऐसा नये कौंसिलरो के लिये जनमत जीतने के लिये किया गया जो विश्वासघाती माने जाते थे। यह बात सच भी लगती थी, क्योंकि जेल से *मुक्ति का प्रस्ताव वायसराय के तीन भारतीय कौंसिलो ने ही प्रस्तुत किया* था। वायसराय को एक विचित्र स्थिति से बचाने के लिये ऐसा करना पडा। वसे चर्चिल यह नही जाहिर होने देना चाहता था कि गांधी और उनका दल जीत गये हैं और एक चुनौती के बाद ही उसने माना, 'मान लो पर जब तुम भारत खो देना तो हमारे ऊपर आरोप मत लगाना।'[1] पर यदि एसा था, तो जो सत्याग्रह जनमत का निर्माण कर रहा था अब प्रभावकारी होता जा रहा था। जसा भी हो कांग्रेसियो ने वायसराय के इस काय मे प्रसन्न होने के किसी तत्व का प्रदर्शन नही किया। सी० राजगोपालाचारी ने जहां इस आंदोलन को राजनतिक चाल के रूप मे रोक देना चाहा महात्मा जी ने इसे चलते रहने देना चाहा। अततः इस मसले को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को निर्णयार्थ सौंप दिया गया।

युद्ध और उसके प्रभाव

इस बीच युद्ध की स्थिति और बिगड गई। पर्ल हार्बर पर बमबारी करते हुये नाटकीय रूप से जापान भी इस युद्ध मे कूद पडा। इण्डोचायना, इण्डोनेशिया और मलाया उसके सामने धराशायी हो गये और 1942 के फरवरी के

---

1 ग्रेट्रवेन जान द विक्टी आफ बे प 208 12।

अत तक वर्मा के भी धराशायी होन की नौवत आ गई।[1] युद्ध इस तरह भारत का दरवाजा खटखटान लगा और भारत मे साम्राज्यवादी शोषण के दूत मि० चर्चिल को स्पष्टतया स्वीकार करना पडा कि भारत म ब्रिटिशो के पास उसकी रक्षा का कोई साधन नही है। पर भारतीय नेताओ की वात कुछ और ही थी। साधन हो या न हो उनके लिये यह स्वीकार करना कठिन था कि यदि ब्रिटिश साम्राज्यवादी जाय तो उनका स्थान उनसे भी बुरे जापानी साम्राज्यवादी ग्रहण करलें। कांग्रेस न इस तरह अपना सत्याग्रह आदोलन स्थगित कर दिया और बार्दोली में 30 दिसबर 1941 को उनके ही निवेदन पर महात्मा गाधी को इसके नतृत्व से मुक्त कर दिया गया और अब जवाहरलाल को देश की रक्षा के सगठन का काय सौपा गया।

पर कांग्रेस के बाहर गाधी ने अपना निश्चय व्यक्त करत हुये कहा कि 'मैं चाहे अकेला ही रहूँ या मुझे किसी सगठन का या व्यक्ति का समथन मिले मैं अपना काय करता रहूँगा।" बार्दोली के 30 दिसबर 1941 के प्रस्ताव म कांग्रेसजना से यह कहा गया कि वे व्यक्तिगत तौर पर गाधी के उद्देश्यो की पूर्ति या सविनय अवज्ञा मे सहयोग दे सकते हैं। पर औपचारिक तौर पर काग्रस का मत था कि अहिंसा हर परिस्थिति की दवा नही है और न ही राष्ट्रीय या अतर्राष्ट्रीय समस्या का ही। गाधी से नेता पद अपहरित करते हुये प्रस्ताव म घोषणा की गई, 'वैसे तो भारत के प्रति ब्रिटिश नीति मे कोई परिवतन नही हुआ है, फिर भी काय समिति का विश्व स्थिति का जायजा लेना चाहिय जो इस युद्ध ने उत्पन्न कर दिया है। इससे एक विश्व सघष प्रारभ हो गया है और भारत के प्रति इसकी दष्टि की ओर देखना ही होगा। कांग्रेस की सहानुभूति निश्चित रूप से उस जनता के प्रति ही है जो इस आक्रमण का शिकार है और अपनी स्वतत्रता के लिय सघषरत है। पर एक आजाद और स्वाधीन भारत ही राष्ट्रीय स्तर पर सुरक्षा का कदम उठाने की स्थिति मे हो सकता है और उन कारणो को दबाने म सहभागी हो सकता ह जो युद्ध के तूफान के कारण उत्पन्न हो रहे हैं। भारत में पूरी पृष्ठभूमि ब्रिटिशा

---

1 1 जनवरी 1942 को उदाहरणाथ बम्बई के गवनर सर आर० लुम्ने वायसराय लिनलिथगो का लिखा पिछला पत्र युद्ध सबधा व्यग्रता म बीता ह और इसमे कि आन्तरिक राजनतिक स्थिति म कितना उतार चढाव आयगा। यदा ने राजनीति के प्रति कल्पनाशीलता को वढा दिया ह। जापानियों का मलाया की ओर अग्रसर होना कलकत्ता स तमाम लोगो का भगना और विशेषतया रगून की बमबारी हम व्यग्रतापूवक उस ओर दष्टि करने को बाध्य किय हुए ह एव भविष्य के प्रति नराश्य छाया हुआ ह। मा सरे निकोलस एव लुम्बी ई डब्लू० आर० द टासफर आफ पावर 1942 7 भाग 1 पष्ठ 1।

द्वारा विरोध और अविश्वास की ही है और अत्यधिक दूरगामी आश्वासन भी इसे समाप्त नही कर सकते। और कोई भारतीय अपने आप एक दुराग्रही साम्राज्यवादी की अपनी इच्छा से सहायता नही कर सकता जो बिल्कुल फासीवादी अधिनायकवाद से मिलता जुलता है।"[1]

पर इसका अर्थ यह नही कि कांग्रेस सत्याग्रह की कार्यवाहियां बेकार गई। सरकारी दृष्टिकोण म उदारता के दर्शन हो रहे थे जो उनके जनमत को अपनी ओर आकृष्ट किये जाने के प्रयासों से स्पष्ट हैं। और अब यदि युद्ध की बिगडती स्थिति ने कांग्रेस को अपना आदोलन स्थगित करने को बाध्य किया था तो इसने ब्रिटिश अधिकारियो को यहा यह सोचने को भी बाध्य किया था कि वे शीघ्र ही भारतीयो के लिये राजनैतिक रियायतो की घोषणा करें जिससे कि युद्ध सबधी कार्य म तेजी आ सके और भारतीयो की इस क्षेत्र म सहानुभूति अर्जित की जा सके।

भारतीय उदारवादी

1941 के मार्च और जुलाई मे गैर दलीय नेताओ का सम्मेलन आयोजित हुआ जिसका सभापतित्व अखिल भारतीय उदारवादी सघ के भूतपूर्व अध्यक्ष सर टी० बी० सप्रू ने किया। इन सम्मेलनो म प्रस्ताव पारित किये गये जिनमे यह माग की गई कि युद्ध कार्यो के प्रति भारतीय सहानुभूति अर्जन के लिए केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद को राष्ट्रीय सरकार मे परिवर्तित कर दिया जाये। प्रांतो म लोकप्रिय सरकारे स्थापित की जाय इग्लैण्ड के युद्ध सबधी मन्त्रिमडल म भारत को भी स्थान दिया जाय और महत्वपूर्ण मसलो पर भारत से भी अन्य अधिराज्यो की भाति परामर्श किया जाय। इसके लिये चर्चिल के पास तार भेजा गया जो इस समय वाशिंगटन मे थे। इस पर सप्रू के अतिरिक्त वायसराय के कार्यकारिणी परिषद के सदस्यो के भी हस्ताक्षर थे। ब्रिटिश सरकार ने इस तार की ओर उचित ध्यान दिया जिसने भारत को एक मिशन भेजने का रास्ता खोला।

जापानियों से सम्पर्क

तथाकथित गद्दारी कार्यवाहियां ने भी स्थिति पर प्रभाव डाला। 21 जनवरी 1942 को लार्ड लिनलिथगो ने भारत के राज्य सचिव मि० एल० एस० ऐमरी को लिखा, 'पूर्वी भारत से सैनिक अधिकारियो की सूचना के

1 मानसरे एव लुम्बी (सपादित) पूर्वोद्धृत भाग 1 पृ 879 884।
2 वही पृ 45।

अनुसार बगाल आसाम बिहार और उडीसा विस्तृत और खतरनाक देश द्रोहियो का समूह है जो शत्रुओ के प्रति सहानुभूति की दृष्टि रखता है। शरत बोस ने तो उदाहरण स्थापित कर दिया है। यु सा और तिन तुत (एक प्रदर नागरिक अधिकारी जो उत्तरदायी जगह पर था) अन्य है और गभीर समस्यायें उत्पन्न कर रहे हैं।"[1]

वायसराय लिनलिथगो ने जिस शरतचद्र बोस का सदभ ऊपर दिया है वह 'अपने भाई सुभाषचद्र बोस के साथ फारवड ब्लाक के नेता थे। यह सग ठन बगाल के काग्रेसियो ने बनाया था जो काग्रेस दल की परपरावादी विचार धारा को अस्वीकार करते थे। शरतचद्र बोस वैसे तो अक्टूबर 1940 म काग्रेस से निकाल दिये गए थे पर वे अब भी बगाल विधान सभा मे काग्रेस का नेतृत्व कर रहे थे। 11 दिसबर 1941 को भारत सुरक्षा अधिनियम के अतगत उन्ह कैद कर लिया गया। भारत सरकार ने यह घोषणा की कि वे इस बात से पूणतया आश्वस्त हैं कि उनके और जापानियो के बीच सपक था जिसमे उनका पकडा जाना अतिआवश्यक था।"

दूसरी ओर यूसा जो बर्मा का प्रधानमत्री था और यु तिन तुत उसका परामशदाता, इन्हें ब्रिटेन और अमेरिका की यात्रा से वापसी के बाद कैद कर लिया गया। 10 जनवरी को 10 डाउनिंग स्ट्रीट से यह घोषणा की गई, "इस देश मे यात्रा के बाद यह रिपोट मिली कि यु सा जापान से तब से सपक म है जबसे उस देश से हमारा युद्ध प्रारभ हुआ है। इस तथ्य को उसने स्वय स्वीकार किया है। इसीलिए उसे बद कर लिया गया है और अब उसे बर्मा वापस जाने की अनुमति नही दी जायगी।"[2]

इग्लण्ड मे उदारवादी विचार

18 दिसबर 1941 को इग्लैण्ड के 'टाइम्स' म ससद सदस्य सर जार्ज स्चस्टर का पत्र प्रकाशित हुआ। व वायसराय की कायकारिणी परिषद म अथ सदस्य रह चुके थ। एक पत्र इसी समाचार पत्र म इतिहासकार डॉ० एडवड टाम्सन का भी प्रकाशित हुआ। इस पत्र म 'भारत म नवीन न्याय' की वकालत की गई, केन्द्र म प्रतिनिधित्वपूण मत्रिमडल की स्थापना के लिए कहा गया और प्रातो म सयिद सरकारो का परामश दिया गया।[3] पर अग्रजो म भारत की समस्या के प्रति सबसे अधिक सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति मि०

---

1 वही प 48।
2 वही (फुटनोटस) पृ 49।
3 वही प 54।

क्लीमेण्ट एटली थे जो 10 फरवरी 1942 तक युद्ध मन्त्रिमंडल में लार्ड प्रीवी सील रह चुके थे। सच यह था कि उन्हीं की राय पर भारत में क्रिप्स मिशन भेजा गया। मन्त्रिमंडल और उसके बाहर जो कुछ उन्होंने भारत के संबंध में कहा वह अध्ययन का एक रुचिकर विषय है। हम यहां पर 2 फरवरी 1942 के भारतीय राजनैतिक स्थिति के संबंध में उनके स्मरण पत्र का अंश प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहे हैं "मैंने रुचिपूर्वक भारत के राज्य सचिव के स्मरण पत्र का अवलोकन किया है तथा वायसराय का तार भी देखा है पर मैं इस निष्कर्ष को स्वीकार नहीं कर पा रहा हूँ कि इस समय न तो कुछ किया जा सकता है और न किया ही जाय। यह तो मुझे वर्तमान स्थिति के प्रति अवहेलना की दृष्टि का फल मालूम पड़ता है भारत के ऊपर यूरोपियों और एशियाइयों के बदले हुये संबंधों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है जो इस सदी के प्रारंभ से उस समय से शुरू हुआ जब जापानियों ने रूसियों को पराजित किया हम और अमरिका के लोग वर्तमान समय में जापानियों से जो पराजय झेल रहे हैं वह भी इस स्थिति को और आगे बढ़ायेगा 4 वर्षों से अधिक तक उसी शत्रु से चीनियों का मुकाबला उसी रास्ते की ओर इंगित करता है। यह तथ्य कि हम चीनियों से युद्ध की सहायता सामग्री स्वीकार कर रहे हैं और इससे चीन हमारे समकक्ष आकर खड़ा हो गया है यही बात भारतीयों को यह प्रश्न करने के लिए बाध्य करती है कि वे अपने ही घर में अपने मालिक क्यों नहीं हो सकते इसी तरह से अर्द्ध प्राच्य सांसदों के विरुद्ध प्राप्त सफलता ने इस ओर इशारा करना प्रारंभ कर दिया है कि अब पूरब पश्चिम के प्रभाव को नकारने का प्रयास कर रहा है भारतीयों द्वारा अधिकाधिक बहाया जाने वाला खून और आंसू भुलाया नहीं जा सकेगा और भारतीय उसका पूर्ण उपयोग करेंगे। राज्य सचिव का विचार है कि हम कुछ न करके इस आंधी को भूल जाय, पर आने वाले तूफानों का क्या होगा ? इस तरह की अदूरदर्शी नीति राजनयनता नहीं है शिक्षित भारतीय ब्रिटिशों की न्यायप्रियता और स्वतंत्रता की नीति को स्वीकृति प्रदान करते हैं। हमारी अवमानना भारतीय नैतिक विचारों का माध्यम नहीं करता, बल्कि वह वर्ग करता है जिसे हमने ही भारत में पैदा किया है वायसराय का फूहड़ साम्राज्यवादी दूर दृष्टि की अवहेलना कर मौत की ओर कदम बढ़ाता आत्महत्या की कगार पर खड़ा है और अब वह काल आ गया है जब हम कूटनीतिज्ञता का परिचय दें भारतीय राजनीतिक दलों को एक करने का प्रयास होना चाहिये। यह इस तार से स्पष्ट है कि वायसराय वह व्यक्ति नहीं है जो यह कार्य करेगा। लार्ड डरहम ने कनाडा को ब्रिटिश साम्राज्य के लिये बचाया था। हम एक ऐसा

व्यक्ति चाहिये जो भारत मे डरहम की भूमिका अदा करे इस तरह मेरा निष्कर्ष यह है कि भारत मे एक ऐसा प्रतिनिधि भेजा जाय जिसके पास बातचीत करने के विस्तत अधिकार हो। वह चाहे विशेष दूत हो या वतमान वायसराय का कोई स्थानापन्न। इसके अतिरिक्त एक मन्त्रिमण्डलीय समिति नियुक्त की जानी चाहिये जो इन सब शर्तों को व शक्तियो को तय करे।"[1]

विश्व जनमत

विश्व जनमत का भी इसमे कम योगदान नही था। सुदूरपूर्व मे ब्रिटेन और अमेरिका पर जापान के आक्रमण ने प्रेसीडेन्ट रूजवेल्ट को यह सोचने को बाध्य कर दिया था कि जापान के विरुद्ध भारत को ही युद्ध का आधार बनाया जाय। पर इसमे भारतीयो का सहयोग अपेक्षित था। चीन के जनरल चियाग काई शेक ने जो इस युद्ध मे सम्मिलित थे और एक बडे राज्य के नेता थे, एकाएक 1942 की बसत ऋतु मे भारत की यात्रा की। अपनी इस यात्रा के दौरान इस नेता ने स्पष्टतया भारत की माग मान लेने की ब्रिटिशो से अपील की। लदन के 10 डाउनिंग स्ट्रीट मे चियाग की इस यात्रा से कितनी घबराहट पैदा हो गई वह चर्चिल के 3 फरवरी 1942 के एक पत्र से स्पष्ट है। इसम उसने काग्रेस सदस्यो की महत्ता को कम करने का प्रयास किया था, जिनसे वह मिलना चाहता था। शेक को सम्बोधित अपने पत्र म चर्चिल ने लिखा, "हम इस बात से अत्यधिक प्रसन्न है कि आप भारत की यात्रा पर आ रहे हैं जहा तक आपके गाधी या नेहरू से मिलने का प्रश्न है वे ब्रिटिश शासक से असहयोग की नीति पर चल रह है। इस तरह यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर गभीर विचार की आवश्यकता है किसी भी स्थिति म यदि आप भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के सदस्यो से मिलना प्रारभ ही करते है तो यह आवश्यक है कि आप 8 करोड मुसलमानो के प्रतिनिधि मि० जिन्ना से भी मिलें। इसके अतिरिक्त 4 करोड शोषित वग के तथा करोड लोगो पर शासन करने वाले राज्यो के प्रतिनिधियो से भी आपको मिलना चाहिये जिनसे ब्रिटिश सरकार सधि के माध्यम स आवद्ध है। काग्रेस पार्टी, वैसे तो कुछ वष पूव प्रातीय चुनावो म सफल रह चुकी है, पर किसी भी स्थिति म वह उन जातियो का प्रतिनिधित्व नही करती जो युद्ध म इतनी कुशलता से लड रह हैं।"[3]

---

1 मासरे एव लुम्बी द ट्रासफर आफ पावर 1942 7 भाग I 1970 प 110 112।
2 देखें धीरेन्द्रनाथ सन रिवाल्युशन बाई क्रेट प 215।
3 मासरे एव लुम्बी पूर्वोद्धृत भाग I प 113 14।

पुन लिनलिथगो को एक प्रेषण म 3 फरवरी 1942 म चर्चिल न लिखा ' हम सभवतया किसी दल के नता को एक तटस्थ व्यक्ति के रूप म गाधी व नहरू तथा ब्रिटिश सम्राट के बीच प्रश्न हल करने वाले व्यक्ति के रूप मे स्वीकार नही कर सकते । मुझे यह आशा है कि जब वह आपसे और आपकी कौसिल म मिल चुकेंगे तो वे सूचित दल वालो से नही मिलेंगे किसी भी स्थिति म उसे नहरू स न मिलने दिया जाय । जसा आपन लिखा है इलाहाबाद म उतरकर या किसी अन्य स्थान पर। ऐसी किसी भेंट को गुप्त नही रखा जा सकेगा और यह बात पूरे भारत मे बाजारो मे अखिल एशियाई भावना क साथ बीमारी की तरह फल जायगी ।'[1]

आस्ट्रेलिया के विदेश मत्री डा० इवाट न भी ब्रिटिश को इस मामले म आगे बढने को कहा और यही बात ब्रिटिश ससद के बहुत स सदस्यो न भी कही । 8 माच 1942 तक चर्चिल पर उस समय यह दबाव और बढ गया जब रगून का पतन हो गया जिसस इस मसले की महत्ता बढ गई । इस घटना के तीन दिन बाद चर्चिल को अपने पाव तले स धरती खिसकती नजर आई और उसने यह घोषणा की कि लाड प्रीवी सील सर स्टफड क्रिप्स जो सदन के नेता और समाजवादी हैं, एक एसे व्यक्ति हैं जिन्होने रूस को मित्र राष्ट्रो की तरफ युद्ध म लाने मे सफलता प्राप्त की है जिन्होंने इसके पूव ही दो बार भारत की यात्रा की है और भारतीयो म लोकप्रिय हैं और नहरू के मित्र हैं भारत जायेंगे और गतिरोध दूर करन का प्रयास करेंगे ।

इस तरह ये परिस्थितिया थी जिन्होने भारत के प्रति ब्रिटिश दृष्टिकोण को उदार बनाया जिससे क्रिप्स मिशन भारत भेजा गया ।

सर स्टफड क्रिप्स दिल्ली 22 माच 1942 को पहुँचे और तुरत गवनर जनरल तथा उनके कौंसिलरो से बातचीत प्रारभ कर दी । विभिन्न दलो के प्रतिनिधि उनसे मिले तथा 20 दिनो तक उनसे विचार विमश और बातचीत चलती रही । इस बातचीत म काग्रेस का प्रतिनिधित्व नहरू और मौलाना आजाद न किया लीग का प्रतिनिधित्व मि० जिन्ना ने किया । अछूतो का नेतत्व डा० अम्बेदकर और एम० सी० राजा ने किया । हिन्दू महासभा का नतत्व सावरकर तथा उदारवादियो का सर टी० बी० सप्रू तथा जयकर न किया । इसके अतिरिक्त अन्य छोटे छोटे समूहो और राजाओ से भी परामश किया गया । लोगो ने सोचा कि क्रिप्स गतिरोध दूर करने की कोई योजना लेकर आये हैं और उन्हे अन्तिम निणय का

1 वही भाग 1 प 114 ।

2 देखें आजाद, मौलाना ए के इण्डिया विन्स फ्रीडम प 47 ।

अधिकार प्राप्त है । पर इस बार भी पुन जैसे समय बीतता गया, आशायें निराशा मे बदलती गई और वे अतत समाप्त ही हो गईं । क्रिप्स गतिरोध समाप्त करने मे सफल नही हुये ।

क्रिप्स मिशन के प्रस्ताव

अपने साथ जो प्रस्ताव लेकर क्रिप्स आया और जिस सबध मे भारतीय नेताओ से बातचीत हुई उन्हे दो भागो मे बाटा जा सकता है (अ) वे जो लम्बी अवधि की व्यवस्था से सबधित थे, और (ब) वे जो अतरिम अथवा तुरन्त व्यवस्था के लिये थे ।[1]

लबी अवधि सबधित प्रस्ताव

(1) अधिराज्य स्थिति वाले नये भारतीय सघ का निर्माण जो ब्रिटेन तथा अन्य अधिराज्यो से सम्राट के प्रति स्वामिभक्ति के माध्यम से जुडा हो, पर जो हर भाति उनके ही समान स्तर का हो । गृह व वदेशिक मामलो मे वह सहायक स्थिति मे न हो ।

(2) युद्ध के तुरन्त बाद सविधान निर्मात्री सभा बने । सविधान निर्मात्री सभा की रचना निम्न तरह से की जाय । पर युद्ध के पूर्व ही यदि मुख्य सम्प्रदायो के नेता चाहे तो इसमे परिवर्तन कर सकते है (अ) प्रातीय चुनावो के परिणाम घोषित होने के तुरन्त बाद प्रात मे निचले सदन के सभी सदस्य एक इलेक्टोरल कालेज के रूप म सविधान निर्मात्री सभा का चुनाव करने के लिये आगे बढेगा जिसका आधार आनुपातिक प्रतिनिधित्व होगा । यह नई सभा सख्या मे इलेक्टोरल कालेज की एक दहाई होगी । (ब) भारतीय राज्यो को इस बात के लिये आमत्रित किया जायेगा कि वे अपनी सपूर्ण जनसख्या के उसी अनुपात मे प्रतिनिधि नियुक्त करें जिस अनुपात मे ब्रिटिश भारत मे नियुक्त किये गये हो ।

(3) ब्रिटिश सरकार इस सभा द्वारा रचित सविधान को स्वीकार करेगी और लागू करेगी । पर उसकी निम्न शर्तें होगी (अ) यदि भारत का कोई प्रात नये सविधान को स्वीकार करने को तैयार नही है तो उसे पुराने सविधान को बनाये रखने का अधिकार होगा । पर बाद म भी उसे यह अधिकार होगा कि वह नये सविधान को स्वीकार कर ले । (ब) सविधान को स्वीकार न करने वाले प्रातो को यदि वे चाहे तो यह अधिकार होगा कि वे एक अलग से अपना

1 स्टेफ्ड के प्रस्ताव 30 अप्रैल 1942 को प्रकाशित कर दिये गये । सीतारमय्या पूर्वोद्धत भाग 2 प 313 15 ।

सविधान तैयार करें जो उपरोक्त नियमा के अनुरूप होगा। उन्हे भी भारतीय सघ की तरह उसी तरह का अधिकार प्राप्त होगा। (स) ब्रिटिश सरकार और सविधान निर्मात्री सभा के बीच एक समझौता किया जायगा। इस समझौते म वे सभी बातें सम्मिलित होगी जो भारतीय हाथा म शक्ति हस्तातरण से सम्बद्ध हैं, जस जातीय और धार्मिक अल्पसख्यका को प्रदान की जाने वाली रक्षा। भारतीय सघ के राज्यो पर यह प्रतिबध नही लगाया जायेगा कि वे अपने भविष्य के सबध को ब्रिटिश कामनवेल्थ से जुडा ही रखें जिसका दूसरा अर्थ था कि सघ चाहे तो कामनवेल्थ से अलग भी हो सकता था। (द) राज्य हर बात के लिये स्वतत्र होंगे कि व नये सविधान को मानें या न मानें। सविधान न मानने पर वतमान सधि म परिवतन की व्यवस्था की नई परिस्थिति क अनुसार आवश्यकता होगी।

तात्कालिक व्यवस्था

अतरिम काल के लिये ब्रिटिश सरकार रक्षा की व्यवस्था का नियत्रण "विश्व युद्ध के प्रयास के एक भाग" के रूप म करेगी। पर व तुरत मुख्य दला के नेताओ को आमत्रित करके प्रभावी ढग स सहयोग लेंगे तथा सहयोगी "अपने देश कामनवल्थ और राष्ट्र सघ के विचारो के आधार पर काय करेंगे।"

एक मूल्याकन—क्रिप्स प्रस्ताव निश्चित रूप से अगस्त प्रस्ताव से एक आगे बढा हुआ कदम था। प्रथम, इसलिये कि यह अधिक स्पष्ट और सक्षिप्त था। द्वितीय, इसलिये कि देश को निश्चित आश्वासन दिया गया कि उसे अधिराज्य का स्तर प्राप्त होगा। तृतीय ब्रिटिश कामनवेल्थ से अलग होने की छूट भी प्रदान की गई। चतुथ, सविधान बनाने का उत्तरदायित्व पूणतया भारतीयो के हाथो मे सौपा गया। 'अगस्त प्रस्तावो मे भारतीयो को सिद्धात व विधि सबधी मसलो पर बातचीत का अवसर देना था जिसके आधार पर सविधान बनना था, पर वतमान प्रस्ताव ने एक निश्चित योजना ही प्रस्तुत की जिसमे युद्ध के बाद एक सविधान निर्मात्री सभा की रचना का निश्चय हुआ। यह भी तब जब सघप के पूव भारतीय यह काय न कर सकें। दूसरे शब्दा म यदि भारतीय सविधान पर राजी न होते तो भी ब्रिटिशो को भारत मे बने रहने का अवसर न मिलता क्योकि भारत को एक या अनेक इकाइयो मे स्वतत्रता प्राप्त ही होनी थी। पचम लीग जैसे अल्पसख्यक दलो को इससे अधिक सतोष हुआ क्योकि पाकिस्तान के सिद्धात को स्वीकार कर लिया गया।

पर फिर भी प्रस्तावो म बहुत से दोष थे जिसके कारण यह असफल हो

गया और भारत के किसी राजनैतिक दल ने इसे स्वीकार नही किया । अपने 11 अप्रैल 1942 के प्रस्ताव मे कांग्रेस काय समिति ने युद्ध मन्त्रिमडल के इन प्रस्तावो को अस्वीकार कर दिया जिसके निम्न कारण थ—(1) प्रस्ताव मुख्यतया भविष्य से जुडे थे अर्थात् सघष की समाप्ति के बाद, जबकि समिति का विचार था कि "एक स्वतन्त्र एव स्वाधीन भारत ही राष्ट्रीय स्तर पर देश की सुरक्षा व्यवस्था कर सकता है ।" (2) जहा भविष्य की स्वाधीनता प्रस्तावो मे अस्पष्टता थी, साथ की धारा और प्रतिबध ऐसे थे कि 'सच्ची स्वतन्त्रता का पता ही नही था ।' सविधान निर्मात्री सभा इस तरह रची गयी थी कि लोगो का आत्म निश्चय का अधिकार राज्यो के गैर प्रतिनिधित्व तत्वो के नीचे दब जाता । (3) वसे तो भारतीय राज्यो का प्रतिनिधित्व सविधान निर्मात्री सभा मे जनसख्या के आधार पर निश्चित किया गया पर राज्यो के लोगो को प्रतिनिधि चुनने का कोई अधिकार नही प्राप्त हुआ और न ही उनके मसलो पर उनसे मत लेने का प्रावधान ही किया गया चाहे उ ही के सबध मे ही कोई निणय क्यो न लिया जाना हो । भारतीय राजाओ के राज्य की 9 करोड की जनसख्या "निर्जीव वस्तु की भाति राजा की दया पर छोड दी गई ।" (4) राज्यो को सघ स अलग हो जाने का प्रदत्त अधिकार दुर्भाग्यपूण था । 'ऐसे राज्य भारतीय स्वतन्त्रता के विकास मे व्यवधान बन सकते थे, ऐसे स्थानो पर विदेशी अधिकार फलने की सभावनायें थी और ऐसे स्थानो पर विदेशी सेनाओ के आ जमने की सभावना थी जो राज्यो और भारत दोनो की स्वतन्त्रता के लिये एक आघात थी ।" (5) पहले से ही स्वीकृत प्रातो के लिए अलग होने के नवीन सिद्धात भारतीय एकता की विचारधारा के लिये एक गभीर आघात था और अन्य प्रातो मे इस बीमारी को फला सकता था तथा अन्य प्रातो के भारतीय सघ मे सम्मिलित होने म कठिनाइया उत्पन्न कर सकता था । फि भी इसम सदेह नही है कि यह भारतीय स्वतन्त्रता और एकता के प्रति समर्पित था ।

दूसरी ओर मुस्लिम लीग ने इन प्रस्तावो को अन्य कारणो से अस्वीकार कर दिया । ऐसा कहा जाता है कि जिन्ना ने लीग की स्वीकृति के लिए एक प्रस्ताव तैयार किया, पर इस सबध मे उन्होंने कांग्रेस की प्रतिक्रिया जानिन चाही । जब इसे कांग्रेस न अस्वीकार कर दिया तो उन्होंने प्रस्ताव फाड डाले और एक नया प्रस्ताव उपस्थित किया जिसमे निम्न आलोचनायें थी । लीग काय समिति ने अपने 11 अप्रैल 1942 के प्रस्ताव मे भारत मे दो या दो से अधिक स्वतन्त्र राज्यो की स्थापना के आधार पर पाकिस्तान रचना की सभावना पर आभार व्यक्त करते हुये भी इन बातो के लिए क्षोभ व्यक्त किया, (1) प्रस्तावो मे सुधार की सभावना नही है और इसी कारण अन्य प्रस्ताव

आमंत्रित नहीं किये गये हैं, (2) ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य घोषणा में यह था कि एक भारतीय संविधान तैयार किया जाय जिससे एक से अधिक राज्यों के निर्माण की बात पर्दे के पीछे चली गई और काल्पनिक लगने लगी, (3) संविधान सभा के प्रस्ताव का मूल उद्देश्य एक भारतीय संघ की रचना थी। इस कारण मुसलमानों को इस संविधान सभा में सम्मिलित करना उचित नहीं था क्योंकि लीग ने अंतिम रूप से यह निश्चय कर रखा था कि भारतीय संविधान की समस्या का एकमात्र हल भारत का कई स्वतंत्र भागों में विभाजन ही है (4) संविधान निर्मात्री सभा के चुनावों में मुस्लिम अधिकारों की रक्षा हेतु अलग निर्वाचन की व्यवस्था नहीं की गई थी, (5) बस तो पाकिस्तान के निर्माण की बात स्वीकार कर ली गई थी, पर जो विधि अपनाने का निश्चय किया गया था वह इसके विरोध में जाता था क्योंकि प्रस्तावों में राज्य से अलग होने का अधिकार पूर्व निर्मित प्रांतों को प्रदान किया गया था जो समय समय पर प्रशासकीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाई गई थी। पर लीग की मांग का आधार साम्प्रदायिकता का सिद्धांत था जो पाकिस्तान के निर्णय का आधार था (6) जहां तक भारतीय राज्यों का संबंध था यह उनके ऊपर था कि वे भारतीय संघ में बने रहें या उससे अलग हो जायें, (7) जहां तक सम्राट और भारतीय संघ के बीच समझौते का प्रश्न था, प्रस्ताव में यह नहीं बताया गया था कि यदि दोनों के बीच समझौता नहीं होगा तो क्या किया जायेगा और न इस संबंध में ही कोई प्रावधान था कि जब भेदभाव पैदा होगा तो नई परिस्थितियों में भारतीय राज्यों की परिवर्तित संधि व्यवस्था के लिये क्या किया जायगा, और (8) अंतरिम व्यवस्था के संबंध में प्रस्ताव में अनिश्चयता थी।

पिछड़े वर्ग के लोगों ने भी प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। उनका तर्क था कि उनके हितों को आवश्यक सुरक्षा नहीं प्रदान की गई है। उनके अनुसार इस योजना को पूर्ण रूप से अस्वीकार या स्वीकार किया जा सकता था, उसमें बातचीत का अवसर भी नहीं था तथा अगस्त प्रस्ताव के संबंध में की गई घोषणा अनावश्यक थी। इस तर्क में यह कहा गया था कि "वर्तमान घोषणा का उद्देश्य किसी को उसके स्थान से हटाना नहीं है बल्कि इन घोषणाओं को स्पष्ट रूप से आरोपित करना है और भारत के लोगों को यह बताना है कि युद्ध मंत्रिमंडल को ऐसा करने में कितनी रुचि थी।

अन्य दलों में, उदारवादियों ने इस प्रस्ताव में भारत की प्रतिष्ठा और सुरक्षा का हनन देखा। हिंदू महासभा ने इसे इसलिए अस्वीकार कर दिया क्योंकि इसमें पाकिस्तान की रचना को स्वीकार कर लिया गया था। सिखों को डर था कि पंजाब का मुस्लिम-बहुल इलाका पाकिस्तान में न चला जाय जिस

करे पर जैसा लीग न कहा यह नही स्पष्ट किया गया था कि यदि सधि करने वाले दोनो पक्षो म कोई भेदभाव पदा हुआ तो उसका निराकरण कौन करगा। यदि ऐसा निणय ब्रिटिश सरकार का करना था तो निश्चित रूप से भारत पूर्णतया स्वतन्त्र राष्ट्र नही था।

प्रो० शास्त्री ने ठीक ही कहा है कि पूण योजना 'अतिशीघ्रता म लाई गई थी और इसम ब्रिटिशा की उस आदत का परिचय मिलता था जिसके विषय म किंग्सले मार्टिन ने ठीक ही विवरण दिया था कि व उन्ह उदारता से क्षमा करने की कला मे माहिर हैं जो गभीर गल्तिया करत हैं।"[1] क्रिप्स के एक मित्र ने भी अपनी धारणा व्यक्त करत हुए कहा कि, "यह समझ म नही आता कि क्रिप्स जसा व्यक्ति भी शतान की वकालत करने को तैयार हो गया।"[2]

साथ ही प्रस्तावा का अभाव व वह तरीका जिस तरह से इसे भारत पर लादने की चेष्टा की गई इसकी असफलता का कारण था। सर क्रिप्स को इस बात के लिये बडी प्रतिष्ठा मिली थी कि व रूस को मित्र राष्ट्रा की ओर से लडन के लिये तैयार करन म सफल हुये थे। उसके समझान के ढग तथा भारत से उसके पुरान सबधा स यह पूण आशा थी कि वह योग्य तरीके स भारतीय समस्या का हल निकाल लेगे पर वास्तव म उनकी जल्दबाजी, अस्पष्टता और बात बात मे अनिश्चय ने सारी आशाओ पर पानी फेर दिया। जब पहली बार उ होने प्रस्तावा को परिभाषित किया तो उस समय का चित्र बडा आकषक था। इस सबध म काग्रेस प्रेसीडेन्ट मौलाना आजाद न लिखा, 'प्रस्तावा का मूल परिणाम यह है कि वतमान कायकारिणी परिषद म ब्रिटिश सदस्या के स्थान पर अब केवल भारतीय होगे। ब्रिटिश अधिकारी अब कौंसिल के सदस्य न रहकर केवल सचिव बने रहगे।' पर युद्ध के पूव सरकार न बदलेगी यह भी प्रस्तावित था। युद्ध के तुरन्त बाद भारतीय स्वतन्त्रता का सपूण प्रश्न हाथ में लिया जाना था। इसके अतिरिक्त इस तरह से बनी कायकारिणी परिषद म वायसराय सविधान के अध्यक्ष के रूप म वैसे ही काय करेगा जस इग्लैण्ड म सम्राट। इडिया आफिस यथावत बना रहेगा और उसका सचिव अन्य अधिराज्य सचिवा की तरह शक्ति प्राप्त किय रहेगा। ये सारे स्पष्टीकरण मौलाना आजाद को क्रिप्स ने प्रथम साक्षात्कार मे दिये। पर दूसरे साक्षात्कार मे उन्होने इन सभी आश्वासना से हाथ खीच लिया। उदाहरणाथ, कायकारिणी परिषद के सबध मे उन्होने दूसरे साक्षात्कार म बताया कि वह

1 शास्त्री पूर्वोल्लिखत प 354।

2 और विस्तार के लिये देखिये ग्वर एव अप्पादोराई पूर्वोल्लिखत, भाग 2।

केवल यह आशा करें कि परिषद "युद्धकाल म भी मत्रिमडल की तरह काय करेगी।"[1] रक्षा के मामले मे, क्रिप्स बडी सोच विचार क बाद एक भारतीय सुरक्षामत्री को नियुक्त करन को तैयार हो गया। पर इस मत्री को विदेशी मिशनो स मिलने की व्यवस्था, कैण्टीना, छपाई, स्टेशनरी आदि का काय ही सौंपा गया, सुरक्षा का कोई मामला नही।

मौलाना आजाद बहुत परेशान थे कि आखिर क्रिप्स न अपनी दृष्टि मे ऐसा परिवतन क्यो कर लिया। यहाँ मौलाना की बात विस्तार म उद्धत है, "एक बात तो यह कही जा सकती है कि सर स्टेफड को यह आशा रही होगी कि वह अपना प्रस्ताव काग्रेस स समझा बुझाकर मनवा लेगा, भले ही इससे स्थिति मे कोई परिवतन नही आता था। इसी कारण उसन प्रारभ मे स्पष्ट आश्वासन दिये थे जिससे उसके आन का अनुकूल प्रारभिक प्रभाव पडे। पर जब उसके प्रस्तावो की विस्तार से परीक्षा की गई और उससे इस पर विस्तार म तक वितक किया गया तो उसे लगा कि उसे सावधान रहना चाहिए तथा उसे ऐसी आशायें भारतीयो म नही जगानी चाहिय जिसे पूरा करन की क्षमता ही उसमे नही है। एक अन्य तक यह दिया जाता है कि भारत सरकार की अन्दरूनी व्यवस्था ने उसे प्रभावित करना प्रारभ कर दिया था। वह लगातार वायसराय और उसके सहायको से घिरा रहता। सभवत यह स्वाभाविक था कि उनका दृष्टिकोण उसके विचारो पर अपना रग चढा देता। तीसरा तक यह दिया जाता है कि इस बीच दिल्ली और लदन के बीच समस्या के सबध मे विचार का आदान प्रदान हुआ और ब्रिटिश युद्ध मत्रिमडल ने उसके पास कुछ नई सूचनायें भेजीं जिसम उसस कहा गया कि वह आवश्यकता स अधिक आगे न बढे अन्यथा उस इसका उत्तरदायी होना पडेगा।" भारत के भूतपूव गवनर जनरल और अमरिका म इग्लण्ड के राजदूत लाड हेलीफाक्स का भाषण इस मसल पर महत्वपूण था। उसन वहा यह चेतावनी दी कि यदि मिशन को सफलता नही मिली तो भारत को शक्ति का हस्तातरण ही नही किया जायेगा।

मौलाना आजाद न उपरोक्त विवरण देत हुय यह निष्कष निकाला है कि "उपरोक्त सभी बातो न परिस्थितियो के परिवतन मे सभवतया सहयोग दिया।" पर क्रिप्स के विषय मे उन्होने लिखा है कि, 'क्रिप्स एक वकील थ, इस कारण उनकी आदत चीजो को अधिक आकषक ढग स प्रस्तुत करन की थी जो तथ्य से कोसो दूर होते थे मैंन बाद मे सुना कि कान्फ्रेन्सो म भी

1 आजाद मौलाना ए के इण्डिया विन्स फ्रीडम प 48 51।

कभी कभी वे अपनी सीमा को लाघकर आगे बढ जाते थे।"[1]

क्रिप्स ने आवश्यकतानुसार काग्रेस और उसके अध्यक्ष के विरुद्ध बहूदे आरोप लगाने मे भी कोताही नही की। पर यह उसने तब किया जब उसे लगा कि वे उसके प्रस्तावा को स्वीकार नही कर रह हैं। उसने उनके ऊपर एक अवसर पर यह आरोप लगाया कि वे प्रेसीडेन्ट रुजवल्ट के व्यक्तिगत सहायक लुई जान्सन स सहायता लेने का प्रयास कर रहे हैं। जब कुछ समाचार पत्रा म काग्रेस पक्षीय दृष्टि प्रकाशित करते हुय उसके प्रस्तावा की आलोचना हुई तो क्रिप्स न मौलाना आजाद का आहत करन का प्रयास करते हुये कहा कि 'हिन्दू प्रस' प्रस्तावा का स्वागत नही कर रहा है, जब कि यहा यह जाना चाहिए था कि प्रेस का एक वग इसका स्वागत नही कर रहा है। मौलाना ने लिखा है कि 'हिन्दू प्रेस का यह सदभ हमारी समझ म नही आया। मुझे ऐसा लगा कि सभवतया वह हिन्दू प्रेस' पर इसलिए जोर दे रहा है क्योकि मैं एक मुसलमान हूँ।"

सच ता यह था कि क्रिप्स की भारतीय प्रेस के प्रति दृष्टि कठोर थी। प्रो० लास्की न इस सबध म लिखा है सर स्टेफर्ड के लिये लेन और देन' की मनोदशा म जाना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विनाशकारी था, और वापसी पर यह सूचित करना कि हमने भेंट स अपना हाथ धो लिया है। इसस यह निश्चित रूप से दिखता था कि मित्र राष्ट्रो के बीच प्रचार की एक कला की शरण ली जा रही है जहा अमेरिका फिलीपाइ स के सबधा की तुलना ब्रिटेन भारत सबधा म विरोधाभास से की जाती थी।"[3]

---

1 आजाद ए के पूर्वोन्धत प 52 53।

2 वही प 54 55।

3 लास्की पूर्वोन्धत, प 362। और विस्तार के लिये देख शर्मा ज एस पूर्वोन्धत प 589 613।

7

'भारत छोडो' आन्दोलन

परिस्थितिया

11 अप्रल 1942 को एकाएक क्रिप्स प्रस्ताव वापस ले लिये गये। क्रिप्स मिशन का नाटक अब केवल प्रचार लगने लगा जिसमे भारत की मागो की अनदेखी कर दी गई। इस बात को भारत के राज्य सचिव द्वारा उसके 10 जून 1942 के पत्र म भी स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया। उसने वायसराय को लिखा "क्रिप्स मिशन अब तक उसके (चर्चिल) मस्तिष्क की पृष्ठभूमि मे चला गया था। उसके लिए मुख्य बात यह थी कि इसका अच्छा प्रभाव अमेरिका मे पडा है, शेष के लिए वह परेशान नही है। सच मे वह इस समस्या को पहले की ही भाति नापसन्द करता था।"[1] पर इग्लैड मे जनमत को मूक नही बनाया जा सकता था और बी० बी० सी० के दृष्टिकोण से परेशान होकर लिनलिथगो ने राज्य सचिव को लिखा 'मैं इस बात से इधर बहुत परेशान हूँ जो बी० बी० सी० ने गाधी और नेहरू की बातो को इतनी महत्ता दी है इससे पूरे विश्व म यह प्रभाव पडता है कि नेहरू और गाधी अखिल भारत की ओर से बोलने के अधिकारी है और हमारे स्वाभाविक उत्तराधिकारी ह मेरी राय है कि यदि यह सम्भव नही है कि बी० बी० सी० को इस प्रचार से रोका जा सके और वह शत्रु साधनो की तरह यह काम करते रहे, तो कम से कम यह तो कर ही दिया जाय कि उनके ऐस समाचारो की छानबीन कर ली जाया करे तथा उनको कम से कम प्रचार का अवसर प्रदान किया जाय।' विश्व के अन्य क्षेत्रो मे ब्रिटिश भारत की गदी तस्वीर प्रस्तुत करने म सफल हो जाते और व यह तक देते कि भारत के विभाजित लोग तुरत स्वतन्त्रता प्राप्ति के योग्य नही है, भारत के अदर स्थिति यह थी कि क्रिप्स मिशन का परिणाम निराशापूर्ण था। काग्रेस के इस प्रयास को, कि भारत को पुनर्गठित करके जापानियो से प्रभावपूर्ण ढग से लडने को तैयार किया जाय, धक्का लगा और देश के सामान्य लोगो मे निराशा फल गई जो देश के लिए पूर्णतया हानिकर सिद्ध हो सकती थी। मौलाना आजाद

---

1 मानसरे और लम्डो द ट्रासफर आफ पावर 1942 47 भाग 2 पृ 198।
2 वही प 276 77।

ने इस संबध में लिखा है कि "ब्रिटिश का विरोध इतना तीव्र हो गया कि वे भारत पर जापानियो के विजय के परिणाम की कल्पना करना भी भूलने लगे।' इसीलिये जवाहरलाल को यह आवश्यक लगा कि 'जनता की इसी निष्क्रियता की भावना को अपरवशता और प्रतिरोध की भावना में परिवर्तित किया जाय। वस यह अपरवशता की भावना ब्रिटिश अधिकारियों के विरुद्ध जायगी जो एक आक्रमणकारी के विरुद्ध प्रतिरोध जैसी दिखेगी। आज्ञाकारिता और सेवा भाव दूसरे के प्रति उसी भाव को जन्म देगी और इस तरह अपमान और पतन की स्थिति आ जायेगी।'[1]

इसी बीच भारत के विरुद्ध जापानी खतरा बढ गया और बंगाल पर उस का आक्रमण निश्चित लगने लगा। गांधी को किसी तरह इस समय यह विश्वास हो गया कि यदि ब्रिटिश इसी समय भारत छोड दें तो जापानियों के भारत पर आक्रमण का कोई कारण नहीं रहेगा। इसीलिय यह प्रस्तावित किया गया कि कांग्रेस तुरंत 'भारत छोडो' का एक प्रस्ताव पारित करे। गांधी ने लुई फिशर से कहा भी, "वापसी और गैर वापसी के बीच कोई स्थान नहीं है। सचमुच मैं ब्रिटिश के पूर्ण शारीरिक वापसी की माग नहीं कर रहा हूँ।"[2] माग केवल यह थी कि तुरंत सत्ता हस्तांतरण कर दिया जाय। यदि ऐसा न किया गया तो कांग्रेस ब्रिटिश के विरुद्ध एक अहिंसात्मक आन्दोलन चलायगी। गांधी का संभवत यह विश्वास था कि जापान भारत के दरवाजे खटखटा रहा है। ऐसी स्थिति में ब्रिटिश इस आदोलन के विरुद्ध कोई कदम उठाने के स्थान पर कांग्रेस से समझौता कर लेंगे।

कांग्रेस प्रस्ताव

इसीलिए 14 जुलाई 1942 को कांग्रेस कार्य समिति की बैठक हुई और इसके अध्यक्ष मौलाना आजाद के इस विचार के बावजूद कि 'अहिंसात्मक आदोलन नहीं छेड़ा जा सकता और न ही वर्तमान परिस्थितियों में चलाया ही जा सकता है"[3] और यह कि यदि तत्संबधी प्रस्ताव पारित भी कर दिया जाय तो सरकार कांग्रेसी नेताओं के विरुद्ध कठोर कदम उठायेगी, प्रस्ताव पारित कर दिया गया। प्रस्ताव में निम्नलिखित मुख्य मुद्दे रखे गये (1) कांग्रेस ब्रिटिश विरोधी भाव का परित्याग कर उसके प्रति सदेच्छा के लिए तैयार है तथा मित्रराष्ट्रों के पक्ष में युद्ध के मसलों पर भी उसका सहयोग करने को तैयार है

1 आजाद इंडिया विंस फ्रीडम पृ 71 72।

2 वही।

3 वही, पृ 76।

पर यह तभी जब "भारत का स्वतत्रता की किरण की अनुभूति हो ।" (2) भारत की साम्प्रदायिक समस्या का हल तभी होगा जब ब्रिटिश इस देश को छोडकर चले जायेंगे । (3) "यह प्रस्ताव करके कि ब्रिटिश भारत को छोडकर चले जाय, काग्रेस की इच्छा यह नही है कि ब्रिटेन और मित्रराष्ट्रो के युद्धकाय मे बाधा डाली जाय ।" इसके प्रमाण के लिए काग्रेस इस बात से सहमत है कि मित्र राष्ट्रा की सना भारत मे रखी जाय यदि वे ऐसा करना चाह जिससे कि जापानियो के विरोध या आक्रमण की रोकथाम की जा सके तथा चीन की रक्षा व सहायता की जा सके ।" (4) यदि इस अपील का कोई प्रभाव नही होता तो मजबूरन काग्रेस को बाध्य होकर गाधी के नेतृत्व मे अहिसात्मक आदोलन करना पडेगा जिससे कि राजनतिक अधिकार और स्वतत्रता की प्राप्ति हो सके ।" (5) अखिल भारतीय काग्रेस समिति 7 अगस्त को फिर बैठक करेगी और इस सबध मे अतिम निणय लेगी ।

अखिल भारतीय काग्रेस समिति ने अपनी बठक मे उपरोक्त काय समिति के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए 7 अगस्त को कुछ और बातें स्पष्ट की । इसमे कहा गया कि (1) भारत की स्वाधीनता की घोषणा के समय भारतीय जनता के सभी महत्वपूण वर्गों के प्रतिनिधि अस्थायी सरकार बनायेंगे । (2) इसका प्रमुख काय मित्र राष्ट्रो के सहयोग से भारत की रक्षा होगा और यह जनता के हित म काय भी करेगी । (3) अस्थायी सरकार एक सविधान सभा की योजना बनायेगी जो सभी के स्वीकार करने योग्य सविधान की रचना करेगी । (4) ब्रिटिश से सत्ता हस्तातरण की एक और अपील करन के बाद समिति ने ब्रिटिश के विरुद्ध अहिसात्मक आदोलन प्रारभ करने का निश्चय किया । आवश्यकतानुसार इसका नतृत्व गाधी को सौपा जा सकता था ।[1]

सकट अवक्षेपित

काग्रेस कायसमिति द्वारा जब पहले यह प्रस्ताव पारित किया गया तो गाधी ने 15 जुलाई को विदेशी पत्रकारो के समक्ष यह कहा कि यदि तुरत शक्ति का हस्तातरण नही किया जाता और काग्रेस अपना आदोलन प्रारभ करती है तो यह ब्रिटिशो के विरुद्ध एक अहिसात्मक आदोलन होगा । गाधी इस बात से आश्वस्त थे कि चूकि जापानी भारत का दरवाजा खटखटा रहे थे इस कारण जो भी कहा जायगा सरकार सकट को अवक्षेपित नही करेगी । पर गाधी की गोली निशाना पुन चूक गई जैसा इसके पूव भी कई बार हुआ था । प्रेस सम्मेलन के बाद मीराबेन (मिस स्लेड जो एक ब्रिटिश ऐडमिरल की पुत्री थी

1 नाभन डी पूर्वोद्धृत भाग 2 पृ 120-24 ।

और गाधी की शिष्या हो गई थी उन्हे ही यह नाम प्रदान किया गया था) को वायसराय के पास यह मसला समझाने को भेजा गया। पर यह अति आश्चर्यजनक बात थी कि काग्रेस जब—चाहे हिंसात्मक हो या अहिंसात्मक—विद्रोह की बात कर रही थी, उस समय वायसराय ने मीराबेन से मिलने तक से इन्कार कर दिया। पर गाधी को अब भी विश्वास था कि वायसराय सकट बढायेगा नही और 8 अगस्त 1942 को अखिल भारतीय काग्रेस समिति ने अपना प्रस्ताव पारित कर दिया।

पर जैसा मौलाना आजाद और जवाहरलाल ने सोचा था, दु खद घटना घटी। 'भारत छोडो' प्रस्ताव की प्रतिक्रियास्वरूप जो अखिल भारतीय काग्रेस समिति ने 9 अगस्त की प्रात पारित किया था गाधी सपूर्ण काग्रेस हाईकमान सहित जिनमे जवाहरलाल, मौलाना आजाद आचार्य कृपलानी, आसफअली, जी० बी० पत और अन्य भी थे, एक ट्रेन मे बठाकर जेल भेज दिये गये। गाधी को पूना मे आगा खा महल मे रखा गया जबकि अन्य लोगो को बम्बई प्रात मे अहमदनगर जेल मे भेजा गया। डा० राजेन्द्र प्रसाद को जो किन्ही कारणो से अखिल भारतीय काग्रेस समिति की बैठक मे सम्मिलित नही हुये थे पटना मे रोककर कद कर लिया गया। इन सभी को 15 जून 1945 तक के लिये जेल मे डाल दिया गया।

काग्रेस की कार्यवाही को मुस्लिम लीग ने पसद नही किया, जिसने इस आदोलन को सरकार पर एसा दबाव डालनेवाला आदोलन बताया, जो हिन्दू अल्पतत्र को शासन सौंपवाना चाहती थी, जिससे ब्रिटिश को मुसलमानो के प्रति अपने उत्तरदायित्व वहन का अवसर न रह जाता। लीग ने मुसलमानो को निर्देश दिया कि वे इस आदोलन से अलग रहे। हिन्दू इसके प्रति शिथिल रहे और जेल जाना स्वीकार नही किया। साम्यवादियो को भय था कि काग्रेस आदोलन युद्ध मे मित्रराष्ट्रो की स्थिति को बिगाड देगा। केवल समाजवादी दल ने इसका समर्थन किया पर वे गुप्त रूप से ही इसका समर्थन करने को तैयार हुये।

पर जन सामान्य पर इसका प्रभाव बिजली के करेण्ट जैसा हुआ। नेताओ के जेल मे होने के कारण अहिंसा के आधार पर चलाया गया आदोलन भयानकता की पराकाष्ठा तक हिंसात्मक रूप लेने लगा। एसी ही आशा भी थी। हर जगह छात्र मजदूर, गृहणिया, व्यापारी और अन्य लोग अपने नेताओ के जेल जाने के विरुद्ध उद्वेलित हो उठे। जुलूस निकलने सभायें होनी और हडतालें प्रारभ हो गइ। दिल्ली, बम्बई मद्रास, अमृतसर और अन्य तमाम नगरो मे जनजीवन ठप हो गया। सरकार की प्रतिक्रिया अत्यधिक क्रूर थी पर इसके विरुद्ध जनता की प्रतिक्रिया भी उसी स्तर की थी, पर नि शस्त्र लोग अधिक

समय तक लड नही सके । लाठी, हवाई जहाज से मशीनगना की गोली की बौछार, व्यक्तियो को क्रूरतापूर्ण दड, नारियो की खुले आम बेइज्जती आदि ने व्यक्तियो को असहाय करके शात कर दिया और आदोलन भूमिगत हो गया ।

सरकार ने हानि का जो मूल्याकन किया वह कही-कही बढाकर बताया गया था और कही-कही कम करके । इसमे कहा गया कि 940 लोग मारे गये, 1630 लोग गोली चलाने मे घायल हुये, 60229 लोग कैद किये गये और 18000 लोग पकडे गये । पटना, नदिया, भागलपुर, मुगेर, तामलुक और तलचेरा म बम बरसाये गये और 60 स्थाना पर सेना बुलाई गई । दूसरी ओर 318 स्टेशन जलाये या नष्ट किये गये, 12 हजार स्थानो पर टेलीफोन और तार सबध काटे गय, 90 डाकखाने पूर्णतया नष्ट कर दिये गये, 252 को गभीर हानि पहुचाई गई और 633 को कम हानि पहुची । 59 रेलगाडिया पटरी से उतारी गई । । धन, हथियारो, रुपयो आदि की सपूर्ण हानि लगभग 44 लाख रुपये की थी ।[1] अन्य स्थाना के अतिरिक्त बगाल का चदा जिला, उडीसा का बालासोर जिला, यू० पी० के पूर्वी जिलो, आसाम, बिहार तथा उडीसा का समुद्रतटीय क्षेत्र सरकार के क्रूर अत्याचारा का अत्यधिक शिकार हुआ ।

हिंसा का उत्तरदायित्व

इस सबध मे विचारो म मतभेद है कि आखिर इस हिंसा के लिए कौन उत्तरदायी था जबकि काग्रेस इस आदोलन को अहिंसात्मक रूप मे ही रखना चाहती थी । गाधी के अधानुगामी ता यही कहगे कि सरकार ने ही ऐसा किया । यदि गाधी ने अपने जेल जाने के पूव अपने अनुगामियो को यह निर्देशन दिया होता तो बात और ही होती । इसमे कहा गया था, "स्वतन्त्रता के सभी अहिसावादी सैनिक एक नारा कागज या कपडे के टुकडे पर लिख डाले 'करो या मरो' और इसे कपडे मे टाक ले जिससे कि यदि वे सत्याग्रह करते हुये मर जाय तो उसे अन्य तत्वो के बीच पहचाना जा सके जो अहिसा को नही स्वीकारते ।

पर दुख इस बात का है कि शब्द प्राय वह अथ सामने लेकर खडे हो जाते हैं जिसके विषय मे कि हम सोचते भी नही, और इस अवसर पर भी यही हुआ जब लोगो ने करो या मरो' को एक नारा ही मान लिया । इतना ही

1 देखें गोविन्द सहाय 42 रिबेलियन प 21 सीतारमय्या पूर्वोद्धत भाग 2 प 376 77 ।

नही गाधी ने अब की बार कहा था कि अब की बार स्वेच्छा से जेल जाने की विधि दूसर तरह की होगी। कायकर्ता जेल जान का विरोध करेंगे और वे जेल तभी जायग जब सरकार उ ह एसा करन के लिए बाध्य करगी।[1] गाधी के य शब्द कि सरकार के उत्तर न दन पर काग्रस एक अहिंसात्मक शाति करेगी सचमुच तुरत रग लाई और काग्रेस की मांगो के सामने नतमस्तक होन को कौन कहे वायसराय ने मीरा बेन स मिलने तक से इकार कर दिया।

सच मे यह कहना गलत नही होगा कि गाधी ने परिस्थिति का गलत मूल्याकन किया और मौलाना आजाद की चेतावनी के बावजूद व इस विश्वास पर अडे रहे कि वायसराय नताओ को कैद नही करेगा और न ही सकट को और बढ़ायेगा। जब वायसराय न मीरा बेन से मिलना अस्वीकार कर दिया तभी गाधी को यह सोचना चाहिए था कि उनकी बातो का किस पर कितना प्रभाव पड रहा है और अखिल भारतीय काग्रस के प्रस्ताव को पारित कर दिये जान के बाद वायसराय क्या करेगा। पर ऐसा हुआ नही। एक तटस्थ पय वेक्षक के लिये यह आशा करना सचमुच असभव है कि काग्रेस के अहिंसावादी आदोलन के उत्तर म वायसराय नेताओ स शातिपूण ढग स बातचीत हेतु प्रतीक्षारत रहेगा। पर गाधी अपने सिद्धात पर अडे रहे और अपन जेल जाने के 1 घटे पूव तक 9 अगस्त को उन्होने महादेव दसाई स कहा, 'गत रात के मेरे भाषण के बाद वे मुझे बदी नही बनायेंगे।"

सरकार निकट से परिस्थिति की ओर निगाह लगाय हुई थी और उसने 14 जुलाई के काग्रस काय समिति के प्रस्ताव के उपरात ही कडी कायवाही की एक योजना बना ली थी। यह इस बात से सिद्ध है कि वायसराय ने प्रातो के गवनरो को अलग-अलग एक पत्र तत्सबध म भेजा था। अपन 3 अगस्त 1942 के भारत के राज्य सचिव को प्रेषित पत्र मे वायसराय ने यह सूचित किया था कि किस तरह उसने प्रातीय गवनरो की द्विस्तरीय योजना को अप नाने का निर्देश दिया है जिससे कि काग्रेस के प्रस्ताव से उत्पन्न स्थिति का मुकाबला किया जा सके। योजना के प्रथम चरण के अतगत व कायवाहिया थी जो काग्रेस काय समिति के प्रस्ताव को स्वीकृति मिलने से पूव की जानी थी, जिसके अतगत भारत के अदर और बाहर प्रचार पर अधिक समय दिया जाना था जिससे कि पक्ष म जनमत तैयार हो सके और इस प्रस्ताव के विरुद्ध कठोर कायवाही के लिए एक वातावरण तयार हो सके। बिना पर्याप्त सशोधन के काय समिति के प्रस्ताव का अनुमोदन (और कोई भी सशोधन तब तक पर्याप्त नही समझा जायेगा जब तक कि स्पष्टतया जन आदोलन की बात इससे

1 देखें आजाद ए के पूर्वोद्धत प 74।

निकाल नही दी जाती) द्वितीय चरण की कायवाही का प्रारभ करेगा। जैसे ही यह काय सपादित हो बम्बई सरकार भारत सरकार को प्रातीय सरकारो को चीफ कमिश्नरो को और राजनैतिक रेजीडेन्टो को तार स सूचना भेजेगी जो कोड शब्दो मे होगा। पर तब तक कोई कायवाही नही होगी जब तक कि भारत सरकार उपरोक्त सभी स्थानो पर कोड शब्दो मे तार नही भेजती। भारत सरकार से तार प्राप्त करने के बाद—

(अ) रक्षा अधिनियम 26 के अतगत बम्बई सरकार गाधी और काय समिति के सभी सदस्यो को कैद कर लेगी।

(ब) प्रत्यक प्रातीय सरकार क्रिमिनल लॉ अमेडमेट के अतगत अपने क्षेत्र के काग्रेस काय समिति, अखिल भारतीय काग्रेस समिति और प्रादेशिक काग्रेस समिति को ले आयेगी। पर भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस को इसके अतगत नही लाया जायेगा। प्रातीय सरकारो को आवश्यकतानुसार अन्य काग्रेस समितियो या काग्रेस से सबद्ध समितियो, काग्रेस समाजवादी दल के विरुद्ध भी कायवाही करने का अधिकार होगा।

(स) प्रत्येक प्रातीय सरकार को किसी दफ्तर या किसी धनराशि को छीनने का अधिकार होगा या किसी ऐसे व्यक्ति का कैद करने का अधिकार होगा जो लोगो को सगठित करके यह आदोलन तीव्र कर सकते हो।

यदि काय समिति का कोई सदस्य बम्बई की बठक मे जानबूझकर नही आता है सहानुभूति भी नही रखता तो उस तुरत कैद न किया जाय पर अन्य लोगो के कैद होने पर उसकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा की जाय। यदि कोई व्यक्ति परिस्थितिवश बैठक मे भाग न ले सका हो तो उसे उसके प्रात मे ही कैद कर लिया जाय।

गाधी को रक्षा अधिनियम की धारा 26 के अतगत कैद करके बम्बई प्रेसीडेन्सी मे रखा जाय महादेव देसाई, मीराबेन और डा० सुशीला नैय्यर (महिला डाक्टर) को गाधी के साथ रहने की अनुमति दी जायेगी। पर शत यह है कि वे आवागमन के प्रतिबधो को स्वीकार करें।"[1]

यह भी प्रस्ताव था कि गाधी और उनके कुछ साथियो को उगाडा, अदन या न्यासालैंड भेज दिया जाय जिससे भारत की जनता की पहुच वहा न हो सके और इससे उनकी समझ से सभवत समस्या का समाधान ठीक से हो जायेगा। पर वायसराय परिषद के भारतीय सदस्य इसके लिये तयार नही

1 मानसरे एव न्मुन्वी पूर्वोद्धत भाग 2 प 534 36।

सभावना करता है, निश्चित ही उन्हें परामश देगा कि वे गाधी व नहरू से मिलें। इस तरह का दवाव हमारी सरकार के लिए वडा हानिकार होगा। इसके अतिरिक्त ऐसे यात्री साक्षात्कारा और व्यक्तिगत वातचीत म गैर जानकारी पूण विचारा द्वारा हम अत्यधिक हानि पहुचाते हैं। यह अधिकारिया से वाय सराय ने यह निवेदन किया कि अमरिका के इन भावुक यात्रियों की भारत यात्रा पर अकुश लगाया जाय जिससे कि हम अपना काय सुगमतापूवक कर सकें।"[1]

गाधी की भूख हडताल और जेल से मुक्ति

कांग्रेस नेताओं की गिरफ्तारी के थोडे दिना के ही भीतर देश की स्थिति सामान्य हो गई। अब ब्रिटिशा ने देश और विदेशा म यह प्रचार प्रारभ किया कि देश मे सारी हिंसा फलाने का उत्तरदायित्व गाधी का था। जब गाधी को इसका पता चला, ता वे दु खी हुए और उन्होंने यह इच्छा व्यक्त की कि उनके ऊपर जो आरोप लगाया गया है तत्सवध म उन पर न्यायालय म मुकदमा चलाया जाय या उन्हे जनता म अपनी स्थिति को स्पष्ट करने का अवसर दिया जाय। पर सरकार ने जोर दिया कि भारत छोडो' प्रस्ताव और गाधी की कुछ बाता के कारण हिंसा फली और जब तक 'भारत छोडो' प्रस्ताव वापस नही लिया जाता, सरकार गाधी को नही छोड सकता।

पर इसके बावजूद गाधी म कुछ नैतिकता का अनुताप था ही और जैसा कि मौलाना आजाद ने लिखा है, गाधी ने दो मुख्य कारणा से 21 दिना की भूख हडताल प्रारभ कर दी। ये कारण थे कि, 'उन्हे यह आशा नही थी कि सरकार काग्रेस नेताओ को इतनी जल्दी पकड लेगी। उन्हे यह भी आशा थी कि वे इस बात का समय पायेंगे जिससे वे इस आदोलन को विकसित करके अपने ढग से एक अहिंसात्मक रूप प्रदान कर सकें। पर उनकी आशाओ पर तुषारापात हो गया। उन्होंन जो कुछ हुआ उसके लिए उत्तरदायित्व स्वीकार कर लिया और स्थिति के प्रति प्रायश्चित हेतु भूख हडताल प्रारभ कर दी।'[2]

10 फरवरी 1943 को उनकी भूख हडताल प्रारभ हुई और 13 दिना के बाद उसकी स्थिति इतनी खराब हो गई कि जिन डाक्टरा ने उन्हें देखा उनका यह कहना था कि यदि उन्हे छोडा न गया तो वे 24 घटे मे मर जायेंगे। पर

---

1 मासरे एव मून्वी पूर्वोद्धत भाग 2 प 853 54।
2 आजाद पूर्वोद्धत प 75 76।

वायसराय लार्ड लिनलिथगो क्रूरतापूर्वक तटस्थ ही नही बना रहा, बल्कि कौंसिल की आपातकालीन बैठक बुलाकर बहुमत से यह निर्णय करा लिया कि गांधी को मुक्त न किया जाय। केवल एम० एस० अणे एच० पी० मोदी और एन० आर० सरकार ने ही इसके विरुद्ध मत दिया और इन तीन लोगो ने कौंसिल से स्तीफा तक दे दिया। एक गैर दलीय सम्मेलन ने दिल्ली मे जिसमे लीग नही सम्मिलित हुई, गांधी के रिहाई की माग की। पर इसका भी वायसराय पर कोई प्रभाव नही हुआ जिसकी यह माग थी कि गांधी सार्वजनिक रूप से क्षमा मागे और 'भारत छोडो' का प्रस्ताव वापस लिया जाय तभी उन्हे जेल से मुक्त किया जा सकता है। कौंसिल सदस्यो के बहुमत अस्त्र से सज्जित वायसराय इतना क्रूर हो गया था कि उसने गांधी की मृत्यु की कल्पना कर उन्हें जलाने के लिए आगा खाँ महल मे चदन की लकडिया तक एकत्रित कर दी थी। यह भाग्य की ही बात थी कि डाक्टरो और सरकार दोनो के आकडे फेल हो गये और गांधी ने जो कष्ट स्वय ओढा था उससे वे स्वय उबर गये।

एक ऐसा विवरण इस सबध मे है जिसे यहा प्रस्तुत करना रुचिकर होगा, "21 फरवरी को गांधी की हालत चिंताजनक हो गई और उनकी मृत्यु को अति निकट अनुभव किया गया। पर फिर उसी दिन से उनकी स्थिति सुधरने लगी। 25 तारीख तक वे खतरे से बाहर पाये गये। यह एक आश्चर्यजनक बात थी। बहुतो ने इसे ईश्वर की कृपा माना। कुछ ने इसे ग्लूकोज के कारण माना। सर्जन जनरल के अनुसार गांधी को उनके किसी सहायक द्वारा कोई औषधि दी गई जो उनका परम भक्त था और जो नियमो की अपेक्षा उनके जीवन का मूल्य अधिक मानता था। सच जो भी हो, पर गांधी के वजन की भी बात अत्यधिक रुचि की थी। 10 फरवरी को जब उन्होने भूख हडताल प्रारभ की तो उनका वजन 109 पौंड था। 16 तारीख तक यह 97½ पौंड रह गया। 24 तारीख को जब उनकी तबियत काफी ठीक थी तो वे 90 पौंड थे और अपने भूख हडताल के अंतिम दिन 2 मार्च को उनका वजन 91 पौंड हो गया। यह अत्यन्त आश्चर्य मे डालने वाला तौल का विवरण था। एक भारतीय स्रोत से वायसराय को पता चला कि गांधी की दशा मे सकट जान बूझकर लाया गया। उस समय नेताओ का सम्मेलन चल रहा था जो बिडला भवन और महात्मा के निवास के बीच था। जसे ही यह पता चला कि भारत सरकार कुछ नही करने जा रही है वैसे ही गांधी को दवा देने का सवाद भेज दिया गया। सपूर्ण सत्य की जानकारी कभी नही हो पायेगी। हो सकता है कि गांधी को स्वय न पता रहा हो कि उन्हे कोई दवा दी गई है।"[1]

---

1 ग्लेन्डवेन जान पूर्वोद्धृत पृ 266 67।

बम्बई के गवर्नर सर आर० लुम्बी ने अधिक स्पष्ट घोषणा करते हुए कहा कि गाधी ने "ऐसा परिणाम सामने रख दिया है कि डाक्टर भी आश्चर्य-चकित हैं। इसके दो ही उत्तर दिखाई पडते हैं, प्रथम तो यह कि वे भूख हडताल के विषय म डाक्टरो से अधिक जानत हैं और दूसर यह कि किसी एक या दूसरे गैर डाक्टर ने उन्ह ग्लूकोज दे दिया है या सभवत स्वीकार की गयी मात्रा से अधिक उन्होने फल का रस ग्रहण कर लिया है।"[1]

गाधी के उपवास के अवसर पर प्रेसीडेन्ट रूजवेल्ट के भारतीय प्रतिनिधि को वायसराय की ओर से हर बात की सूचना दी जाती थी। प्रेसीडेन्ट ने बार-बार इस पर चिंता व्यक्त की और 19 फरवरी 1943 को उसने अपने प्रति निधि को यह लिखा कि वह वायसराय को यह बताये कि "भारत के राजनैतिक सकट से हम चिन्तित हैं। उनसे यह भी कह दिया जाय कि हम आशा करते हैं कि स्थिति के बिगडने से बचने का कोई रास्ता निकल आयेगा। यदि गाधी की मृत्यु हो गई तो उस सकट की स्थिति से नही बचा जा सकता।" वाय सराय गाधी की मृत्यु की सभावना मे क्या परिणाम देखता था यह उसके अमेरिकी प्रतिनिधि के व्यग्र पूछताछ म और तत्सबध म वायसराय के उत्तर म निहित है। इस सबध म उसका मन्तव्य भारत के राज्य सचिव को लिखे गये पत्र मे भी परिलक्षित होता है 'मि० फिलिप ने मुझ से पूछा कि यदि गाधी मर गये तो क्या होगा। मेरा उत्तर था कि छ महीने तक अवसाद का वातावरण जो धीरे-धीरे कम होता जायगा, और अत मे बहुत थोडा या कुछ भी नही। इसकी समाप्ति के बाद—जब भारत को पूर्वी क्षेत्र मे युद्ध के लिये तयार होना पडेगा—तब तक भारत इस काय के आधार के लिए और विश्वस्त हो जायेगा। इसके अतिरिक्त गाधी के न रहने से समझौते की सभावनाये बढ जायेंगी क्योकि उन्होने समझौते की हर जहाज मे अभी तक तारपिडो ही लगाया है।"[2]

इस बीच, आन्दोलन को दबाने के प्रयास के साथ-साथ भारतीय समस्या के उचित समाधान के लिए खोज जारी रही। भारत के राज्य सचिव मि० एमरी द्वारा लिनलियगो को लिखे गय 19 अक्टूबर 1942 के इस पत्र म उसकी राजनयज्ञता के दर्शन होत हैं। उसन लिखा, 'मैं जानता हूँ कि आपको भी वही कठिनाई होती होगी जो मुझे होती है कि इस रुकी हुई स्थिति से मुक्ति के लिय कुछ किया जाय जो नई रचनात्मक नीति के रूप मे हो। यह उन लोगो के लिय हो जो न तो कुछ कर सकत हैं और जिन्हे न किसी रचनात्मक आदर्शों का ज्ञान है जो व हम प्रेषित कर सकें। पर जो यह अनुभव करते हैं कि

1 मानसरे एव मून्ही पूर्वोद्धृत, भाग 3 प 755।
2 वही प 687 88 690।

हम या आप भारत को स्वशासन प्रदान कर सकते हैं। ऐसा करने से वे एकचित्त होकर युद्ध मे भी उत्साह स लग जायेंगे। मैने सदा कूपलैंड की पुस्तक का महत्वपूर्ण स्थान दिया है (आर० कूपलैंड—द फ्युचर आफ इडिया, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 1943) और आशा करता हू कि इसके तीसरे भाग म सवधानिक समस्या का जो विवेचन किया गया है अगले वष तत्सगत रूप से सामने आ जायगा। मैं अमेरिका के राजनैतिक हस्तक्षेप का विरोधी हूँ

निष्कष चाहे व अच्छे हो, बुरे हो या तटस्थ भाव वाले हो, वे भारतीयो और अमेरिकियो का उतना ही मदद करते हैं, कम से कम वे यह तो जान जाते है कि समस्या क्या है हमारी ओर से स्पष्टतया एव कठिनाई सदा यह रही है कि हम सदेहशील है और इसकी पकड अमेरिकियो को तो क्या हमारी ही टीम कोई कहा जाय तो उसे हो जायेगी। वसे यह भारतीयो की ओर से आना चाहिए, पर अभी तक तो न पार्टी नताओ न भारतीय छात्रो या व्यापारियो ने इस स्तर तक उतरने का प्रयास किया है।" इसके आगे राज्य सचिव ने परामश दिया कि वायसराय के कौंसिल के 3 या 4 भारतीय सदस्यो की एक समिति गठित की जा सकती है जो इस "सभावना का पता लगाये कि एक गर सरकारी राजनैतिक खोजबीन करने वाला का सगठन बनाया जाये जो एक तटस्थ चेयरमन की अध्यक्षता मे काय करे जो किसी राज्य का न्यायाधीश हो। इन्हे यह काय सौंपा जाय —

(1) ऐसी सविधान निर्मात्री सभा की रचना कर अध्ययन एव सस्तुति जो प्रस्ताव मे प्रस्तावित है, तथा जो एसा सविधान बना सके जिसे सभी लोग स्वीकार कर लें,

(2) निश्चित समस्याओ के अध्ययनाथ सामग्री तयार करना जो सविधान निर्मात्री सभा का ध्यान आकृष्ट कर सके और जो इनका निराकरण करने म भी अपनी सभा मे सक्षम हो सके।

मुझे आशा है कि यह ऐसी भावना को उत्साहित करेगी और भारतीय मस्तिष्क को समस्याओ के समाधान की ओर अग्रसर करगी। यह उन्ह असभव के प्रति शोर मचाने से विरत ही नही करेगी क्योकि उनकी मागें असभव की ओर इगित करती हैं।" 10 नवम्बर के एक दूसर पत्र म राज्य सचिव न यहा तक प्रस्तावित किया कि अमेरिका सघ सविधान के किसी जानकार व्यक्ति से, 'विशेष रूप स आमत्रित किया जाय जो भारतीय सवैधानिक समस्या के मुद्दा के जानकारा की सहायता करे। उन्ह और सभवतया एक स्वीडजरलैंड के सविधानविद को भी इसका सदस्य बना दिया जाय और इस तरह की व्यवस्था से यह लाभ होगा कि अमेरिका के रतसबधी नाम का पूर्ण लाभ उठाया गया और इसस अमेरिकियो को भारतीय राजनीति मैं हस्तक्षेप का अवसर न

रहेगा ।"

पर वायसराय ने इस बात का विरोध किया कि उसके कौंसिल की एक समिति इस उद्देश्य के लिए बनाई जाय । उसन अपने उत्तर मे कहा कि "इस आधार पर काय करन से मेरी सरकार ही जाती रहगी । ऐसा हान पर सप्ताह भर मे ही सारे भारत मे यह बात फल जायगी और उसी क्षण से जो मेर साथी इस काय के लिए चुने जायेंगे वे जाच पडताल और प्रचार के विषय बन जायेगे जिसमे हर तरह के विरोधाभासी लोग रुचि लेन लगेंगे ।"[1] वसे भी इस प्रस्ताव का परित्याग कर दिया गया ।

खेद का विषय यह है कि इस तरह के विचारो के आदान प्रदान करत समय राज्य सचिव और वायसराय यह पूणतया भूल गये कि कम से कम भारतीय नेताओ ने एक ऐसा सविधान बना लिया था जसा वे भारत म चाहत थे। यह 1928 की नेहरू रिपोट के रूप मे थी जिसे उस समय उन्होंने अनदेखा कर दिया था ।

अन्य घटनाये

वधा शिक्षा योजना

लिनलिथगो के समय मे हान वाली घटनाओ म कुछ शिक्षा के क्षेत्र स जुडी थी । वर्धा शिक्षा योजना का प्रारभ 1936 मे हुआ । यह योजना गाधी के बुद्धि का परिणाम थी जि हान अपनी इच्छानुसार एक विशेषन समिति बनाई थी और उससे रिपोट प्रस्तुत करन को कहा था । इस समिति ने जो रिपोट राष्ट्र के समक्ष रखी उसम शिक्षा की एक योजना प्रस्तुत की गई जिसे शिक्षा की वर्धा योजना या बेसिक शिक्षा योजना का नाम दिया जाता है। इस योजना को काग्रेस मत्रिमडलो ने 1935 के सविधान सुधार के अतगत अपने क्षेत्रो म लागू किया । इस योजना को बिहार और कश्मीर म अत्यधिक सफलता मिली । पर द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारभ हो जाने से काग्रेस मत्रिमडलो को त्यागपत्र दना पडा जिसस यह काय अवरुद्ध हो गया । इसके बाद इस सबध मे विचार भारत मे स्वाधीनता के बाद ही किया जा सका ।

यह पूण योजना बच्चो की शिक्षा पर जोर देती थी जिसमे बच्चो के विकास की इन बातो पर जार दिया जाता था (अ) बच्चो की मानसिक और बौद्धिक कायक्षमता (ब) उनमे नतिक गुणो का विकास (स) उनम ऐसी क्षमता की उत्पत्ति कि वे प्रारभ से ही कुछ धन अजित कर सकें एव, (द) उन्ह

1 मानसरे एव लुबी पूर्वोल्घत भाग 3 प 139 42 229, 262 270 ।

ऐसी शिक्षा देना जिससे कि व कला और सौदय की ऐसी चीजे उत्पन्न कर सकें जिससे उन्ह आगे बढने म सुविधा हो। इस तरह इस योजना के अतगत (1) बच्चो को क्राफ्ट या किसी ऐसे काम की शिक्षा दी जानी थी जिससे वे कुछ उत्पादन कर सकें, जैसे बढईगीरी लोहारगीरी कताई, बुनाई आदि जो स्थानीय रूप से लोकप्रिय हो (2) चुने हुए क्राफ्ट को केन्द्र बिन्दु बनाकर बच्चे का बौद्धिक और नैतिक विकास किया जाय, (3) विद्यालयो में तैयार की गई ऐसी वस्तुयें बाजार मे बेच दी जायें और इसस होन वाली आय से आर्थिक क्षेत्र मे आत्मनिभरता प्राप्त की जाय, (4) इस योजना के अतगत प्राइमरी शिक्षा पर 7 वष लगेंगे, (5) एक विशेष व निश्चित आयु के बच्चो को अनिवाय और मुफ्त शिक्षा दी जायेगी, (6) पढाई बच्चे की मातृभाषा म होगी, और (7) यह आशा की जाती थी कि शिक्षा की यह योजना बच्चे मे बहुमुखी विकास—अर्थात् मानसिक, नैतिक, बौद्धिक और पेशे सबधी—करेगी।

1943 की सार्जेंट योजना

1943 मे एक अन्य योजना भी सामने आई जिसे शिक्षा की सार्जेण्ट योजना कहा जाता है। इस योजना को इस उद्देश्य के लिए बनाई गई एक समिति ने तैयार किया था जिसका नेतृत्व भारत सरकार के शिक्षा परामश दाता सर जान सार्जेण्ट न किया था। इस योजना को द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के उपरान्त लागू किया जाता था।

सार्जेण्ट समिति ने इस मसले का विस्तार म अध्ययन किया। इसने वर्धा योजना की कुछ बाता को पसद किया और इसे अपनी रिपोर्ट म सम्मिलित कर लिया। पर इस योजना मे केवल प्राइमरी शिक्षा को ही नही लिया गया था बल्कि माध्यमिक शिक्षा, विश्वविद्यालयीय शिक्षा तकनीकी शिक्षा और शारीरिक शिक्षा को भी स्थान दिया गया था।

समिति ने सस्तुति की कि (1) नसरी स्कूल 3 से 6 वष के बच्चा के लिए खोले जाय। इन स्कूलो को महिलाओ द्वारा चलान को कहा गया। यह भी कहा गया कि पाठ पढाने के स्थान पर बच्चो को अच्छा सामाजिक व्यवहार सिखाया जाना चाहिए और ऐसी ही अन्य बात जिसका माध्यम मेल और आपसी मैत्री होना चाहिए, (2) 6 से 14 वष के आयु के बच्चो के लिए शिक्षा अनिवाय और मुफ्त होनी चाहिए जिसे दो भागो म विभाजित किया जाना चाहिए, (अ) प्रथम, जूनियर बेसिक जिसमे 6 से 11 वर्ष के बच्चा को शिक्षा दी जाय, और (ब) द्वितीय, उन बच्चो के लिए जिनकी योग्यता औसत हो जिन्ह सीधे जूनियर बेसिक स प्रवेश दिया जा सकता हो। इस सीनियर बेसिक का नाम दिया जाय, (3) 11 वष स 17

वर्ष की आयु के बच्चे जिन्होंने बेसिक प्रशिक्षण में उत्साहपूर्वक प्रगति दिखाई हो और सीनियर बेसिक छात्रों में से कुछ जिन्होंने अपनी कुशाग्र बौद्धिकता का परिचय दिया हो उन्हें हाई या सेकन्डरी स्कूल में लिया जाय, (4) हाई स्कूल के लगभग 10% छात्र जिन्होंने अपने अध्ययनकाल में उत्तम बुद्धि का परिचय दिया हो उन्हें कालेजों में विश्वविद्यालयीय शिक्षा के लिए लाना चाहिए जहां वे तीन वर्षीय डिग्री कोर्स पूरा करें, (5) इन छात्रों में से श्रेष्ठ शोध में लगाये जायं (6) शारीरिक स्वास्थ्य के लिए युवा लोगों में शिक्षा हेतु एक राष्ट्रीय युवा आंदोलन चलाया जाय (7) अध्यापन और परीक्षा का उच्च स्तर बनाये रखने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना की जाय। इस पेशे में अच्छे लोगों को लाने के लिये अध्यापकों के वेतन में वृद्धि की जाय। इस योजना ने 200 करोड़ व्यय की योजना बनाई। पर युद्ध समाप्ति के बाद चूंकि भारत ने स्वाधीनता अर्जित कर ली, इसलिये इस योजना का कार्यरूप में परिणित नहीं किया गया। पर स्वतंत्र भारत की शिक्षा योजना में इसकी तमाम बेहतर बातें सम्मिलित कर ली गई।

भारत का स्टर्लिंग संतुलन

लार्ड लिनलिथगो के काल की एक आवश्यक घटना भारत के स्टर्लिंग संतुलन से संबंधित थी। युद्ध के पूर्व यह संतुलन इंग्लैंड के पक्ष में था, पर युद्ध काल में इसमें नाटकीय परिवर्तन आ गया। भारत व्यक्ति और वस्तुपूर्ति के रूप में जो प्रदान कर रहा था उसका परिणाम यह था कि वह अब इंग्लैंड और मित्रराष्ट्रों का ऋणदाता हो गया था। 14 मार्च 1942 को सर क्रिप्स ने लिखा कि "यदि निकट भविष्य में इस संतुलन को काफी कम करने का प्रयास किया गया तो ऐसी कठिन स्थिति उत्पन्न हो जायगी कि निर्यात प्रारंभ करने से भी इस पर काबू नहीं पाया जा सकेगा। हम ऐसी स्थिति में नहीं रह जायेंगे कि स्टर्लिंग को सोने, डालर या अन्य सिक्कों में नहीं बदल पायेंगे और यदि ऐसा कर भी पायेंगे तो बहुत धीरे धीरे। इसलिए इनको रोकना पड़ेगा और हमसे यह कहा जायगा कि लंदन नगर गरीब भारत से जबरदस्ती ऋण प्राप्त कर रहा है या हमारे ऊपर यह आरोप लगाया जायेगा कि हम भारत के ऋण की अदायगी सही समय पर नहीं कर रहे हैं। राजनैतिक दृष्टि से यह बहुत खतरनाक होगा।" यह प्रस्तावित किया गया कि ब्रिटेन को स्टर्लिंग में जो देय हो वह सब प्रदान करे और भारत का वह सब जो रुपये में दिया जाना हो दे।[1] यह इसलिए आवश्यक है क्योंकि सभी साधनों को एकत्रित

1 मानसर एव लुबी पूर्वोद्धृत भाग 1 प 425 26।

किये जाने की आवश्यकता है।

लिनलिथगो निराश थे क्योकि 'भारत ने युद्ध म अपनी आर्थिक भूमिका ठीक से नही अदा की थी" और उन्होने मत्रिमडल को इस बात के लिए मनाया कि वह उनके अथ सदस्य सर जेरमी रसमैन से तत्सबध म बात करे। यह तक दिया गया कि भारत चूकि एक गरीब देश है इसलिए इग्लैंड द्वारा ऋण की अदायगी का विरोध जो भारत का ट्रस्टी है, अतकसगत होगा। इस तरह के कदम से भारतीय नेताआ की सहानुभूति जाती रहेगी। ऐसा इसलिए और होगा क्याकि भारत ने इन वलिदाना के बावजूद देश को अब भी आक्रमण से असुरक्षा ही प्राप्त थी। बातचीत के बाद रैंसमन चासलर स यह आश्वासन प्राप्त करन म सफल हुय कि वे मध्यपूव गय हुय प्रधानमत्री चर्चिल को वापसी पर इस बात के लिय समझायेंगे कि भारत के पक्ष मे कोई निणय लिया जाय। इसी बीच मत्रिमडल की सस्तुति से निणय को टाल दिया गया। चर्चिल दूसरी तरह का व्यक्ति था। वह अपनी अनुपस्थिति मे होने वाली घटनाआ स बहुत नाराज हुआ। राज्य सचिव एमरी ने वायसराय का लिखा—

"विन्स्टन ने इस निरथक विचार के विरुद्ध लबा उग्र भाषण दिया और कहा कि हम लाखो रुपये भारत की रक्षा पर क्या व्यय करें और फिर उसन यह स्पष्ट करन को कहा। उसका यह भी कहना था कि भारत की ओर से हम इतना अधिक व्यय क्यो करें ? मैंने असफलतापूवक उसे पूण प्रयास सहित समझाने की चेष्टा की कि इस व्यय म मध्य पूव में भेजी गयी वस्तुआ की कीमत भी है तथा इस देश को भेजी गई वस्तु की कीमत भी। पर किन्ही कारणो से इससे युद्ध के लिए भारत के रक्षा व्यय को अलग करना सभव नही है और इसके अतिरिक्त सुदूरपूव मे हमने जो कुछ किया वह भी भारत की रक्षा के लिए किया गया "[1]

चर्चिल के तक सचमुच विचित्र थे। भारत अपनी इच्छा के विपरीत युद्ध रत देश घोषित किया जा चुका था। उसन ब्रिटेन और मित्रराष्ट्रों की रक्षा के लिये लडाई की और अब जब ब्रिटिश मूखता के कारण जापानी आक्रमण का भय दरवाजे पर खडा था ता प्रधानमत्री न यह स्वय घोषणा कर दी कि उसके पास भारत की रक्षा के लिय साधन नही हैं। उससे एकाएक यह भी कहा गया कि ब्रिटेन न युद्ध मे जो कुछ किया उसकी रक्षा के लिये ही किया है और उसका व्यय उसे ही झेलना चाहिय। वार्त्ता चलती रही और मत्रिमडल न चर्चिल की यह शत स्वीकार कर इस मसले को टाल दिया कि सपूण प्रश्न पर भारत के विरुद्ध प्रति अधिकार जताने के लिए फिर स खोलने का उसे अधि-

1 क्ले डेवेन जान द वायसराय एट ब पृ 255 द्वारा उद्धत।

कार रहेगा। पर इसी बीच भारत म कांग्रेस आदोलन ने प्रधानमत्री का और उग्र कर दिया और इसीलिए वायसराय इस देश के लिये न्याय प्राप्त नही कर सका।[1]

कृषि सबधी समस्यायें

वायसराय भारत की कृषि सबधी समस्याओ मे अत्यधिक रुचि लेता था। उसके नाम के शब्द मे अतिम अक्षर 'गो' का अथ हिन्दी मे गाय था और भारत पहुचन क कुछ ही दिनो के बाद उसने अपने व्यय पर हिसार से दो साड मगवाये। यह काय उसने दिल्ली के पास पडोस के किसाना के हित म किया जिसस वि व अच्छे पशुओ का प्रजनन करा सकें। उसन तमाम भारतीय गावो को देखा और 1937 म उसने एक सफल अखिल भारतीय पशु मेले का आयोजन भी किया।

नवम्बर 1938 के अत म वायसराय ने कृषि बाजारो के लिय मत्रियो का एक सम्मेलन बुलाया जिसमे उसने इस बात पर जोर दिया कि तत्सबध म पर्याप्त और सूझबूझ वाली छानबीन की जाय। उसने स्तर बनाये रखने पर जोर दिया और इसका अथ भी स्पष्ट किया "चूकि बाजार का अधिकारी यह जानता है कि बाजार म किस चीज की माग अधिक है और किसकी कीमत कहां अधिक है इसलिए वह इस स्थिति म है कि वह किसाना का बता सके कि कौनसी फसल पैदा करन म उसका अधिक लाभ है यह विचारणीय है कि इस सामयिक चेतावनी से तथा माग म परिवतन से उसे कितना लाभ पहुचेगा।"[2]

दुर्भिक्ष

1943 म पुन भारत म दुर्भिक्ष ने अपना भद्दा सर उठाया और इस बार बगाल म 1½ लाख लागो का अपन मौत के जबडे म जकड लिया। विस्तृत आकडो का अभाव, खराब सचार साधन, रेलवे पर सैनिक सामग्री का अधिक भार, व्यापारियो और सामान छिपान वालो की लालच, लोगो का एक भोजन को छोडकर दूसरा अपनान म कठिनाई, सरकार म अविश्वास बर्मा द्वारा चावल भेजने से इकार खराब फसलें, तूफान, बाढ और सरकार की अकायक्षमता आदि इस दुर्भिक्ष का कारण थे। इसकी औषधि आयात की नीति थी, पर ब्रिटन और मित्रराष्ट्र इस काय के लिए जहाज नही दे पा रहे थ।

1 विस्तार क लिये देखें वही प 254-55।
2 वही प 107 108।

1935 के ऐक्ट के अतगत प्रा तीय स्वायत्तता के अतगत सवैधानिक दष्टि से दुर्भिक्ष प्रा त के उत्तरदायित्व मे आता था । इस कारण से और वायसराय द्वारा "व्यक्तिगत प्रचार के विरुद्ध घृणा होने से", जसाकि वायसराय के पुत्र ग्ले डेवेन ने लिखा है, वायसराय न बगाल की यात्रा तक नही की ।[1]

जो भी हो, इस स्थिति मे बगाल दुर्भिक्ष आयोग की स्थापना की गई जिसने अपनी रिपोट 1 सितम्बर 1945 मे प्रस्तुत की जिसमे सरकार द्वारा इस क्षेत्र मे कुछ न किये जाने पर खेद यक्त किया गया । यह कहा गया कि समाज को सामूहिक रूप से दुर्भाग्य के गड्ढे मे जाने स रोकने की कोई चेष्टा नही की गई । इसने इस पर आश्चय व्यक्त किया कि देश मे, "नतिकता और सामाजिकता का जनाजा" निकल गया है । बहुत कम लोगो ने इस उत्तर दायित्व का अनुभव किया कि भूखे लोगो को किसी तरह स बचाया जाय ।

आयोग ने यह सस्तुति की कि केन्द्रीय सरकार को खाद्य और कृषि विभाग को एक मे मिला देना चाहिए । एक अखिल भारतीय खाद्य परिषद की स्थापना कर खाद्य प्रशासन को ठीक करने की भी सस्तुति की गई । स्तरीय भोजन सामग्री की पैदावार बढाने को कहा गया । राज्य से कहा गया कि वह अनाज का व्यापार और वितरण अपन हाथ मे ले ले । कृषि सबधी वस्तुओ की कीमत ऐसी होनी चाहिये कि उससे उत्पादक तथा उसके प्रयोगकर्त्ता दोनो को लाभ हो । चावल और गेहूँ की अधिकतम और यूनतम कीमत युद्ध के बाद के 6 वर्षों तक कर दी जाय । युद्ध के बाद सरकार ने स्थिति से निबटने के लिये और ऊची होती कीमत पर नियत्रणाथ सस्तुतियो के अनुसार काय किया । परिस्थिति से ठीक से निपटा गया । पर यह सब लिनलिथगो के वापसी के उपरा त वावेल के समय मे हुआ ।

इपी का फकीर

लिनलिथगो का उत्तरपश्चिम सीमा क्षेत्र मे भी कुछ समस्याओ का सामना करना पडा जहा पर इपी के फकीर ने विद्रोह कर दिया । यहा वजीरिस्तान का एक कबीला था जिसने झगडा शुरू किया । इपी तोरीखेल वजीरियो से सम्बद्ध था और 1890 मे पदा हुआ था । वह 1936 मे इपी के छोटी मस्जिद का इमाम था । यह स्थान टोची घाटी और बन्नू के बीच सडक के किनारे पडता था । जान ग्ले डेवेन लिखता है, "पहाडिया म यह अफवाह थी कि उसन दो सुअर पाल रखे थे जिसमे से वह एक को वायसराय तथा दूसर को सनापति का प्रतीक मानता था । अपने उत्साह को बढान के लिए वह कभी एक से या

1 ग्ले डेवेन, जान पूर्वोद्धृत प 74 75 ।

कभी दूसरे से या कभी दोना के शरीर से एक छोटा टुकडा काट लेता था।'[1] इस कथन का प्रथम भाग तो सच हो सकता है पर दूसरा भाग सत्य स परे लगता है। आथर स्विसन लिखता है कि फकीर "गर मुस्लिमो का कट्टर विरोधी था और सदा अपने हित मे धम के नाम पर लोगो को भडकाया करता था।'[2]

1936 म इपी के फकीर के नतृत्व म, जा अग्रेजो से घणा करता था, यह वजीरी विद्रोह हुआ। फकीर ने धीरे धीरे महत्ता अजित कर ली थी। महसूद और वाना के वजीरी भी इस विद्रोह की आग म कूद पडे, धमयुद्ध घोषित कर दिया गया और 1937 तक ब्रिटिशो को इसके लिय 30 हजार सनिक युद्ध भूमि मे उतारने पडे। फकीर न अपनी लश्कर बडी सूझबूझ और चालाकी स तयार की। जो लोग भी उसकी सना म सम्मिलित होने के लिय आते थे उन्हे दस दिन के लिए अपनी खाद्य सामग्री भी लानी पडती थी। डूरण्ड लाइन इस विद्रोह क्षेत्र के निकट ही थी और इसीलिय जब घनघोर रूप से इनका पीछा किया जाता तो व अफगानिस्तान भाग जाते थे। अफगान सरकार गुप्त रूप से इनसे सहानुभूति रखती थी जिससे ब्रिटिशो के लिये इस समस्या का निवटारा और कठिन हो गया। फकीर 'स्वय सपमीन की भांति गायब हो जाता था। उसने उस समय सीमा से 1 मील के पास ही दूर गोरवेदन की घाटी म अपने छिपने के लिये एक स्थान पहले ही बना लिया था, और उसके सहायक काफी पहले ही इसकी सूचना इसे दे देते थे कि शत्रु सना आ रही है।'[3] तोरीखेल लोगो को दी गई यह चेतावनी जब अनसुनी हो गई कि व फकीर को अपने क्षेत्र से निकाल दें तो फकीर के मूलकेन्द्र अरसलहट पर आक्रमण किया गया। विरोध तो तुरन्त समाप्त हो गया पर फकीर बच भागने मे सफल हो गया। तोरीखेल का विद्रोह दबाने के बाद [illegible] हजार भिटान्नियो का विद्रोह भी ब्रिटिशो को झेलना पडा। यहा से फकीर मछाखेल चला गया और वहा से डूरण्ड सीमा के निकट पहाडी क्षेत्र रजमक के पश्चिम। यह समस्या चलती रही। वैस तो कबीले के लोगो ने बडी हानि उठाई क्योकि ब्रिटिशो ने हवाई जहाज से बम बरसाया था पर ब्रिटिशो को भी सकडो सैनिको से हाथ धोना पडा और इसम हजारो सैनिक घायल हो गये। फकीर पकडा नही जा सका और वह बन्नू के क्षेत्र मे 1940 तक तूफान मचाये रहा। भारत विभाजन के बाद भी वह हाथ नही आया और ब्रिटिशो की तरह पाकिस्तान के लिए

1 वही प 48।
2 स्विसन आयर नाथ वेस्ट फ्रन्टियर प 327।
3 वही प 328।

भी वह समस्या बना रहा । 1960 मे उसकी मृत्यु हो गई जब टाइम्स अखबार न उसके विषय मे लिखा, "सिद्धातवादी व्यक्ति और साधु कबीला विद्रोह उत्साह और सेनापति " । आथर स्विसन ने लिखा है कि इस निधन परिचय ने 'चेल्तनहम मे तथा सनिक क्लबा के लोगो के चेहरे पर व्यगात्मक मुस्कराहट ला दी होगी ।"[1]

एक मूल्याकन

1943 मे लिनलिथगो पदमुक्त हो गया । भारत मे जो भूमिका उसने अदा की उसके कारण उसके और गाधी के बीच अच्छे सबध नही रहे थे । 26 सितबर को गाधी ने उसे एक पत्र मे लिखा

'भारत से आपकी वापसी की पूव सध्या पर मैं आप से एक शब्द कहना चाहूगा ।"

"उन सभी अधिकारियो मे जिनके सपक मे मैं आया—किसी ने मुझे उतना दु खी नही किया जितना आपने । मुझे इसका बडा खेद है कि आपने असत्य का सहारा लिया, (यह बात गाधी ने लिनलिथगो को सभवत इसलिए लिखी क्योकि उसने यह कहा था कि 1942 की हिंसा का उत्तरदायित्व गाधी का है ।) और उस व्यक्ति के प्रति आपने यह व्यवहार किया जिसे आपने कभी मित्र माना था । मुझे आशा है कि ईश्वर किसी दिन आपके हृदय मे इस सत्य का भान करायेगा कि आप जसा एक महत्वपूण राष्ट्र का प्रतिनिधि महान गलती पर था ।"[2]

भारत मे लिनलिथगो की राजनतिक नीतियो की बहुत आलोचना हुई है। उसकी इस बात के लिए बडी आलाचना हुई कि उसन अति धीमी गति से राजाओ को सघ मे सम्मिलित करने के लिये कायवाही की । लिनलिथगो ने देश के नेताओ को तब विश्वास मे नही लिया जब भारत को युद्धरत देश घोषित किया गया । भूख हडताल के समय गाधी के प्रति उसका दृष्टिकोण बडा कडा था जिसके लिए उसस अधिक सभवत गृह विभाग की आलोचना होनी चाहिए । डी० एच० फिलिप्स और मेरी डोरीन वेनरिट का विचार है कि उसकी नीतिया का औचित्य था । उसके अनुसार, "लिनलियगो के वायसराय व काल मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने आदोलन प्रारभ किया, और मुस्लिम लीग न बटवारे की घोषणा की । ये घटनायें एक वायसराय के लिए उसकी असफलता की सूचक होनी जिसे 1935 के ऐक्ट के अनुसार काय करन

1 वही प 332।
2 ग्ग्डवेन जान प 275 76।

का कार्यभार सौंपा गया था जिसके अंतर्गत ब्रिटिशों का राजनैतिक स्वप्न पूरा होना था कि भारत पर उसने उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से शासन किया है।"[1]

आर० जे० मूर ने लिनलिथगो के विषय में लिखा है कि "राजनैतिक दूरदर्शिता और रचनात्मक काल्पनिकता के अभाव ने उसके विक्टोरियन गुणों को दिखाई बनावटीपन और भावहीनता का जामा पहना दिया।" लेखक आगे लिखता है कि, "लिनलिथगो को देर में भारतीय समस्याओं की प्रकृति की जानकारी तब मिली, जब कांग्रेस और लीग की मांगों ने उसे इन मसलों पर स्पष्टीकरण प्रदान किया। युद्ध का प्रारंभ और नेताओं से साक्षात्कार ने भी उसे इस दिशा में दिशा दी। पर फिर भी वह निर्णयानुसार कदम उठाने में अति धीमा था जबकि जेटलण्ड इस कार्य को करने के लिए उसकी सहायता भी करता था। ऐसा संभव है कि युद्ध की प्रारंभिक अवस्था में किसी महत्वपूर्ण कूटनीतिज्ञ ने भारतीय समस्याओं के लिए कोई फार्मूला विकसित किया हो।"

अपनी पदमुक्ति के उपरान्त लिनलिथगो को गार्टर का नाइट बना दिया गया। 1944 व 1945 में वह स्काटलण्ड के चर्च का लार्ड हाई कमिश्नर बनाया गया। इसके बाद भी उसे तमाम प्रतिष्ठा और पद दिये जाते रहे।

---

1 फिलिप्स एवं वेनराइट (सम्पादन) पार्टीशन आफ इन्डिया पृ 18।
2 वही पृ 80 84।

8
अर्ल वावेल
(1943-47)

आर्चीबाल्ड पर्सीवल वावेल का जन्म 5 मई 1883 मे हुआ । उसके पिता का नाम मेजर जनरल आर्चीबाल्ड ग्रैहम वावेल और मा का नाम लियान मेरी था । शिक्षा प्राप्ति के बाद उसे अपने पिता के रेजीमेंट, ब्लैक वाच म 1901 मे भर्ती किया गया । कुछ समय तक वह अफ्रीका मे सेवारत रहा और उसके बाद भारत आया । 1908 मे वह स्टाफ कालेज मे भर्ती हुआ जहा से उसे रूस भेज दिया गया । यहा उसने दूर दराज क्षेत्रो की यात्रा की और रूसी भाषा सीखी । प्रथम विश्व युद्ध मे फ्रास मे उसने ब्रिगेड मेजर की हैसियत से सेवा की और इसके बाद काकेसस और मिश्र म लायजन आफीसर के रूप मे काय किया । 1930 मे उसका युजेनी स विवाह हुआ जो एक सैनिक अधिकारी की पुत्री थी । वह शीघ्र ही ऊचे दर्जे पर पहुच गया और मिश्र के सैनिक कोर मे ब्रिगेडियर जनरल और सेनापति बना दिया गया । जब युद्ध समाप्त हुआ तो उसका ओहदा घटा दिया गया और उसे मेजर बना दिया गया। 1930 मे उसे ब्रिगेडियर बना दिया गया, फिर इग्लैण्ड म कमाण्डर, 1937 मे उसने फिलिस्तीन मे सेना का नेतृत्व किया और उसके शीघ्र बाद ही उसे के० सी० बी० बना दिया गया । द्वितीय विश्वयुद्ध म उसन महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और उसे 1943 मे फील्ड माशल बना दिया गया । इसके बाद वह भारत के वायसराय के रूप मे लिनलिथगो का उत्तराधिकारी बना ।

गाधी को कांग्रेस काय समिति के सदस्यो से उनके चाहने पर भी मिलन नही दिया जाता था।

सी० आर० फार्मूला

अपनी रिहाई के 2 महीने बाद तक गाधी इतने कमजोर थे कि राजनीति म भाग नही ले सके। पर जैसे ही उन्होने बेहतर अनुभव किया, उन्होने दो और महान भूले की। प्रथम लन्दन के 'न्यूज क्रानिकल' की एक भेंट म उन्होने घोषणा की कि यदि ब्रिटिश शीघ्र भारत को स्वतत्र कर दें, तो यह देश ब्रिटिश युद्ध के काय को समथन प्रदान करेगा। यह एक आश्चयजनक घोषणा थी क्योंकि सपूण युद्धकाल मे व इस दढ विचार के थे कि यदि उनकी स्वतत्रता भी युद्ध म रत रहन स जुडी हो तो भी वह इस युद्ध म सम्मिलित होने की बात स्वीकार नही करेंगे। ऐसा इसलिए था कि वे हर प्रकार की हिंसा के विरुद्ध थे। इस बात से भारत म पूण जनमत उलझ गया और गाधी जैसी आशा करत थे ब्रिटिशो से उन्ह कोई वाहवाही नही मिली। चूकि मित्रराष्ट्रो की विजय लगभग निश्चित थी इसलिए ब्रिटिशो को भारत की सहायता की आवश्यकता नही थी। यह सोचा गया कि गाधी की यह घोषणा ब्रिटिश समथन प्राप्ति के लिए है पर अब इसकी कोई कीमत नही रह गई थी। इस तरह से जब गाधी न अपन सिद्धात म मूलभूत परिवतन किया तब भी उससे उन्ह कुछ प्राप्त नही हुआ। गोली देर से चलाई गई थी और निशाना भी चूक गया था।

द्वितीय, गाधी ने जिन्ना से पाकिस्तान की माग को लेकर सुलह के लिए पत्र व्यवहार प्रारभ किया। इस सबध मे मौलाना आजाद न जिस स्पष्ट रीति से इसका विवरण दिया है उसके लिए बिना क्षमा याचना के उसे प्रस्तुत कर रहा हूँ, "गाधीजी का इस अवसर पर जिन्ना के प्रति दृष्टिकोण भूल से भरा था। इससे जिन्ना को नयी और अति महत्वपूण महत्ता प्राप्त हो गई जिसका उसने पूण लाभ उठाया जिन्ना ने 20वी सदी के दूसरे दशक मे कांग्रेस छोडने के बाद अपनी राजनैतिक महत्ता गवा दी थी। उसने गाधी जी के भल के कारण अपनी महत्ता पुन अजित कर ली देश का मुसलमान बहुमत जिन्ना और उसकी नीति के प्रति सदेहशील था। पर जब उन्होंने देखा कि गाधी उसके पीछे दौड रहे है और मना रहे हैं तो उनमे से बहुतो के मन मे जिन्ना के प्रति आदर पदा हो गया यह गाधी ही थे जिन्होन उसे कायदे आजम कहा। जब भारतीय मुसलमानो न गाधी जी को उन्हें 'कायदे आजम' कहते सुना तो उन्होन सोचा शायद वह ऐसा हो ही।"[1]

1 आजाद पूर्वोद्धत, प 112 15।

जो भी हो गांधी ने जिन्ना से पत्र-व्यवहार प्रारम्भ किया। पहले कांग्रेस में सी० राजगोपालाचारी ने पाकिस्तान की माग मानने को कहा था। पर उनके प्रस्ताव को समर्थन न मिलने के कारण उन्होंने स्तीफा देकर इस बात के पक्ष मे जनमत तैयार करना प्रारम्भ किया। अब कांग्रेस कार्य समिति के सदस्य न रहने के कारण राजगोपालाचारी को कैद भी नहीं किया गया। उन्होंने पाकिस्तान के सबंध म एक निश्चित फार्मूला तैयार किया और गांधी जी की रिहाई पर इसे उन्हें दिखाया। गांधी ने इस फार्मूले को पसन्द किया और इसी के आधार पर गांधी ने जिन्ना म पत्र-व्यवहार प्रारम्भ किया। गांधी जिन्ना से सितंबर 1944 म मिले और सी० आर० फार्मूला पर उनसे बात की। सी० आर० फार्मूला की निम्न धारायें थी—

(1) मुस्लिम लीग भारत की स्वतंत्रता की माग का समर्थन करती है और कांग्रेस के साथ युगान्तर काल में सरकार बनाने मे सहयोग करेगी। (2) युद्ध समाप्ति के बाद उत्तर पश्चिम और पूर्वी भारत मे जहा मुसलमान बहुमत मे हैं वहा के लिए एक आयोग बनाया जायगा जो ऐसे जिलो को अलग करेगा। इन क्षेत्रो म यहा के सभी निवासियो से वयस्क मताधिकार के आधार पर मत लिया जायेगा कि क्या वे अलग रहना चाहते हैं। (3) मत लेने से पूर्व सभी दलों के लोगों को अपना मत उनके समक्ष रखने का अधिकार होगा। (4) अलगाव की स्थिति मे रक्षा, व्यापार व सचार की रक्षा हेतु आपसी समझौता किया जायेगा। (5) जनसंख्या का स्थानान्तरण पूर्णतया स्वेच्छा से होगा। (6) ये शर्तें तभी लागू होंगी जब ब्रिटिश पूरी शक्ति और उत्तरदायित्व भारत सरकार को सौंप देंगे।

पर जिन्ना ने गांधी से कुछ समय तक बातचीत के बाद इस फार्मूले को मानने से इकार कर दिया। सप्रू कमेटी के प्रश्नों के उत्तर मे गांधी ने निम्न बिन्दु बताये जिनको लेकर उनमे और जिन्ना म नही पट सकी (1) जिन्ना लीग के अध्यक्ष थे और गांधी को वह केवल एक व्यक्ति ही स्वीकार करते थे। (2) जिन्ना के पास कोई तैयार योजना नही थी। पर वह इस बात पर जोर देते थे कि यदि गांधी उनके पाकिस्तान के विचार से सहमत हो जाय तभी वह इस सबंध में और आगे बात करेंगे। (3) गांधी की राय थी कि केन्द्र मे एक शासन की बात दोनो दल स्वीकार कर लें। पर जिन्ना का कहना था कि पहले विभाजन और दो राष्ट्रों की बात तय हो जाय और फिर दोनो के बीच विदेशी मामले आदि पर बात हो। (4) जिन्ना दो पृथक सार्वभौम राष्ट्र चाहते थे जिनके बीच कोई सबंध न हो सिवाय संधि के। यदि कोई उस संधि को तोड दे तो युद्ध हो। (5) जिन्ना ने सी आर फार्मूले के भाग 2 पर एतराज किया जिसमे वयस्क मताधिकार के आधार पर मत मांगने की बात थी।

गई थी। जिन्ना मुसलमानों के मत लेने के पक्ष में नहीं थे क्योंकि वे मुस्लिम लीग को ही उनका प्रतिनिधि मानते थे और अन्य वर्ग के लोगों को बोलने का कोई अधिकार ही नहीं था क्योंकि पाकिस्तान मुसलमानों की आवश्यकता थी। (6) गांधी ने बटवारा उस तरह से स्वीकार किया जैसे एक परिवार में होता है और विशेष हित की बातें आरक्षित रहती हैं। जिन्ना पूर्ण सम्प्रभुता सम्पन्न दो राष्ट्रों की बात करते थे। यह भी कहा गया कि जिन्ना इस जिद पर भी अड़े थे कि (7) पंजाब, उत्तर पश्चिम सीमा क्षेत्र, सिंध, बलूचिस्तान, बंगाल और असम पाकिस्तान के भाग हो तथा (8) पाकिस्तान को भारत से होकर एक गलियारा रास्ते के रूप में प्रदान किया जाय जिससे पूर्व और पश्चिम के बीच सम्पर्क स्थापित किया जा सके।[1]

सी० आर० फार्मूला की अस्वीकृति के बाद केन्द्रीय विधायिका में कांग्रेस के नेता भूलाभाई देसाई ने और लीग के महामंत्री लियाकत अली ने व्यक्तिगत आधार पर एक नया फार्मूला तैयार किया।[2] पर यह फार्मूला भी कांग्रेस और लीग दोनों ने अस्वीकार कर दिया।

इस बीच गांधी को छोड़कर कांग्रेस के सभी नेता जेल में बंद थे और समय बीतने के साथ इसका विरोध बढ़ता ही गया। 1945 में यूरोप के क्षेत्र में युद्ध की स्थिति बेहतर हो गई। पर जापान से युद्ध लगता था अभी 2 वर्ष और चलेगा और इसके लिए भारत की सदिच्छा आवश्यक थी। यह आशा थी कि इस युद्ध के लिये भारत को ही मूल केन्द्र बनाया जायेगा। इसीलिए अमरिका का दबाव इंग्लैण्ड पर इस बात के लिए बढ़ता गया कि वह भारत की समस्याओं का समाधान करे। रूस ने भी इसी तरह का दबाव भारत पर डाला। भारत की बिगड़ती आर्थिक स्थिति ने भी अपनी भूमिका अदा की। मजदूरों ने अपनी स्थिति सुधारने की मांग की। कृषकों की दशा भी बेहतर नहीं थी। पर्याप्त भोजन का भी अभाव था। उड़ीसा और बंगाल में अधिक और पूरे देश में भुखमरी व्याप्त थी। 1943 और 1944 में भूख से $1\frac{1}{2}$ लाख लोगों ने जान गंवाई और $4\frac{1}{2}$ लाख लोग इस कष्ट में फंसे रहे। ये तो भारत सरकार के ही आंकड़े थे। पर भारतीय प्रशासन युद्ध में व्यस्त रहने के कारण इस ओर ध्यान नहीं दे पा रहा था। इसी बीच इंग्लैण्ड में भी चुनाव निकट आ रहे थे। चर्चिल की अनुदारवादी सरकार पर लेबर पार्टी द्वारा यह

---

1 फिलिप्स सी० एच० : द इवोल्यूशन आफ इंडिया एण्ड पाकिस्तान 1858 टू 1947 (सलेक्ट डाकुमेण्टस) पृ० 355-56, सीतारमैय्या : पूर्वोद्धृत भाग 2 पृ० 631-33।

2 ग्रोवर एण्ड अरोरा : पूर्वोद्धृत भाग 2 पृ० 556-57।

आरोप लगाया गया कि वह भारतीय स्थिति को सभालन मे अक्षम है और यदि भारत को सतुष्ट करने का प्रयास नही किया जाता तो चुनाव मे उनकी स्थिति खराब हो जायेगी।

इ ही परिस्थितियो मे वावेल ने 1945 के वसत मे इग्लैण्ड की यात्रा की और 1½ महीने तक भारतीय समस्याओ पर वहा विचार विमश किया। इस काल मे यूरोप मे युद्ध समाप्त हो गया और मित्र राष्ट्रो की दृष्टि जापान की ओर गई। इससे भारतीय समस्या समाधान और महत्वपूण हो गया। इसी कारण वायसराय के भारत वापसी पर लदन से राज्य सचिव मि० एमरी और भारत मे वावेल ने एक साथ बयान जारी किया। इस बयान को ही एमरी-वावेल योजना का नाम दिया जाता है या इसे वावेल योजना भी कहा जाता है।

वावेल योजना

यह बयान मूलत वायसराय के कायकारिणी परिषद से सबध रखता था जिसमे निम्न परिवतन प्रस्तावित थे (1) कायकारिणी परिषद की इस तरह से रचना की जायगी जिससे कि मुख्य सम्प्रदायो का इसमे सतुलित प्रतिनिधित्व हो जाय जिसमे मुसलमानो और हिन्दुओ का समान प्रतिनिधित्व हो। (2) इस उद्देश्य के लिए वायसराय एक सम्मेलन बुलायेगा जिसमे महत्वपूण दलो के नेता या मुख्यमत्री पद के अनुभव रखन वाले लोग तथा कुछ विशिष्ट अनुभव रखने वाले लोग होंगे। वायसराय इस सम्मेलन से कुछ नाम मागेगा जिनका नाम वह सम्राट को सस्तुत करेगा कि उन्हे वायसराय के कौंसिल का सदस्य बना दिया जाय। (3) पर ऐसी नियुक्तियो की सस्तुति का अधिकार वायसराय के हाथ मे ही रहेगा जिस इस मामल म पूरी छूट रहेगी। (4) कायकारिणी के सभी सदस्य भारतीय होंगे। इसके अपवाद केवल वायसराय और सेनापति हांगे। सेनापति युद्ध सदस्य की हैसियत से इसका सदस्य होगा। "यह आवश्यक है जब तक भारत की रक्षा का उत्तरदायित्व ब्रिटिश का है।" (5) इन प्रस्तावो मे से कोई प्रस्ताव सम्राट और भारतीय राज्यो पर प्रभाव नही डालेगा तथा वायसराय सम्राट का प्रतिनिधित्व करगा। (6) यदि केन्द्र मे इस तरह का सहयोग सभव हो गया तो इसकी छाया प्राता पर भी पडने की आशा थी। इसके द्वारा गवनर की सरकार 1935 के ऐक्ट के धारा 93 के अतगत प्रातो मे विभिन्न दलो के सविद सरकारो के हाथ म चली जायेगी। (7) विदेशी मामले (कबील और सीमा के मामले छाडकर जो भारत की सुरक्षा की तरह मान जाते थे) जहा तक ब्रिटिश भारत का प्रश्न था काय कारिणी के भारतीय सदस्य के हाथ म आना था। (8) यदि ऐसा हो जाता है

तो विदेशो मे भारत के बाहर विश्वस्त भारतीय प्रतिनिधि भेजे जायेंगे । (9) ये सभी परिवर्तन कानून म बिना किसी परिवर्तन के किये जाने थे। पर 1935 के 9वें शेडयुल म सशोधन किया जाना था जिसके अतगत परिषद सदस्यो म से तीन सदस्यो को सम्राट की सेवा म कम से कम 10 वर्ष की सेवा का अनुभव होना चाहिए था । (10) बयान मे घोषित किया गया कि "वतमान सविधान के अतगत इससे अधिक कुछ कर सकना व्यवाहारिक नही है।"

इस बयान के शीघ्र बाद ही काग्रेसी नता रिहा कर दिये गये और प्रस्तावित सम्मेलन शिमला मे आयोजित किया गया । वसे सम्मेलन तो बडी आशाआ के साथ प्रारभ हुआ पर वे सारी आशायें जिन्ना के कडे विरोध के कारण जहा की तहा रखी रह गईं । प्रस्तावित व्यवस्था पर जिन्ना का विरोध यह था कि यह पाकिस्तान के मसले को दफना देगा, इसस काग्रस की राष्ट्रीय एकता की योजना पूण हो जायेगी, और अतरिम व्यवस्था चूकि असीमित काल के लिए चलेगी जिससे भारत मे एकता की स्थापना हो सके और इस तरह मुस्लिम हितो की हानि होगी । पर इन सभी मागो से जिन्ना की यह माग जिसन इस योजना को समाप्त ही कर दिया, तगडी थी कि कौंसिल के लिए मुस्लिम सदस्यो को नामित करने का पूण अधिकार मुस्लिम लीग को है। वायसराय ने ये कहते हुए इस अस्वीकार कर दिया, "मुझे ऐसी कायकारिणी का निर्माण करना है जो प्रतिनिधित्वपूण, योग्य और सबको स्वीकाय हो । इस पर काग्रेस की प्रतिक्रिया यह थी कि "वह एक साम्प्रदायिक सस्था द्वारा इस तरह के अधिकार प्राप्ति को स्वीकार नही कर सकती और न ही यह अपने को एक सकुचित साम्प्रदायिकता की निचाई तक गिरा सकती है ।"

इस तरह वावल योजना भी बेकार हो गई। यह योजना अभी तक प्रस्तावित योजनाओ मे बेहतर स्थान रखती थी । अतरिम काल के लिए यह प्रगतिशील भारतीयो की महत्वाकाक्षा का आदर करती थी पर मुस्लिम लीग की जिद ने इसे कही का न रखा । पर लीग के पीछे ब्रिटिश कूटनीति भी कायरत थी । आलाचको न कहा कि इग्लैड का अनुदारवादी दल पुरानी बाटने और राज्य करने की नीति अपनाकर भारत पर अधिकार बनाये रखना चाहती थी। सपूण योजना ब्रिटिश चुनावो को ध्यान मे रखकर प्रस्तुत की गई थी। इसी कारण चुनाव के एक माह बाद ही वार्ता एकाएक समाप्त कर दी गई। इसका उद्देश्य भारतीय साम्प्रदायिक भेदभाव को विश्वशक्तियो के समक्ष उपस्थित करना था ।

पर यदि यह याजना असफल हो गई तो भी इसने अपने पीछे कुछ प्रभाव छोडा । हो सकता है इसे हर तरह से पसन्द न किया गया हो पर इसने देश

के राजनैतिक वातावरण को स्पष्ट कर दिया। पाकिस्तान मसले ने जोर पकडा और काग्रेस ने अनुभव किया कि यह अब इसके निमाण को नही रोक सकती। 1942 के हिंसा के उत्तरदायित्व के विवाद ने भारत की जनता पर नराश्य लाकर डाल दिया और उन्हाने सदेह व्यक्त करना प्रारभ कर दिया कि शायद काग्रेस अपने 'भारत छोडो' प्रस्ताव पर भी कही न ठहरे। काग्रेसी नेताओ की रिहाई और नेहरू व पटेल की इस स्पष्ट घोषणा न कि हिंसा उचित थी और वे 'भारत छोडो' प्रस्ताव पर चलते रहग, देश मे निराशा के बादल को छाट दिया और पूरे राष्ट्र मे सघष करने के लिए पुन उत्साहित कर दिया। इसके कारण काग्रेस के प्रति जनता पुन आदर से भर उठी जिसके फलस्वरूप आने वाले चुनावो मे उसे भारी सफलता मिली। इसके कारण एक तरह से 1935 के ऐक्ट म कोई प्रगति सभव न रह गई और अब इसके स्थान पर किसी और विधान को लाने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी।

कैबिनेट मिशन योजना

परिस्थितिया

1945-46 का वष भारत मे विकास की स्थिति को हमारे सामन प्रस्तुत करता है। शिमला सम्मेलन की असफलता के थोड काल के ही बाद पूणतया एक नये भारत का जन्म हो चुका था। काग्रेस के नेताओ की रिहाई न देश के कोने-कोने मे उत्साह की लहर ला दी। पर इसमे दो महत्वपूण घटनाओ ने भी अति महत्वपूण सहयोग किया जिसमे एक थी आई० एन० ए० का मुकदमा।

आई० एन० ए० का मुकदमा

पर्याप्त भारतीय सनिक ब्रिटिशो न सिंगापुर और मलाया भेजे थे। जब य क्षेत्र जापानियो के कब्जे म आ गए तो ब्रिटिश अधिकारियो ने इन्ह इनके भाग्य भरोसे छोड दिया। एक बगाली क्रातिकारी रास बिहारी बोस न जो जापान मे रह रह थे, जापानी युद्ध के नताओ से कहा कि इन युद्ध बदियो मे भारतीय देशभक्तो की एक सेना तैयार की जाय। सुभाष चन्द्र बोस 1941 की जनवरी म भारत से बचकर यहा पहुचे और आई० एन० ए० म सम्मिलित हो गये और इसे एक शानदार लडने योग्य सेना म बदल दिया। 1944 म इस सेना न भारत पर आक्रमण कर दिया और इस क्षेत्र के कुछ स्थानो पर अधिकार कर लिया। पर जल्दी ही जापान की पराजय हो गई और बर्मा पर ब्रिटिशो का अधिकार हो गया जिसके कारण आइ० एन० ए० के बहुत म

अधिकारी बंद कर लिए गये। ब्रिटिश उन्हें दंडित करना चाहते थे पर कांग्रेस ने यह कहकर इस पर एतराज किया कि इन लोगों को ब्रिटिशों ने छोड़ दिया था और यदि वे आइ० एन० ए० के अंतर्गत संगठित न हो जाते तो उन्हें सड़क आदि के निर्माण में लगा दिया जाता और इससे जापानियों को भारत जीतने में सुविधा ही प्राप्त होती। इस तरह इन्होंने यह सबसे उत्तम पथ अपनाया क्योंकि जापानियों ने वायदा किया था कि जिन भारतीय क्षेत्रों पर आई० एन० ए० का अधिकार होगा वे उसके अधिकारी होंगे। अंततः ब्रिटिश इनमें से कुछ पर खुले तौर पर मुकदमा चलाने को तैयार हो गये।

इस तरह हिन्दू, मुसलमान और सिख सम्प्रदायों के मेजर सहगल, मेजर जनरल शाहनवाज खां और कर्नल ढिल्लों पर खुलेआम लाल किले में मुकदमा चलाया गया। नवम्बर 1945 में मुकदमा प्रारंभ हुआ और कांग्रेस ने उनकी रक्षा का उत्तरदायित्व लिया और एक प्रसिद्ध वकील तथा कांग्रेस के नेता तथा केन्द्रीय विधायिका में कांग्रेस के प्रतिनिधि भूलाभाई देसाई ने उनके वकील का कार्य किया। पर तीनों लोगों को अंततः मौत की सजा दी गई। पर मुकदमा के चलने के समय एवं निर्णय के समय जनमत इतना तीव्र विरोध कर रहा था कि सरकार को जनमत के समक्ष झुकते हुये इस दंड को स्थगित करना पड़ा। जनमत की यह एक बड़ी विजय थी विशेषकर इसलिए कि इससे तीन सम्प्रदायों में एकता के दर्शन हुए। देश की राजनीति में जनता की इस रुचि ने ब्रिटिशों को यह समझा दिया कि जनता में जागृति आ गई है और अब भारत पर अधिकार अधिक समय तक बनाये नहीं रखा जा सकता।

जलसेना का विद्रोह

इस काल में बम्बई में जलसेना का विद्रोह एक अन्य महत्वपूर्ण घटना थी। कर्मचारियों में भेदभाव पहले ही पैदा हो चुके थे और यहां भी राजनैतिक मसले को लेकर झगड़े प्रारंभ हो गये। इस विद्रोह की कहानी का तब प्रारंभ हुआ जब कलकत्ता के निकट दमदम हवाई अड्डे पर आर० ए० एफ ने विद्रोह कर दिया। इसके बाद रायल इंडियन ऐअर फोर्स में भूख हड़ताल हुई और रायल इंडियन आर्मी में भी अनुशासनहीनता के दर्शन हुये। पर सबसे महत्वपूर्ण घटना तब घटी जब 18 फरवरी 1946 को बम्बई के जलसेना अधिकारियों ने विद्रोह कर दिया। 1857 के उपरांत यह पहला अवसर था जब सुरक्षा सेना के एक तबके ने खुले आम ब्रिटिशों के विरुद्ध राजनैतिक मसले पर विद्रोह कर दिया।' और इन सभी घटनाओं ने ब्रिटिशों को यह स्पष्ट कर दिया कि जब तक भारत की राजनैतिक समस्या का संतोषजनक हल नहीं

निकाला जाता तब तक सेना भी विश्वस्त नही रहेगी।"[1]

ब्रिटेन मे श्रमिक दल की सरकार

भारत के भाग्य स ग्रेट ब्रिटेन के इसी समय के चुनावा मे ब्रिटिश लेबर पार्टी की विजय हुई जिसन भारत का स्वतत्रता प्रदान करने के आश्वासन पर चुनाव लडा था। चर्चिल के अधानुगामी पराजित हो गये और पद ग्रहण करते ही श्रमिक दल के नेता व प्रधानमत्री मि० एटली न 1945-46 के जाडे म भारत एक ससदीय प्रतिनिधिमडल भेजा जिसे भारतीय स्थिति पर प्रतिवेदन देना था। प्रतिनिधिमडल इस बात स आश्वस्त हो गया कि भारतीय स्वतत्रता को अब और अधिक नही टाला जा सकता और इसलिय इसी तरह का प्रतिवेदन गह विभाग को द दिया। 14 फरवरी को भारत कबिनेट मिशन भेजने के प्रस्ताव की घोषणा हो गई और 15 माच 1946 को एटली ने हाउस आफ कामन्स म यह स्वीकारत हुय घोषणा की कि (1) भूतकाल म भारतीयो और ब्रिटिशो दोनो ने गलतिया की, (2) कि कोई भी भूतकालीन फामूला 1946 की भारतीय परिस्थिति मे नही लागू किया जा सकता, (3) आपस मे बटे होने के बावजूद सभी भारतीय स्वतत्रता प्राप्ति के सबध मे एकमत हैं, (4) भारत मे राष्ट्रीयता की नीव इतनी मजबूत हो गई है कि यह अब सैनिक क्षेत्रो तक पहुच गई है (5) और यदि वहा कुछ सामाजिक और आर्थिक समस्यायें हैं तो उसे भारतीय ही हल कर सकते हैं, और (6) इस लिये कैबिनेट मिशन "भारत भेजा जा रहा है जिसका उद्देश्य यह है कि भारत को शीघ्र से शीघ्र स्वतत्रता प्रदान कराये।'

इस मिशन के नेता थे राज्य सचिव लाड पेथिक लारेन्स (मिशन का नेतृत्व यही कर रहे थे), ऐडमिरेल्टी के प्रथम लाड मि० ए० वी० अलक्जाडर और बोड आफ ट्रेड के अध्यक्ष सर स्टैफड क्रिप्स। यह मिशन दिल्ली 24 माच को पहुँचा और यहाँ पहुँचते ही भारतीय नेताओ से तुरन्त बातचीत करने लगा। पर इस बातचीत से कोई सवमान्य फार्मूला सामने नही आया और अतत मिशन को 16 मई 1946 को अपनी ही एक योजना की घोषणा करनी पडी जिसका विवरण नीचे है। इस योजना को लम्बी अवधि की योजना का नाम दिया जाता है। यह अल्पकालीन योजना के विपरीत थी जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

मिशन ने मुस्लिम लीग की माग के अनुसार पाकिस्तान बनाये जाने की सभावना से इन्कार कर दिया और इसके लिये निम्न कारण दिये (1) एक

---

1 आजाद ए के पूर्वोद्धत प 131-32।

ऐसा हल जिसमे पजाब और बगाल प्रात का विभाजन होना था, उस प्रात के काफी लोगो की इच्छा और हित के विपरीत पडता था, (2) पजाब का कोई भी विभाजन सिखो को सीमा के दोनो ओर छोड देगा, (3) भारत मे *आवागमन, पोस्टल और तार व्यवस्था एक अखण्ड भारत के आधार पर की गई थी* । इसकी विच्छिन्नता भारत के दोनो भागो का अहित करेगी । (4) भारतीय सेना पूण भारत की रक्षा के लिय बनाई गई थी और उन्ह दो भागों मे बाटना पुरानी परम्परा पर कठोर आघात करेगा और सेना की कायक्षमता को कम कर देगा । इससे खतरे भी बढ जायेंगे । भारतीय जल सेना और वायु सेना भी बहुत कम प्रभावी रह जायेगी । (5) दो पाकिस्तान, भारत के दो छारो पर बनाने की जो योजना है उससे पाकिस्तान को सुरक्षित रखन मे भी कठिनाई होगी । (6) यह विचार महत्व का है कि भारतीय राज्य विभाजित ब्रिटिश भारत से किस तरह स सबध स्थापित करेंगे । (7) इसके अतिरिक्त भौगोलिक स्थिति भी ध्यान देने की है । प्रस्तावित पाकिस्तान के दोनो अगो के बीच दूरी *लगभग 700 मील होगी । ऐसी स्थिति मे युद्ध और शाति दोनो स्थितिया म* इसे भारत पर निभर करना पडेगा और दोनो अगो के बीच आवागमन के साधन की कठिनाइया भी रहेगी ।

भारत सघ

इस सबके बावजूद मिशन न कहा कि वह "मुसलमानो के सच्चे भय की ओर से आख नही मूदेगा जिसम उनकी संस्कृति तथा राजनैतिक व सामाजिक जीवन का एक भारत मे डूब जाने का खतरा हो ।" इसीलिये इन बातों को ध्यान मे रखकर, मिशन ने भारत के सघ के सबध म निम्न सस्तुतियाँ की—

(1) भारत का एक सघ होना चाहिय जिसम ब्रिटिश भारत और राज्य सम्मिलित हो । यह सघ निम्न विषयो को अपने अधिकार म रखेगा विदेशी मामले, रक्षा और सचार । इस इन विषयो पर होने वाले व्यय के लिये धन की व्यवस्था करने का अधिकार भी होना चाहिये । (2) सघ की एक काय पालिका और विधायिका होनी चाहिये जिसम ब्रिटिश भारत और राज्य के प्रतिनिधि होने चाहिये । किसी साम्प्रदायिक मसले के उठ खडे होने पर विधायिका के बहुमत से इसे तय होना चाहिये जिसम उपस्थित लोगो का बहुमत होना चाहिये । (3) सघीय विषयो को छोडकर अवशिष्ट शक्तिया प्रातो के पास होनी चाहिय । (4) सघ को प्रदान की गई शक्तियो क अतिरिक्त प्राता के पास शेष अधिकार बने रहेगे । (5) अपन कायपालिका व विधायिका के साथ प्राता को अपना एक स्वतत्र समूह बनाने की स्वतत्रता होनी चाहिये । (इसका अथ यह था कि मुस्लिम

बहुल प्रान्त अपने को एक समूह मे परिणत कर सकते थे और इस तरह एक सीमा तक सीमित पाकिस्तान की माग पूरी कर सकते थे।) (6) संघ और समूहो के संविधान मे एक यह प्रावधान होना चाहिये जिसके द्वारा कोई भी प्रान्त विधायिका मे अपने बहुमत से संविधान की धाराओ पर 10 वर्षों के बाद पुनर्विचार की माग कर सके और ऐसा ही आगे भी 10 वर्षों के बाद उसे करने का अधिकार हो।

मिशन ने यह आशा व्यक्त की कि स्वतंत्र भारत ब्रिटिश कामनवेल्थ का सदस्य बना रहेगा। पर यह काम भारत का अपना है कि वह ऐसा करे या न करे।

संविधान सभा

(1) उपरोक्त आधार पर संविधान बनाने हेतु संविधान सभा बनाने का प्रस्ताव निम्न विधि से किया गया (अ) संविधान सभा मे 389 सदस्य होने थे जिसमे से 292 ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि, 93 भारतीय राज्य के प्रतिनिधि और 4 चीफ कमिश्नर के प्रान्तो के प्रतिनिधि। (ब) ब्रिटिश भारत के प्रांतीय प्रतिनिधि 1 लाख की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि के अनुपात मे भेजे जाने थे। (स) प्रत्येक प्रान्त के लिये निश्चित की गई सीट का विभाजन विभिन्न सम्प्रदायो की जनसंख्या के अनुपात मे होना था। इस उद्देश्य के लिये केवल तीन तरह के निर्वाचन स्वीकार किये गये थे अर्थात सामान्य जिसमे मुसलमान और सिखो को छोडकर सभी लोग आते थे, तथा पंजाब के सिख और मुसलमान। अल्पसंख्यकों को दी जाने वाली पुरानी सुविधायें समाप्त कर दी गई। (द) भारतीय राज्य को भी प्रदान की जाने वाली सीटें जनसंख्या के आधार पर की गई। पर राज्य के प्रतिनिधियो की चुनाव विधि राज्य मे स्थापित वार्ता समिति के माध्यम से होनी थी।

(2) संविधान सभा की प्रारम्भिक बैठक के बाद प्रांतीय प्रतिनिधि तीन वर्गों मे बँट जाने थे अर्थात बम्बई मद्रास, उडीसा, बिहार, यू० पी० और मध्य प्रान्त के गैर मुस्लिम बहुल प्रान्त, पंजाब, सिंध, ब्रिटिश बलूचिस्तान तथा उत्तर प्रान्तीय सीमा क्षेत्र के मुस्लिम बहुमत के प्रान्त एवं असम और बंगाल के उत्तर पूर्वी मुस्लिम बहुल क्षेत्र।

इसके बाद इन तीनो को अलग अलग बैठकर अपने प्रान्त का संविधान तय करना था तथा उन्हे यह भी निर्णय करना था कि उनके प्रान्तो के लिये कोई समूह संविधान भी बनाया जायेगा। यदि ऐसा था तो वह किन प्रान्तीय

---

1 फिलिप्स सी एच पूर्वोद्धृत पृ 378 82।

विषयो को अपने अधिकार मे लेगा। जैसे ही नवीन सविधान कार्य करना प्रारम्भ कर देगा, प्रात को अपना समूह छोडकर अपने को अलग करने का अधिकार होगा। समूह से अलग होने का यह निर्णय नवनिर्मित प्रातीय विधायिका द्वारा लिया जा सकता था। यह नवीन सविधान के अतर्गत चुनाव के बाद ही होना था।

(3) इसके बाद तीनो वर्गो के प्रतिनिधि भारतीय राज्यो के प्रतिनिधियो के साथ एकत्रित होकर सघीय सविधान बनायेगे। सघीय सविधान सभा मे केन्द्र और प्रान्तो के विभिन्न विषयो के वितरण की बात होगी। यहा पर साम्प्रदायिक मसला तभी उठाया जा सकेगा जब बहुमत इसका समर्थन कर रहा हो और दोनो सम्प्रदायो के लोग इसमें मत दे रहे हो।

(4) ब्रिटिश सरकार इस सविधान सभा द्वारा बनाये गये सविधान को लागू करेगी।

सधि

यह आवश्यक होगा कि सघीय सविधान सभा और इग्लैण्ड के बीच एक सधि की जाय जिसमे शक्ति हस्तातरण से सबधित बाते होगी।

अतरिम व्यवस्था

प्रमुख दलो के समर्थन से एक अतरिम सरकार शीघ्र ही बनाई जायगी। युद्ध सदस्य सहित सभी पक्ष सरकार को सौप दिये जायेगे। ब्रिटिश उन्हे हर तरह की सहायता और सहयोग देंगे।

राज्य

राज्यो के सबध मे मिशन ने कहा कि ब्रिटिश भारत को शक्ति हस्ता तरण के बाद, ब्रिटिश सम्राट के लिये उन पर प्रभुसत्ता बनाये रखना कठिन हो जायेगा। और साथ ही इस प्रभुसत्ता को ब्रिटिश भारतीय सरकार को सौंपना भी सभव नही होगा।

एक मूल्याकन—16 मई 1946 के कैबिनेट मिशन प्रस्ताव भारत के टेढे मसले का ब्रिटिशो द्वारा हल करने का एक अच्छा प्रयास था। पर इस समस्या को भी उन्होने उत्पन्न किया था। इन प्रस्तावो के माध्यम से विभिन्न दलो को सतुष्ट करने की चेष्टा भी की गई और राष्ट्रवाद के सिद्धान्त को भी बचाय रखने का प्रयास किया गया। लार्ड वावेल ने स्वय कहा 'इन प्रस्तावो ने मुस्लिम सम्प्रदाय को अपने धर्म शिक्षा, सस्कृति और आर्थिक हित मे रुचि लेने का अवसर प्रदान किया।' द्वितीय व तृतीय वर्ग के प्रात तथा

उनको प्रदान की गई स्वायत्तता तथा सविधान बनाने का अधिकार एक तरह से लीग की पाकिस्तान की माग की भूख को शान्त करता था, पुन लाड वावेल ने आगे कहा कि प्रस्ताव "भारत की एकता की रक्षा करते हैं जो दो सम्प्रदायो के सघर्ष मे तबाह होने की स्थिति मे है और विशेष तौर पर इससे भारतीय सेना टूटन से बची जा रही है इसी की शक्ति एकता और कायक्षमता पर उसके भविष्य की सुरक्षा निभर करती है।" इसके अतिरिक्त "सिखो के लिये ये प्रस्ताव उनकी मातभूमि पजाब की एकता की रक्षा करते हैं" और इसके अतिरिक्त ये 'एक विशेष समिति का प्रावधान भी करते हैं जो सविधान निर्मात्री मशीनरी का एक अग है जिसके माध्यम से अल्पसख्यक लोग अपनी आवश्यकता जाहिर कर सकते है और अपने हित की रक्षा करा सकते हैं।"

प्रस्तावित सविधान सभा म सभी भारतीय होने थे। इसके सदस्या का चुनाव प्रजातान्त्रिक सिद्धान्ता पर आधारित आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर होना था। 1935 के ऐक्ट म जो बेहूदे ढग स साम्प्रदायिक व वर्गीय विभाजन किये गये थे उसे समाप्त कर दिया गया और साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व केवल सिखा और मुसलमानो क लिय ही रखा गया। अल्प सख्यको के नाम पर दी जाने वाली सुविधायें समाप्त कर दी गइ। और यह भी स्पष्ट घोषित कर दिया गया कि सविधान सभा द्वारा बनाये गये सविधान को लागू किया जायेगा।

राज्या के सबध म भी जो प्रस्ताव किये गये वे पहले से अधिक प्रगति के सूचक थे। क्रिप्स योजना के अतगत सविधान सभा के लिये राजा प्रतिनिधिया को नामित करता था पर अब राज्यो को वार्ता समितिया बनानी थी जो ब्रिटिश भारतीय प्रतिनिधियो से मिलकर प्रतिनिधियो के चुनने का तरीका तय करते थे। इस तरह स्पष्ट रूप से इन परिस्थितिया मे राज्या की जनता को अपना प्रतिनिधि चुनकर भेजन म अधिक अधिकार प्राप्त हुआ।

सघीय सरकार को सभी विषयो म पूण स्वतन्त्रता प्राप्त थी पर उन क्षेत्रो मे नही जो वह अपनी इकाइया का सौप देता था। अतरिम सरकार को सभी पोटफोलियो देने का निणय हुआ साथ ही ब्रिटिश सहयोग का आश्वासन भी।

पर फिर भी प्रस्तावा मे खामिया थी। वस तो मुस्लिम अल्पसख्यका क अधिकार की रक्षा की गइ पर अन्य लोगा जैस सिखो की ओर अधिक ध्यान नही दिया गया। अपने 6-7 जुलाई 1946 के अखिल भारतीय काग्रेस समिति के भाषण म सरदार वल्लभ भाई पटेल ने विशेष रूप स 'सिखा के प्रति होन वाले अन्याय की चर्चा की और कहा कि सिखो से पहल परामश नही किया गया और उन्ह हाथ पैर बाधकर दूसर समूह म फेंक दिया

गया और इसलिये व कष्ट के भाव की अनुभूति कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त सिखों को वही सुरक्षा और साम्प्रदायिक निषेधाधिकार नहीं प्रदान किये गये जो मुसलमानों को मिले।"[1]

कम तो संविधान सभा प्रजातांत्रिक आधार पर बननी थी, पर यह जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व नहीं करती थी क्योंकि सार्वजनिक वयस्क मताधिकार नहीं प्रारंभ किया गया था। इसके अतिरिक्त प्रांतों के लिये समूह का निर्माण अस्पष्ट था और कांग्रेस और लीग दोनों इसका अलग-अलग अर्थ लगाते थे। वर्गीय परिषदों को पहले अलग-अलग अपना संविधान बनाना था और इसके बाद उन्हें एकत्रित होकर संघ का संविधान बनाना था। प्रगतिशील तत्व यह मानते थे कि यह घोड़े के सामने गाड़ी ला खड़ा करने का एक प्रयास है। इस तरह जहां एक ओर केन्द्रीय संविधान सभा विभाजक तत्वों का खेल का मैदान होने वाली थी दूसरी ओर प्रांतों के हाथ से कठिनाई से प्राप्त स्वायत्तता निष्फल जानी थी क्योंकि प्रांतीय संविधान वर्गीय असेम्बली के द्वारा तय होना था। दूसरे समूह में कांग्रेस बहुत प्रान्त, उत्तर पश्चिम सीमा क्षेत्र तथा तीसरे समूह में असम प्रान्त के हितों की साम्प्रदायिक लीग के हाथों कमर टूटनी थी।

भारतीय राज्यों पर से प्रभुता समाप्ति की बात भी दुर्भाग्यपूर्ण थी। इस प्रभुता को भारतीय संघ को नहीं सौंपा गया और राज्यों को यह स्वतंत्रता दी गई कि वे चाहें तो संघ में सम्मिलित हों या न हों। इन राज्यों से आशा थी कि वे अलग ही रहना चाहेंगे जिस स्थिति में जनता का बहुत अहित था और राष्ट्रीय हित की भी हानि थी। होना तो यह चाहिये था कि राज्यों की वार्ता समिति राज्य का प्रतिनिधित्व करे पर ऐसा कहा होना था।

यह ठीक था कि एक प्रतिनिधित्वपूर्ण अंतरिम सरकार की स्थापना की जायेगी। पर यह स्पष्ट नहीं था कि यह कितने दिनों तक कार्य करेगी।

मिशन की असफलता

18 जुलाई, 1946 को ब्रिटिश संसद में सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने भारत में कैबिनेट मिशन के इतिहास का अच्छा और विस्तृत विवरण दिया।[2] उसके अनुसार दलों से होने वाली बातचीत को चार भागों में बांटा जा सकता है (1) भारत

---

1 बनर्जी, ए सी एण्ड बोस, डी आर (कम्पाइल्ड बाई) द कैबिनेट मिशन इन इंडिया।

2. पार्लियामेंटरी डिबेट्स कामन्स फिफ्थ सीरीज भाग 425 प 1394 1416।

मे मिशन के पहुचने से लेकर अप्रैल तक, (2) अप्रैल के अत से 16 मई तक जब मिशन ने अपनी पहली घोषणा की जिसका विवरण ऊपर आ चुका है, (3) 16 मई से 16 जून तक जब मिशन ने अपनी दूसरी घोषणा की और (4) 16 जून से 29 जून तक जब मिशन इग्लैंड वापस हुआ।

प्रथम काल

प्रथम काल मे काग्रेस ने इस बात पर जोर दिया कि अतरिम सरकार का मसला पहले तय कर लिया जाय और इसके बाद सविधान सभा के प्रश्न पर विचार किया जा सकता है। दूसरी ओर लीग इस बात पर जोर देने को अडी हुई थी कि वे अतरिम सरकार के प्रश्न पर पहले बातचीत करने को तैयार नही हैं जब तक कि सविधान निर्मात्री सभा का प्रश्न न तय हो जाय। लीग पूणतया पाकिस्तान की रचना पर दृढ थी जबकि दूसरी ओर काग्रेस उसी जोश व खरोश के साथ भारत की एकता को बनाये रखने पर तुली थी। पर उनका कहना था कि वे किसी क्षेत्रीय इकाई को उनकी इच्छा के विपरीत भारतीय सघ मे बनाये रखने के पक्ष मे नही हैं। मिशन ने इस पर यह निश्चय किया कि प्रथम लबे अरसे वाले प्रश्न तय कर लिये जाय और उसके तुरत बाद अतरिम सरकार के प्रश्न से निबटा जाय।

द्वितीय काल

इस काल मे शिमला मे एक बैठक आयोजित की गई जहा पर लबी अवधि की योजना पर विचार हुआ। कुछ प्रस्ताव पेश किये गये और दोनो दल अपने मत से कुछ हटकर आगे बढे। पर दो सप्ताहो के विचार विमश के उपरात जब उन्हे और निकट लाना सभव न रहा, बैठक समाप्त कर दी गई और विचार विमश के सदभ मे मिशन ने अपनी ही योजना को अतिम रूप दिया और अपनी दिल्ली वापसी पर उसने इसे 16 मई को घोषित कर दिया।

तृतीय काल

16 मई की घोषणा के उपरान्त, लीग ने 6 जून को इसे निश्चित स्वीकृति प्रदान की। वैसे इसने पाकिस्तान के मसले पर इस घोषणा की आलोचना भी की। पर काग्रेस अब भी चाहती थी कि लम्बी अवधि और सक्षिप्त अवधि के प्रश्न एक साथ ही हल किये जाय और इसके अतिरिक्त 16 मई की घोषणा पर भी कुछ गलतफहमिया थी। 25 मइ को मिशन ने काग्रेस की गलत फहमी दूर करने के लिये एक स्पष्टीकरण प्रसारित किया।

काग्रेस ने जिन बिन्दुओं पर जोर दिया वे थे प्रथम, क्या प्रान्तों को सविधान सभा के तीन वर्गों (वर्ग अ, ब, स) के रूप में पहली बार ही आने को बाध्य किया जायगा या वे इच्छानुसार इसमें नहीं भी आ सकते थे। मिशन ने इसे बिल्कुल स्पष्ट कर दिया कि यह योजना का आवश्यक अंग है कि प्रान्त वर्गों में बटेंगे बस यदि वे किसी समूह में सम्मिलित हो गये तो उन्हें उससे बाहर निकलने का भी अधिकार होगा। इस बात का भय व्यक्त किया गया कि सविधान इस तरह से बनाया जा सकता है कि प्रान्त बाद में समूह से न निकल सकें। पर क्रिप्स ने व्यक्तिगत रूप में इस भय को आधारहीन बताया। दूसरा सदेह युरोपीय मत को लेकर था। काग्रेस ने कहा कि सविधान भारतीयों द्वारा बनाया जायगा। युरोपीयों की इस मसले पर कोई स्थिति नहीं थी। बगाल विधायिका में युरोपीय पार्टी ने तथा असम में उन्होंने बिना पूछे ही यह स्पष्ट किया कि वे चुनावों में भाग नहीं लेंगे।

सक्षिप्त अवधि की व्यवस्था अथवा अतरिम सरकार के प्रश्न पर वायसराय ने शिमला में इस प्रस्ताव पर विचार विमर्श करना प्रारभ किया कि अतरिम मत्रिमण्डल में काग्रेस के 5 लीग के 5 और अल्पसख्यकों के 2 प्रतिनिधि होने चाहिये। काग्रेस ने दो मुख्य दलों की इस तुलनात्मक स्थिति को उचित नहीं माना। मिशन ने इस कठिनाई को दूर करने के लिए दलित वर्ग की ओर से एक प्रतिनिधि काग्रेस से और सम्मिलित करने को कहा। इस तरह काग्रेस के 5 के स्थान पर 6, लीग के 5 अल्पसख्यकों के 2 (जिसमें से एक सिख) और सब मिलाकर 13 मत्रिमडल के सदस्य होने को हुए। जिन्ना ने यह प्रस्ताव अपनी समिति के समक्ष रखना स्वीकार किया पर काग्रेस अब भी सतुष्ट नहीं थी। जिन्ना और नेहरू के बीच एक बैठक करने का प्रस्ताव किया गया, पर यह पूरा नहीं हुआ और कठिनाई बनी रही।

जब दोनों मुख्य दल अतरिम सरकार को बनाने की योजना पर सहमत नहीं हो सके तो मिशन को पुन अपनी योजना प्रस्तुत करनी पड़ी जो दोनों दलों को स्वीकार्य हो। इसके परिणामस्वरूप 16 जून को दूसरी घोषणा करनी पड़ी जिसके निम्न बिन्दु थे (1) 14 सदस्यों का एक अतरिम मत्रिमडल बनाया जायगा। इनमें से दलित वर्ग के एक प्रतिनिधि सहित 6 काग्रेस के, 5 लीग के 1 सिख 1 पारसी और 1 भारतीय ईसाई होंगे। (2) वायसराय पोर्टफोलियो का वितरण दोनों प्रमुख दलों के परामर्श से करेगा। (3) अतरिम सरकार की उपरोक्त रचना को भविष्य के किसी साम्प्रदायिक समस्या के हल के लिये आधार नहीं माना जायेगा। (4) यदि यह प्रस्ताव मान लिया गया तो वायसराय 26 जून के आस पास नई सरकार का प्रारभ करेगा। (5) दोनों मुख्य दलों या उनमें से किसी एक के

इस योजना के अस्वीकृति की स्थिति मे वायसराय अतरिम सरकार की स्थापना की कार्यवाही के लिये आग बढेगा और यह चेष्टा करेगा कि जो इसे स्वीकार करते हैं उनका और अन्य का प्रतिनिधित्व इसमे हो। (6) वायसराय प्रातो के गवनर को निर्देश दे रहा था कि वह प्रातीय विधायिकाओ को तुरन्त बुलाकर आवश्यक चुनाव कराये जिससे कि 16 मई की घोषणानुसार सविधान निर्मात्री सभा की रचना हो सके।[1]

स्पष्टतया द्वितीय घोषणा अब भी काग्रेस और लीग के बीच अतार्किक ढग से समान स्तर पर ही ले रही थी। पर इस खराब परिस्थिति मे इससे बेहतर कुछ सभव न था। काग्रेस म दलित वग के 1 प्रतिनिधि सहित आशा थी कि सिख व पारसी भी उन्ही का साथ देते। इस तरह मन्त्रिमडल म काग्रेस को विशेष कठिनाई न होती। इसके अतिरिक्त यह भी घोषणा की गई थी कि इस व्यवस्था को भविष्य के लिये उदाहरण नही माना जायेगा। प्रातो मे चुनाव की आज्ञा देकर दीघकालीन योजना को चलते रहने दिया गया। इसके लिये यह प्रतीक्षा नही की गई कि सक्षिप्त काल की योजना को स्वीकृति मिल जाय।

चतुर्थ काल

अब की बार जिन्ना ने यह कहा कि वे काग्रेस के निणय की प्रतीक्षा करेंगे और तब लीग अपना निणय लेगी। दूसरी ओर काग्रेस अब भी हिन्दू और मुसलमानो मे समान स्तर की बात को ठीक नही मानती थी। अनुसूचित जाति को वह हिन्दुओ के समान मानती थी। इसके बावजूद क्रिप्स ने बताया कि हो सकता है काग्रेस ने इस दुर्भाग्यपूर्ण बात का स्वीकार किया हो और इसी समय जिन्ना के कुछ पत्रो को प्रसारित किया गया जिसमे से एक म कहा गया था कि "मुस्लिम लीग काग्रेस द्वारा किसी मुसलमान का नामित किया जाना स्वीकार नही करेगी।" इस तरह यह तुरन्त एक समस्या बन गयी। सच यह था कि काग्रेस अपने सदस्यो म से एक हिन्दू के स्थान पर एक मुसलमान को रखने पर विचार कर रही थी जिससे हिन्दू मुस्लिम समानता की समस्या का समाधान हो जाय और क्रिप्स के मतानुसार वे मुसलमानो को नामित करने की बात शायद स्वीकार कर लेते। पर जब यह चुनौती दी गई कि यह उनका अधिकार है तो कठिनाई आ गई। इस सबध म क्रिप्स ने कहा 'यह बात एक बार से अधिक जिन्ना के सामने स्पष्ट की गई कि न तो वायसराय और न मिशन उसके इस अधिकार को स्वीकार करते हैं कि

1 फिलिप्स, सी एच पूर्वोद्धत प 185-86।

मुस्लिम लीग के माध्यम से मुस्लिम नियुक्तिया की जाय। वैसे यह निश्चित रूप से माना जा सकता है कि वह मुस्लिम हितो की मुख्य प्रतिनिधि है।"

अतत कांग्रेस ने 16 मई की बात मान ली, पर अतरिम सरकार की बात अस्वीकार कर दी। पर सिखो ने 16 मई की बात यह कहकर अस्वीकार कर दी कि मुसलमानो की भाति उन्हे सुरक्षा नही प्रदान की गई है। पर कांग्रेस ने सिखो को इसे यह आश्वासन देकर स्वीकार कराया कि उनके लिये सुरक्षा की व्यवस्था की जायेगी। क्रिप्स के अनुसार कांग्रेस ने एक उत्तम राजनयज्ञता का काय किया क्योकि इससे नय सविधान के काय को आगे बढने का अवसर आया।

तब तक लीग 16 जून के प्रस्ताव पर किसी निणय पर नही पहुची थी क्योकि वे कांग्रेस के निणय की प्रतीक्षा कर रहे थे। पर अब जिन्ना ने लीग काय समिति की सहमति से 16 जून का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। जिन्ना ने सभवत सोचा कि इसके बाद ब्रिटिश लीग मात्र की सहायता से अतरिम सरकार की रचना करेंगे जैसाकि 16 जून के विवरण म कहा गया था कि वायसराय 'इसके बाद अतरिम सरकार की रचना करेगा जिसका प्रतिनिधित्व इसको स्वीकार करन वाले लोग करेंगे।' पर जिन्ना को तब बडी निराशा हुई जब उन्होने देखा कि ऐसा नही हुआ क्योकि प्रमुख दल ने इस योजना को अस्वीकार कर दिया है। इसी बीच मिशन ने 29 जून को इग्लण्ड के लिये प्रस्थान कर दिया।

राज्य

16 मई के प्रस्तावो के सबध मे राज्यो की प्रतिक्रिया ठीक थी। उन्होने सघ मे सम्मिलित होन की उत्कट इच्छा प्रकट की। पर इस सबध में वार्ता समितिया और मुख्य ब्रिटिश भारतीय दलो के बीच बातचीत आवश्यक थी क्योकि इसी के आधार पर राज्यो का प्रतिनिधित्व सविधान परिषद मे होना था और उसी से सघ मे उनकी अतिम स्थिति बननी थी।

अन्य गतिविधिया

सविधान सभा के लिय चुनाव के आदेश दे दिये गये थे और जिस दिन कैबिनट मिशन ने भारत छोडा कमचारियो की एक प्रभारी सरकार देश का प्रशासन चलाने के लिये बना दी गई। इस चुनाव की देखभाल भी करनी थी। इस बीच वायसराय लाड वावेल अतरिम सरकार बनवान के लिय प्रयास करते रहे। 22 जुलाइ को उन्होन कांग्रेस व लीग के अध्यक्षो को इस सबध म नये प्रस्ताव भेजे जिसम 16 जन के प्रस्तावो को दुहराया गया। इसम जो नय

प्रस्ताव जोड गये वे थे—(1) काग्रस और लीग को किसी के द्वारा प्रस्तावित नाम का विरोध का अधिकार नही होगा। (2) वायसराय ने कहा कि वह "एक सभा के आयोजन का स्वागत करेगा यदि काग्रेस भी इसे स्वीकार करे क्योंकि साम्प्रदायिक मसले दोनो दल मिलजुल कर ही निबटा सकते हैं।"

लीग ने इन प्रस्तावो को अस्वीकार कर दिया क्योंकि वह मन्त्रिमडल के लिये काग्रेस द्वारा किसी मुसलमान का नाम प्रस्तावित किया जाना बर्दाश्त नही कर सकती थी। पर काग्रेस ने इसे स्वीकार कर लिया और चूकि बडे दल ने इसे स्वीकार कर लिया इसलिये वायसराय ने जवाहरलाल नेहरू को अपने मन्त्रियो के नाम भेजने को कहा। मन्त्रिमडल के 14 सदस्यो का प्रस्ताव किया गया जिसमे से 5 मुसलमान होने थे।

लीग की सीधी कार्यवाही

यह लीग के लिये बहुत बडी चोट थी जिसे सरकार बनाने का अवसर नही दिया गया था जबकि 16 जून का प्रस्ताव उसने स्वीकार कर लिया था। लीग ने अब बदले के भाव से काम किया, उसने कबिनेट मिशन की दीर्घ और अल्पकालिक दोनो योजनाओ की अपनी स्वीकृति वापस ले ली और पाकिस्तान प्राप्ति के लिये सीधी कार्यवाही करने की अपनी योजना व इच्छा की घोषणा की। 16 अगस्त 1946 को लीग द्वारा सीधी कार्यवाही दिवस मनाने का निश्चय किया गया और उस तिथि को जो कुछ हुआ उसमे राष्ट्रवादी नताओ की आँखें खुल गईं क्योंकि उस दिन पराकाष्ठा के साम्प्रदायिक दगे हुये। सीधी कार्यवाही दिवस का प्रारभ कलकत्ता से हुआ जहा भीड ने कभी न घटने वाली हिंसा का अवलम्ब लिया। "पूरा नगर खून, हत्या और आतक म डूब गया। सकडो जीवन' बर्बाद हो गये। हजारो घायल हो गये और करोडो रुपये की सपत्ति स्वाहा हो गई।" यह विवरण मौलाना आजाद ने दिया है। पर आश्चर्य यह था कि इस सबके बावजूद ट्रको पर लदी सैनिको की टुकडी तमाशबीन बनी रही। जब आजाद ने, जो उस समय कलकत्ता म ही थे, उनसे पूछा वे शाति स्थापना मे सहायता क्यो नही कर रहे हैं तो उन्होने उत्तर दिया कि उन्ह आदेश दिया गया है कि वे तैयार खडे रह पर कोई कार्यवाही न कर।"[1] सभवत एच० एस० सुहरावर्दी का लीग मन्त्रिमडल यह दिखाना चाहता था कि यदि लीग की मागें न मानी गइ तो क्या कुछ हो सकता है। बेगुनाह हिन्दू मुसलमानो के हाथ कलकत्ता म शिकार हुये। पर अन्य स्थानो के हिन्दू कलकत्ता के मुसलमानो से पीछे नही रहना चाहते थे, और उसी

1 आजाद ए के पूर्वोद्धत पृ 159।

वप अक्टूबर म उन्होने नोआखाली के मुसलमाना पर प्रतिशोधात्मक आक्रमण किया। और इसकी प्रतिक्रिया म पजाब म भयानक खून खराबी हुई।

लीग का सरकारो मे प्रवेश

पर इस सबके बावजूद केन्द्र सरकार मे लीग को सम्मिलित करने के प्रयास जारी रहे और अतत मत्रिमडल के लिये 5 सदस्य नामित करने के लिये जिन्ना तयार हो गये। पर यह कायवाही उन्होंने काई हृदय परिवतन के कारण नही की क्योंकि जिन्ना ने 13 अक्टूबर 1946 को लाड वावल को लिखा कि वायसराय ने लीग के बिना ही काम करने का जो निणय किया उससे 'काग्रेस के हाथ म शासन सौंपकर केन्द्र सरकार का प्रशासन दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति को पहुच जायेगा। इसके अतिरिक्त आप अपनी अतरिम सरकार म मुसलमान सदस्य भी नामित कुये पा सकत हैं जो मुस्लिम भारत का आदर और विश्वास अपने साथ नही रखते और जिसका परिणाम अति गभीर होगा और अतत अन्य महत्वपूण कारणो से जो स्पष्ट हैं और जिनको यहा प्रस्तुत करने की आवश्यकता नही है हमने लीग की ओर से 5 सदस्य नामित करने का निश्चय किया है।" यहा अन्य महत्वपूण कारणा को जिन्ना ने स्पष्ट नही किया था जिसका अथ था कि उसके मस्तिष्क म पर्दे के पीछे कुछ खुराफात थी। सच यह था कि लीग मत्रिमडल मे काग्रेस से लडने के लिये सम्मिलित हुई। लीग के सदस्य लियाकत अली को अथ जैसा महत्वपूण विभाग सौंपा गया। उसके नेतृत्व मे अथ मत्रालय यह दिखाने पर तुल गया कि बिना उसके सहयोग के सारी सरकार ही पगु हो जायेगी।

सविधान सभा

परिस्थिति को और बिगाडने के लिये इसी बीच मुस्लिम लीग ने एक और चाल चली। कबिनेट मिशन के 16 मई के प्रस्ताव के अनुसार सविधान सभा के लिय चुनाव जुलाई 1946 मे ही हो गये। इन चुनावो मे 210 मे से 199 सीटें जीतकर काग्रेस ने महती सफलता अर्जित की। पर मुस्लिम क्षेत्रा मे मुस्लिम लीग की सफलता भी कम महत्वपूण न थी। इसने यहाँ 78 मे से 73 सीटें प्राप्त की। सविधान सभा की बैठक के लिये वायसराय ने 9 दिसबर की तिथि तय की। पर सभा की बैठक के पूव ही लीग ने इसम सम्मिलित न होने की घोषणा कर दी। इसका कारण सभवत 16 मई के कबिनेट मिशन के घोषणा के सबध म काग्रेस और लीग का अलग अलग अथ लगाना था। काग्रेस के अनुसार इसका सही अथ यह था कि प्रान्तो को यह निणय करने का अधिकार था कि व अपना समूह भी बनायें और सविधान भी। पर लीग के

अनुसार वग मे निणय साधारण बहुमत के आधार पर लिये जाने थे जिसका अथ था कि तृतीय श्रेणी मे आने वाले प्रात असम को अपनी इच्छा के विरुद्ध उसी स्थिति म रखा जा सकता था यदि उस समूह के प्रतिनिधि वैसा ही निणय कर दें। असम जो एक हिदू प्रात था उसे भी अपने लिये एक सविधान बनाना था जो वग मे साधारण बहुमत से तय होना था चाहे वह इसकी आवश्यकतायें न भी पूरा करता हो।

दोनो दलो के प्रतिनिधियो की बैठक लदन मे बुलाई गई जहा वावेल भी साथ गया। पर यहा भी समझौता नही हुआ। ब्रिटिश सरकार ने कानूनी सलाहकारो की इस पर राय ली जो लीग के पक्ष मे गई जिसके कारण लीग की मागो मे उच्छखलता और कडापन बढ गया। काग्रेस ने जोर दिया कि यदि लीग सविधान सभा की बैठक मे सम्मिलित नही होती है तो इसे सरकार मे बने रहने का अधिकार नही है, लीग ने इसके उत्तर मे छीटाकसी की कि काग्रेस को भी सरकार मे रहने का अधिकार नही है क्योकि सही रूप मे उसने 16 मई की घोषणा को नही स्वीकार किया है।

इस सब के बावजूद सविधान सभा की बैठक पूव निधारित तिथि 9 दिसबर को हुई जिसमे लीग के सदस्य उपस्थित नही हुये। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद इसके सभापति चुने गये, सभा ने अपनी कायवाही प्रारभ की। पर सारी कायवाही अनिश्चित और अस्पष्ट थी। स्पष्टतया अतरिम सरकार की कायवाही म बाधा पड गई थी, और सविधान सभा मे एक मुख्य दल की अनुपस्थिति से लगा कि कैबिनेट योजना असफल हो गई है। यदि किसी ने इस पूरे नाटक से कुछ प्राप्त किया तो वह थी लीग और पाकिस्तान का विचार क्योकि आत्मकेंद्रित और क्रुद्ध लीगियो के व्यवहार मे सरदार पटेल जैसे काग्रेसी नेता असहायता की स्थिति मे हो गये और वे खुलेआम यह कहने को बाध्य हो गये कि लीग को उसका पाकिस्तान दे दिया जाय जिससे शेष भारत तो शातिपूवक विकास कर सके। इसी बीच वावेल भारत से पदमुक्त हो गया।

1947 मे वावेल जब भारत से वापस लौटा तो उसे अल की उपाधि से विभूषित किया गया और उसे लदन टावर का कास्टेबुल नियुक्त किया गया। 1949 मे विस्काउन्ट मेरसे ने लिखा, "वह अपनी खेल और साहित्यिक अभिरुचि को बनाये हुये है। समय समय पर उसने अपनी दजनो हडिडया तोडवा डाली हैं और सनिक विषय पर उसने कई पुस्तकें लिखी है तथा कुछ कविताओ का सग्रह भी निकाला है।'

"लाड कानवालिस, हेस्टिंगज, हार्डिंज और वावल ही मूलरूप से ऊँचे पदो के सिपाही थे जिन्हे भारत मे गवनर जनरल भी बनाया गया।" लाड

वा ाल "सुनता अधिक है आर बोलता कम। उसका एक तकिया कलाम है—आई सी (अच्छा)।"[1]

1 मरये निस्राउष्ट द वायसरायज प 151 52।

9

लार्ड लुई माउण्टबेटन

(1947)

स्वाधीनता की ओर

'बर्मा के अर्ल माउण्टबेटन, गार्टर के नाइट, बाथ तथा भारत के नाइट ग्रैण्ड क्रास, तथा अनेक प्रतिष्ठित सेवा उपाधियों आदि के प्राप्तकर्त्ता (लगभग 30 के) माउण्टबेटन ने अपने को 600 ई० मे पल्लवित होने वाले एक फ्रैंकिश सामंत ड्युक यहुल्फ की 41वी पीढ़ी का मानते थे।"[1] महारानी विक्टोरिया एवं एडवर्ड की पुत्री एलिस मॉड मेरी ने 1862 मे हेस के राजकुमार लुई से विवाह किया। यही व्यक्ति बाद मे हेस और राइन का ग्रैण्ड ड्युक लुई चतुर्थ कहलाया। इस दम्पति की 5 संताने थी जिनमे सबसे बड़ी विक्टोरिया ही हमारे नायक की मां थी। महारानी विक्टोरिया की पौत्री राजकुमारी विक्टोरिया का विवाह बटेनबर्ग के राजकुमार लुई से हुआ। यही आगे चलकर मिल्फोर्ड हेवन के प्रथम मार्क्विस और फ्लीट के एडमिरल हुये। लुई माउण्टबेटन का जन्म 25 जून 1900 को हुआ। उसके पिता एक अति योग्य नाविक थे और प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारंभ होने पर उसे प्रथम 'सी लार्ड' की उपाधि प्रदान की गई। लुई को उत्तराधिकार में यह गुण प्राप्त हुये और जल सेना की सेवा में उसने अत्यधिक रुचि ली। उसकी शिक्षा आसबर्न, डर्टमाउथ और क्राइस्ट कालेज मे हुई। वह जल सेना सेवा मे 1919 में प्रविष्ट हुआ। 1922 मे उसने एडवीना एशले से विवाह किया। वह लार्ड माउण्ट टेम्पुल के विल्फ्रिड व प्रसिद्ध अर्थज्ञानी की पुत्री थी। 1921 में वह प्रिंस आफ वेल्स के साथ भारत आया। यहां उनका स्वागत हिंसा और झगड़ो से किया गया। गांधी ने राजकुमार की यात्रा का बहिष्कार करने का आह्वान किया था। इस यात्रा के दौरान राजकुमार को भारत के कई राजाओ से घनिष्ठ संबंध स्थापित करने का अवसर मिला। वह गांधी से मिलना चाहता था पर भारत सरकार ने इसके लिये आज्ञा ही नहीं प्रदान की। इसी यात्रा के दौरान माउण्टबेटन

---

1 ह्यू अल्डन : माउंटबेटन, लंदन 1966 पृ० 6।

की भेंट दिल्ली म एडवीना स हुई और दोनो ने विवाह करने का निश्चय कर लिया। दानो के बीच यह प्रणय परिचय वतमान दिल्ली विश्वविद्यालय के कक्ष सख्या 13 मे हुआ। बाद मे जब ‑स बात की सूचना लुई ने नहरू का दी तो उन्होने उत्तर दिया, उस क्षण तो मै भी निकट के जेल म कोठरी सख्या 13 म था।"

लुई के जीवन मे उत्थान अति शीघ्र हुआ। 1942 म उसे कम्बाइण्ड आपरश‑स का पियर नियुक्त किया गया और उसे ऐक्टिग वाइस एडमिरल एव आनरेरी लेफ्टीनेंट जनरल तथा ए र वायस माशल का पद प्रदान किया गया। 1943 मे उसका पुन उत्थान हुआ जब उसे दक्षिण पूर्वी एशिया कमान का सुप्रीम एलाइड कमाडर बनाया गया। इस काय के लिये उसने पहले नई दिल्ली, फिर लका मे काडी और बाद मे सिगापुर को काय के‑द्र बनाया। इस पद पर उसने ब्रिटिश और अमेरिकन समुद्र स्थल और वायु सेना का सेना पतित्व बर्मा, मलाया और हिन्द महासागर मे किया। उसे जनरल मैकआथर और स्टिलवेल के साथ भी काम करना पडा। जनरल आइजनहावर उसकी बडी प्रशसा करत थ। सिगापुर म समपण की कायवाही के उपरात, जब लुई के पास सेनापति का काय न रहा तो उसे कुछ राजनीतिक और मानवीय काय सौपे गय। इसमे खाद्य सामग्री और औषधि के पूर्ति क अतिरिक्त नालियो के मरम्मत का विभाग भी था। सिगापुर के सरकारी निवास मे के‑द्र बनाकर अब वह बर्मा, मलाया, सिगापुर, स्याम, सुमात्रा, डच ईस्ट इडीज, फ्रेंच इन्डो चाइना आदि के 1 लाख वग मील के क्षेत्र पर, जिसम 1 करोड 28 लाख लोग रहते थे शासन करता था। उसकी पत्नी एडवीना सेंट जान ऐम्बूले स ब्रिगेड की मुख्य सुपरिन्टेन्डेंट थी। इसके अतिरिक्त वह "रडक्रास के सयुक्त युद्ध सघ की अध्यक्षा थी। उसने जमनी स मित्रराष्ट्रो के तमाम युद्धबदियो को प्राप्त करने म भूमिका अदा की थी, इस तरह से यह कहा जा सकता है कि उसे इस क्षेत्र मे पर्याप्त जानकारी थी।[1] भारतीय अतरिम सरकार के प्रभावशाली व्यक्ति प० जवाहरलाल नेहरू से इसी स्थान पर लुई का परिचय हुआ था। नहरू वहा भारतीय सनाओ से मिलने तथा वहा बस जान वाले भारतीयो की स्थिति का पता लगाने गये थे। स्थानीय अधिकारी "नेहरू का परेशान करना चाहत थे, उनके आने जाने पर रोक लगाना चाहते थे और भारतीय समुदाय के लोगो से उनके मिलने पर रोक टाक की तैयारी म थे। मैंने सोचा यह तो विनाशकारी होगा। यह व्यक्ति स्पष्टतया भारत का प्रधान

1 टरेन आन वाइफ एण्ड टाइम्स आफ लाड माउटबटन, लदन, 1968 पृ 133।

मन्त्री होने जा रहा था। ऐसा करने से भविष्य म आग्ल भारतीय सबध कैसे हो जाते। स्थानीय अधिकारियों ने नेहरू जी के लिये कार तक का इतजाम नही किया था इसलिये मैंने अपनी कार उनको दे दी।" यह विवरण लुई ने प्रस्तुत किया है।[1] माउण्टवेटन न सरकारी निवास पर उनका स्वागत किया और सडको पर उनके साथ घूमे जहा जनता ने उनका शानदार स्वागत किया। यह लुई, एडवीना और नेहरू के बीच गहन मित्रता का प्रारभ था जो बाद मे उस समय अति लाभदायक सिद्ध हुई जब माउण्टवेटन भारत का वायसराय होकर आया।

भारतीय समस्या का समाधान हाथ से निकलता जा रहा था। लाड वावेल ने गाधी और नेहरू दोनो का विश्वास खो दिया था और ब्रिटिश प्रधानमत्री भी उसे नापसन्द करता था। जब वावेल के स्थान पर नियुक्ति होने वाली थी तो एटली ने कहा, "एकाएक मैं उत्साहित हो गया। मैंन माउण्टबेटन के विषय मे सोचा।" वह आगे लिखता है कि, "अब माउण्टवेटन पूणतया एक उत्साही और शानदार व्यक्तित्व वाला हो गया था। अब उसमे ऐसे गुणो का सृजन हो गया था कि वह सब तरह के लोगो के साथ रह सकता था। इसका परिचय उसने दक्षिण पूव एशिया के सेनापतित्व काल मे दिया भी था। उसे बहुत अच्छी पत्नी पाने का भी सौभाग्य प्राप्त था। इसलिये मैं यह काय उसे ही सौंप रहा हूँ। डिकी (लुई इसी नाम स जाना जाता था) के लिए यह कुछ कष्टकारक हो सकता है, आप जानते है।" माउण्टवेटन इस जगह की प्राप्ति के लिय आतुर नही था। उसकी महत्वाकाक्षा उस जल सेना की ओर थी जहा 1914 मे उसके पिता को प्रथम सी लाड के पद से स्तीफा देना पडा था। माउण्टवेटन जमन जाति के थे। युद्ध के प्रथम सप्ताह म इग्लैंड मे तमाम जमन विरोधी भावना फैली। तमाम जमन दूकानो और चर्चों को लूट लिया गया और सरकारी सेवा मे कायरत जमन व्यक्ति अविश्वस्त मान जाने लगे। माउण्टवेटन परिवार पर भी आक्रमण हुआ और इ ही परिस्थितियो म उसके पिता को स्तीफा देना पडा था और इसी समय से इस परिवार ने अपना नाम बटनबग से बदलकर माउण्टवेटन रख लिया। लुई न अपमानित अनुभव किया था और तभी से वह उस पद को प्राप्त करने के फिराक मे था जिसकी सुविधा उसके पिता को नही मिल पाई थी। इसलिय जब भारत मे उस यह उच्च पद प्रदान किया गया तो स्वाभाविक रूप से उसको कठिनाइयाँ थी। एटली को उस इसके लिये समझाना पडा। इस पद को स्वीकार करने से पूव लुई ने

1 वही प 139 40।
2 हैच बडन पूर्वोद्धत प 333।

तमाम शर्तें प्रदान की। उसन कहा कि वह इस पद का तभी स्वीकार करेगा जब भारतीय नेता उसे इसके लिये आमन्त्रित करेंगे। पर उसे इसके बारे म कहा गया कि यह व्यावहारिक नहीं है। पर उसकी यह शत स्वीकार कर ली गई कि उस भारतीय नेताओं के निवास पर भी जाने की अनुमति दी जाय। उसकी दूसरी शत थी कि उसे अपना काय करने के लिये अपने साथ अपने कमचारी ल जाने की अनुमति दी जाय। इसको भी स्वीकार कर लिया गया। इसके बाद उसन चाहा कि उसे लदन के इडिया हाउस के प्रतिबधों से मुक्त हो स्वाधीनता से काय करने की छूट दी जाय। यह एसी पूर्णाधिकारी माग थी जिसे अभी तक किसी वायसराय को नही सौंपा गया था। जब यह माग उसके सामने आई तो एटली हतप्रभ रह गया। पर अतत इस बिन्दु पर भी माउण्टबेटन को सफलता प्राप्त हो गई। माउण्टबेटन इस बात के लिये भी आतुर था कि उसके जल सेना के जीवन पर भी कोई प्रभाव न पडे। एटली ने इसे भी स्वीकार कर लिया। उसे जो नियुक्ति पत्र दिया गया उसमे लिखा गया था, 'बर्मा का रियर एडमिरल द विस्काउण्ट माउण्टबेटन, सेकण्ड टेम्परेरी ड्यूटी—वायसराय आफ इण्डिया।'

लुई को जसे ही भारत का वायसराय नियुक्त किया गया, उसने भारतीय समस्याओं का अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया। पद को स्वीकार करने से पूव वह सम्राट से मिला था और उससे कहा था कि इस बात की पूरी सभावना है कि जिस काय के लिये मैं जा रहा हू उसम मैं भारत म असफल हो जाऊँ और यह बात आपके राजपरिवार के लिए उचित नही होगी। पर राजा ने इसके उत्तर म कहा 'पर यह सोचो कि कितना अच्छा होगा यदि तुम इस राजतत्र के उत्तराधिकारी हो जाओ। माउण्टबेटन को पता था कि भारत की राजनतिक स्थिति पचीदी है। साइमन क्रिप्स और कबीनेट मिशन द्वारा समस्या हल के तमाम प्रयास किये गये। पर साम्प्रदायिक भेदभाव और ब्रिटिश के प्रति यह सदेह कि वे भारत छोडना नहा चाहत रास्ते का रोडा बन हुए थे। माउण्टबेटन ने इसीलिये एटली से ज़ोर देकर यह कहा कि भारतीयो म समझौता हो या न हो हमे जून 1948 को ब्रिटिश को भारत स वापिस बुला लेने की तिथि घोषित कर देनी चाहिये। एटली ने इस मामल म भी माउण्टबेटन की बात स्वीकार कर ली। सामान्यतया यह समझा जाता था कि अतरिम सरकार तथा सविधान सभा की अनिश्चितता का वातावरण खतरनाक है और यह अधिक काल तक नही चल सकता। भारतीय नताओ के मस्तिष्क से सदह दूर करने और घटनाक्रम को तीव्रता से आगे बढाने क ही लिये एटली न लुई की बातें मानकर फरवरी 1947 को अपनी एतिहासिक घोषणा की।

एटली का फरवरी 1947 का वक्तव्य

वक्तव्य में यह कहा गया कि, (1) "ब्रिटिश सम्राट की सरकार यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि उनका यह निश्चित उद्देश्य है कि भारत के उत्तरदायी लोगों के हाथों में शक्ति का हस्तांतरण जून 1948 से पूर्व ही हो जाय।" (2) यदि पूर्ण प्रतिनिधित्व प्राप्त संविधान द्वारा कैबिनेट प्रस्तावों द्वारा तब तक संविधान नहीं बन पाता, तो सम्राट की सरकार को 'यह सोचना पड़ेगा कि ब्रिटिश भारत में निश्चित तिथि को केन्द्रीय सरकार किसके हाथों सौंपी जाय। यह ब्रिटिश भारत में पूर्ण रूप से किसी प्रकार के केन्द्रीय सरकार को, या कुछ प्रांतों में प्रांतीय सरकारों को या किसी और को जो उचित लगे तथा जो भारतीय जनहित में हो।" (3) वैसे तो अंतिम अधिकार का हस्तांतरण जून 1948 तक संभव न होगा पर इसके लिये तैयारी प्रारंभ कर दी जाय। (4) भारतीय राज्यों के संबंध में ब्रिटिश भारत सरकार को सार्वभौम शक्ति नहीं सौंपी जायगी और न शक्ति हस्तांतरण से पूर्व इस व्यवस्था को समाप्त किया जायेगा। पर यह विचाराधीन है कि इस बीच के काल के लिए सम्राट और इन राज्यों के बीच संबंध हेतु कोई समझौता हो जाय।

यह वक्तव्य सचमुच भारतीय इतिहास में एक मील का पत्थर था। इसने ब्रिटिश के प्रति सारे संदेह को समाप्त कर दिया। पंडित नेहरू ने इसे जान कर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये कहा कि, इसने न केवल सभी गलतफहमियां और संदेहों को ही दूर किया बल्कि इसने एक सत्य को आधार बना लिया है और भारतीय परिस्थिति के लिए यह एक उत्तम वक्तव्य है।" जिन्ना ने इसके विषय में कहा, 'इस क्षण मैं कुछ भी कहने से इंकार करता हूँ। पर साथ ही यह बता देना चाहता हूँ कि मुस्लिम लीग अपनी पाकिस्तान की मांग से एक इंच भी पीछे नहीं हटेगी।" इससे वह पाकिस्तान की मांग की पूर्ति के प्रति और आश्वस्त हो गया क्योंकि अब उस निश्चित तिथि के पूर्व कांग्रेस को उससे समझौता करना ही पड़ेगा जिससे कि तमाम विनाश से बचा जा सके। इंग्लैण्ड में इस पर तरह तरह की प्रतिक्रियायें थीं। विंस्टन चर्चिल ने कहा, 'तथाकथित राजनैतिक वर्गों के द्वारा भारत सरकार का सौंपकर, हम इसे गये गुजरे लोगों के हाथ सौंप रहे हैं, जिनका कुछ दिनों के बाद कहीं अता पता नहीं रहेगा।'[1] जो भी हो, माउण्टबेटन ने भारत प्रस्थान से पूर्व पर्याप्त अधिकार अपने हाथ में प्राप्त कर लिये जिससे वह जैसा उचित समझे भारत के भाग्य का फैसला कर सकता था।

---

1 मोस्ले, लियोनार्ड द लास्ट डेज आफ ब्रिटिश राज लंदन 1964 पृ 53।

माउण्टबेटन को अपन कमचारी भारत ल जान की अनुमति मिली थी। एस लोगा म एक व्यक्ति उसन फील्ड माशल लाड इस्मे का चुना। इस्म इग्लड म सनिक जीवन स कमक्षेत्र म कूदन वाला एक अनुदारवादी, चर्चिल का युद्ध सहायक था और इग्लड म उसका बडा प्रभाव था। माउण्टबटन न उस इस लिय चुना जिसस कि वह टोरी विरोध का उसके माध्यम स झेल सके। इसके लिय वह इस व्यक्ति पर भरोसा कर सकता था जिस उसन चीफ आफ स्टाफ नियुक्त किया। दूसरा व्यक्ति जो पद म इस्म स नीचे था और जिस चुना गया वह था सर एरिक मीविले। इस भारतीय प्रशासन का पर्याप्त अनुभव था। वह गवनर जनरल विलिग्डन का प्राइवट सक्रेट्री रह चुका था और बाद मे सम्राट जाज पचम के असिस्टट प्राइवट सक्रेट्री की हैसियत स काय किया था। अन्य जिन 4 लोगा का चुना गया वे बर्मा मे उसक सहायक रह चुके थ। व थे, कैप्टेन रानाल्ड ब्राकमन कमाडर जाज निकाल्स, लेफ्टीनन्ट कनल वनन अमक्नि म तथा एलेन काम्पबेल जासन। अन्तिम व्यक्ति उसका प्रचार सहायक था जिसका काय भारतीय लोगा मे तथा समाचारपत्रा म माउण्टबेटन के विचारा का प्रचार करना था। इसके अतिरिक्त उसके साथ उसकी सुदर पत्नी एडवीना भी थी जिसन शीघ्र ही नेहरू का विश्वास और मित्रता हासिल कर ली। इसके अतिरिक्त पटेल की पुत्री तथा जिन्ना की पुत्री स भी उनकी मत्री हा गई जिनका भारतीय नेताआ पर बडा प्रभाव था। उनकी पुत्री पामेला सदा गाधी जी की प्राथना सभा मे जाया करती थी। वह स्वतत्रतापूवक लोगा की मित्रता और सदाशयता प्राप्ति हेतु घूमा करती थी।"

जब माउण्टबेटन भारत पहुचा तो यहा की स्थिति दयनीय थी। लीग के सकुचित दृष्टिकोण के कारण अतरिम सरकार और सविधान सभा दोना उलझन मे थी। गत साम्प्रदायिक दगा न हिन्दुआ और मुसलमाना दोना के दिलो म घाव कर दिया था तथा और इसी तरह की मुसीबत के लिये वातावरण तैयार हो रहा था। एटली के फरवरी के वक्तव्य ने भी स्थिति म परिवतन लान मे कोई विशेष सफलता अजित नही की थी। "यदि कोई आशा की जाती थी कि इससे लीग और काग्रेस भय के कारण एक दूसरे के अधिक निकट आ जायेंगे तो ऐसा नही हुआ। शक्ति सघष और तीव्र हो गया, विशेष कर झगडे वाल क्षेत्रा म तो और।"[1]

भारत पहुचत ही माउण्टबेटन ने 24 मई 1947 को पद ग्रहण किया। और उसके तुरत बाद महत्वपूण भारतीय नेताआ स मिलना प्रारभ किया। वह नेहरू स मिला और स्पष्ट रूप से उनसे कहा, 'मुझे आप ऐसा वायसराय

1 ग्वेर एण्ड अप्पादाराई का स्टोच्यशनस डिमोक्रेसी, प xuu।

न समझें जो ब्रिटिश राज को यहा समाप्त करने आया हुआ है बल्कि एसा व्यक्ति समझे जो नये भारत को नई दिशा देना चाहता है।' नहरू इससे बहुत प्रभावित हुये और गदगद होते हुये उ होने उत्तर दिया, "अब मेरी समझ मे आया कि वे आपके आकषण के खतरे की जब चर्चा करते हैं तो उसका क्या अथ है।" इसके बाद माउण्टबेटन जिन्ना से मिले। साक्षात्कार की समाप्ति के बाद उसने कैम्पबेल जानसन से कहा, 'हे ईश्वर! वह तो भावशून्य था। सारे साक्षात्कार का समय उसे पिघलाने मे ही देना पडा।" वह गाधी से भी मिला और पहली ही बैठक म उनसे हसी मजाक प्रारभ हो गया। माउट बेटन को पता था कि गाधी का व्यक्तिगत प्रभाव पर्याप्त था। उसे यह पता था कि वह गाधी को सदा अपने साथ नही ले चल सकता पर उसे यह भी पता था कि यदि वह उसके विरोधी हो जाय तो वह कही नही पहुच सकेगा। माउन्टबेटन को लगा कि गाधी के विचार प्राय अव्यावहारिक थे। उदाहरण के लिए दूसरी ही भेंट मे गाधी ने माउन्टबेटन से कहा कि उनकी इच्छा है कि केन्द्र मे अकेले जिन्ना को ही सरकार बनान दिया जाय। माउण्टबेटन को पता था कि यह केवल बात की बात है और जब इसे काग्रेस के समक्ष प्रस्तुत किया गया तो उसने इस पर विचार तक करने से इकार कर दिया। पर फिर भी वायसराय ने गाधी से निकटता हासिल कर ली और गाधी वायसराय को सपत्नीक अपना मित्र मानते थे।

'डिकी वर्ड' योजना

माउण्टबेटन प्रतिदिन नाश्त की मेज पर नाश्ते के बाद अपने साथियो से उस समय की स्थिति पर बातचीत करते थे और वायसराय की हैसियत से वह अम्पायर की तरह उस पर निणय भी देते रहते थे। अपने कायकर्ताओ के अतिरिक्त जिन्हें वह इग्लड से लाये थे, उसके सहायताथ एक भारतीय को भी रखा जिसका नाम था वी० पी० मेनन और जो एक भारतीय आई० सी० एस० अधिकारी थे। इसने वायसराय की बडी सहायता की।

भारत मे पहुचने के कुछ दिनो के भीतर ही, माउण्टबेटन ने एक योजना तैयार कर ली जिसे भारतीय स्वाधीनता की 'डिकी बर्ड योजना' कहा जाता है। यह योजना सचमुच कैबिनेट मिशन की उस योजना से मिलती जुलती थी जिसमे शक्ति का हस्तान्तरण एकतरफा इस सिद्धान्त पर किया जाना था कि प्रान्तो को पहले स्वाधीन राज्य बना दिया जाय। इस योजना न भारतीय सघ के विचार को या भारत एव पाकिस्तान के उत्तराधिकारी अधिराज्य बनाये जाने के विचार को स्वीकार नही किया। मद्रास, बम्बई, यू० पी०, मध्य प्रान्त

विहार उडीसा, असम तथा बगाल पजाब और उत्तर पश्चिम सीमा क्षेत्र व मुस्लिम बहुल प्रान्तो को स्वाधीन घोषित होना था और व सब अलग-अलग यह तय करने को थे कि भारतीय सविधान परिषद म सम्मिलित हुआ जाय या नही। इस योजना को अतिम रूप देन स पूव माउटबेटन ने इसके विषय म विस्तार स बताय बिना अनौपचारिक रूप स भारतीय नेताओ म बातचीत भी की थी। उस ऐसा लगा कि वे सब उसकी इस योजना को स्वीकार कर लेग और इसीलिए उसन लाड इस्म व जाज एवल को लदन मत्रिमडल स इस योजना का स्वीकृत कराने के लिय भेजा। इस योजना को इग्लड प्रेषित करन क बाद माउटबेटन शिमला चले गय, जहाँ नेहरू भी उनक मेहमान के रूप म उपस्थित हुय। एक दिन रात्रि के भोजन क बाद उसन नेहरू को विश्वास म लेने के लिय इस योजना का मसविदा भावुकता म उनक सामन रख दिया। माउण्टबेटन न सोचा था कि नेहरू इसे पढेंगे और देखकर प्रसन्न होंगे। पर उसे उस समय बडी निराशा हुई जब उसन नेहरू का चेहरा धीरे धीरे क्रोध स लाल होता हुआ देखा। नेहरू न उस योजना को मेज पर फेंक दिया और कहा 'इससे कुछ नही होगा। मैं इस तरह की कोई योजना स्वीकार नही करूगा।" दूसरे दिन माउण्टबेटन को नेहरू जी का एक पत्र मिला जिसमे लिखा था "योजना के अतगत जो प्रस्ताव के चित्र प्रस्तुत किये गये हैं वे अशुभ हैं। व केवल भारत को ही जोखिम म नही डालेंगे बल्कि भविष्य के भारत इग्लड सबधो को भी बर्बाद कर देंगे प्रस्तावो के फलस्वरूप भारत का बाल्कनीकरण तो हो ही जायगा साथ ही देश म इससे लोगो मे सघष को भी बढावा मिलगा जिससे हिसा व अव्यवस्था फैल जायेगी।"

माउण्टबेटन आश्चयचकित रह गया। ऐसा लगा कि उसका पूरा काय प्रारभ होन के पूव ही भरभराकर गिर जायेगा। उसन तुरन्त इग्लैंड को तार भेजा कि मत्रिमडल द्वारा स्वीकृत योजना अब रद्द की जाती है। वहा से उत्तर आया "आखिर यह सब कसे हो गया?"

माउण्टबेटन न इस तरह की 'डिकी बड योजना इस डर स बनाई थी कि जिन्ना पाकिस्तान के लिए अधिराज्य की स्थिति को स्वीकार कर सकता है पर काग्रस ऐसा कभी नही करेगी। पर शीघ्र ही उसे इस मसले पर भी मेनन द्वारा बताया गया कि उसने सरदार पटल से बात की है और एसी आशा है कि काग्रेस भी अधिराज्य की स्थिति को स्वीकार कर ले। सच यह था कि मेनन न सरदार पटेल से इस मसले पर विस्तार से वातचीत की थी और उस यह बताया था कि अधिराज्य की स्वीकृति से शक्ति का हस्तातरण शातिपूवक सभव हो जायेगा और साथ ही इससे ब्रिटिशो की भारत क प्रति सदाशयता और मित्रता भी बनी रहेगी। इसके अतिरिक्त इससे ब्रिटिश अधिकारियो को

इस पर लबा चौडा विचार विमर्श हुआ पर जब इसे एटली के सामने प्रस्तुत किया गया तो उसने इसे स्वीकार करने मे 5 मिनट भी नही लिया।[1] इस तरह से अतत भारत की स्वाधीनता और विभाजन की प्रक्रिया को एक स्वरूप मिला।

माउण्टवेटन योजना

इतिहास मे जिसे 'माउटवेटन योजना' का नाम दिया जाता है उसके मुख्य प्रस्ताव अधोलिखित थे—(1) भारत का विभाजन अनिवाय है। (2) बगाल और पजाव की विधायिका मे मुस्लिम बहुल जिलो के प्रतिनिधि और वे (युरोपीय सदस्यो को छोडकर) जो शेष प्रान्त का प्रतिनिधित्व करत हैं अलग अलग बैठक करेंगे और बहुमत से निणय करेंगे कि उनका प्रान्त विभाजित हो या न हो। यदि एक भाग बटवारे का निश्चय करता है तो इसे मान लिया जायेगा। बटवारे के निश्चय के बाद ये फिर यह निणय करेंगे कि दिल्ली की सविधान सभा मे सम्मिलित हुआ जाय या नई सविधान सभा बनाई जाय। (3) सिंध की विधायिका सपूण रूप से एक विशेष बैठक मे यह निश्चय करेगी कि दिल्ली की सविधान सभा मे सम्मिलित हुआ जाय या नई सविधान सभा म जाने वाला का साथ दिया जाय। (4) असम मे एक मुस्लिम बहुल जिले सिल्हट मे जनमत सग्रह कराया जाय और यह पता लगाया जाय कि यदि बगाल का विभाजन हो तो व बगाल मे सम्मिलित होंगे या असम म बने रहगे। (5) उत्तर पश्चिम सीमा प्रात के मसले पर भी जनमत सग्रह कराया जाय कि वे दिल्ली के साथ रहगे या पाकिस्तान के साथ। (6) ब्रिटिश बलूचिस्तान को भी ऐसा ही उचित अवसर प्रदान करने की बात विचाराधीन थी। (7) भारत के प्रमुख दलो के द्वारा भारत की राजनैतिक समस्या के समाधान के लिये हो जान वाल समझौते ने शक्ति हस्तान्तरण के काल को 20 फरवरी के वक्तव्य की घोषित तिथि से पहले ला उपस्थित किया। इसीलिये "इगलड की सरकार ने अपनी ससद मे यह बिल रखने का प्रस्ताव किया कि शक्ति का हस्तातरण एक या दो अधिकारिया का इसी वप 'अधिराज्य स्थिति' की दशा म प्रदान किया जाय।"

माउटवेटन की योजना के नियमा तगत बगाल और पजाव विधायिका के हिदू सदस्या न बटवार के पक्ष म मत दिया और दिल्ली क साथ रहने का निणय किया। सिंध और उत्तर पश्चिम सीमाप्रात ने पाकिस्तान मे

1 मोसले लियोनार्ड पूर्वोद्धृत प 125 127।

सम्मिलित होने के लिये मत दिया । सिलहट ने भी पूर्वी बगाल मे जाना स्वीकार किया ।[1]

यह प्रश्न हो सकता है कि काग्रेस नेता जो लगातार भारत के विभाजन का विरोध कर रहे थे कैसे भारत के बटवारे के लिये तैयार हो गये । लाड माउटबेटन का कहना था, 'मेरा अपना भी अभिमत था कि एक भारत ही सही उत्तर था पर देश मे होने वाले बलवा और खून खराबी ने इसकी आशा को धूमिल कर दिया सभी मुस्लिम लीग के नेता जिनसे मैंने बात की उन सभी ने स्पष्ट रूप से कहा कि वे बटवारे के इच्छुक है ।" इसी कारण लाड माउटबेटन शीघ्र ही बटवारे के पक्ष मे हो गया । सरदार पटेल भी केन्द्रीय सरकार म मुस्लिम लीग के सदस्यो के व्यवहार के कारण इस मसले पर ढुलमुल हो चले थे । इस कारण लाड माउटबेटन के आकषक फुसलाव के भाव ने तथा श्रीमती माउटबेटन के सुदर तर्कों ने अतत पडित नेहरू को भी पाकिस्तान रचना को स्वीकार कर लेने के लिये बाध्य कर दिया होगा । पर मौलाना आजाद लगातार इस योजना का विरोध करत रहे । उन्होने लाड माउटबेटन से कहा कि यदि देश का विभाजन हुआ तो इसके विभिन्न भागा म खून की नदिया बह जायेंगी । पर उनकी भविष्यवाणियो की ओर किसी ने ध्यान नही दिया एव वायसराय ने उन्ह असफलतापूवक आश्वस्त करते हुए कहा, "मैं यह दखूगा कि दगा फसाद न हो । मैं एक सनिक हू साधारण नाग रिक नही हू ।"[3] गाधी जिन्होंने इसके पहले मौलाना आजाद से कहा था कि पाकिस्तान का निर्माण उनके मरे हुये शरीर पर ही सभव होगा, वे भी मौन स्वीकृति की मुद्रा मे थे । गाधी ने कहा, "प्रत्यक व्यक्ति स्वाधीनता के लिए आतुर है । काग्रेस ने व्यवहारत बटवारा स्वीकार कर लिया है । इस योजना के द्वारा उन्ह एक काठ की रोटी पकडा दी गई है । यदि वे इसे खाते हैं ता पेट के दद से मरेंगे । यदि वे इसे छोड देते है तो भूखे मर जायेंगे ।"[4] पर उन्होने जोर देकर कभी इसका विरोध नही किया ।

पाकिस्तान के पक्ष मे लाड माउटबेटन के तक जिसका विवरण मौलाना आजाद ने दिया है वे थे, "काग्रेस ने एक कमजोर केन्द्र को इसीलिए स्वीकार कर लिया था जिससे लीग के दतराजो का मुकाबला किया जा सके । प्रान्तो को इसीलिय पूण स्वायत्तता प्रदान कर दी गइ । पर एक ऐसा देश जो भाषा

1 और विस्तार के लिये देखें कम्पबल जान्सन एलेन मिशन विद माउटबटन टरेन जान लाइफ एण्ड टाइम्स आफ लाड माउण्टबटन ।
2 दखें टरेन जान पूर्वोद्धत प 142 153 ।
3 मोस्ले लियोनाड पूर्वोद्धत प 129 ।
4 वही प 128 ।

सम्प्रदाय संस्कृति मे इस तरह विभाजित हो, एक कमजोर केन्द्र व अलगाव वादी प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता था। यदि मुस्लिम लीग न होती तो वह एक मजबूत केन्द्र की योजना बना सकता था और ऐसा सविधान भी रच सकता था जो भारतीय एकता पर नजर रखे। लार्ड माउटबेटन का मत था कि यह अधिक उत्तम होगा कि उत्तर पश्चिम और उत्तर पूर्व मे कुछ टुकडे त्याग दिये जाय और फिर एक मजबूत व सगठित भारत का निर्माण किया जाय।"[1] अपनी इच्छा के विपरीत जिन्ना को पजाब और बगाल का विभाजन स्वीकार करना पडा और इस तरह उन्हे एक क्षतविक्षत पाकिस्तान ही प्राप्त हुआ। इन्ही परिस्थितियो मे मौलाना आजाद तथा कुछ अन्य लोगो के विरोध के बावजूद अखिल भारतीय काग्रेस समिति ने बटवारे का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

बिल को अतिम रूप प्रदान होने तक बीच मे कुछ कठिनाइया आई। जिन्ना ने दबाव डाला कि उन्ह पूर्व और पश्चिम पाकिस्तान को मिलाने वाला 1000 मील लबा स्थलीय रास्ता भारत के क्षेत्रो से होकर चाहिये। लीग नेता के इस प्रस्ताव ने काग्रेस नेताओ को आश्चर्य मे डाल दिया। पर माउटबेटन ने वातचीत करके इसे टाल दिया। काग्रेस नेताओ ने भी कुछ आपत्तियाँ उठाइ। वे चाहते थे कि यदि भारत ब्रिटिश कामनवेल्थ को छोडे तो उन्ह इसके लिये आश्वस्त किया जाय कि पाकिस्तान को भी उसकी सदस्यता से मुक्त कर दिया जायेगा। यहाँ पुन वी० पी० मेनन ने वायसराय की सहायता की और भारतीय नेताओ को समझाया कि यह माग तकसगत नही है। काग्रेस नेताओ ने एक अन्य माग जो की वह उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त से सबधित थी जहा पर काग्रेस समर्थक मुस्लिम नेता खान साहब अलग पख्तूनिस्तान की माग के विचार का प्रचार कर रहे थे। काग्रेस नेताओ ने कहा कि उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त को भारत या पाकिस्तान मे सम्मिलित होने का अवसर प्रदान करने के साथ ही साथ यह अवसर भी दिया जाय कि यदि वह चाहे तो स्वतत्र रहे। उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त के अलग स सगठन बनाने से तमाम समस्याये पैदा होती इसलिए मेनन ने काग्रेस नेताओ को इस माग से विरत रहने का सफलता पूर्वक निवेदन किया। एक अन्य समस्या तब आई जब सुहरावर्दी न यह माग की कि बगाल को स्वतत्र राज्य घोषित किया जाय। पर जिन्ना इसके लिये तैयार नही हो सकते थे इसलिय इस माग को भी नही माना गया।

स्वीकृत योजना के विषय मे तार से इग्लड को सूचित कर दिया गया जहाँ एक बिल अति शीघ्र तयार किया गया और इसकी सूचना 22 जून को

---

1 आजाद ए के इंडिया विन्स फ्रीडम कलकत्ता 1959 प 179 81।

धन नही कर दिया जाता या अधिराज्य मे इनके स्थान पर नया सविधान नही लागू हो जाता। एक्ट के अतगत गवनर जनरल के सुरक्षित और विशेष अधिकार को समाप्त कर दिया गया। (8) भारतीय राज्या पर से ब्रिटिश प्रभुता समाप्त हो जायेगी और राज्यो को यह अवसर होगा कि वे दानो अधिराज्यो म से किसी एक के साथ सम्मिलित हो जाय या स्वतत्र बने रह। (9) 'इडियाये इम्परेटर' तथा 'इम्परर आफ इडिया' शब्द को रॉयल स्टाइल और टाइटिल्स से निकाल देन की अनुमति प्रदान की गई। (10) उत्तराधिकारी अधिराज्य द्वारा उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त के कबीला के साथ समझौते का प्रयास किया जायेगा, और (11) भारत के राज्य सचिव का पद समाप्त हो जायेगा और उसका स्थान कामनवेल्थ मामला के सचिव के हाथ मे चला जायेगा।

10
महान विभाजन

भारतीय राज्य

भारत का विभाजन साधारण काम नही था। भारत स्वाधीनता अधि-नियम के अंतगत भारतीय राज्यों पर ब्रिटिश प्रभुता समाप्त हो रही थी, और उन्हें यह स्वाधीनता थी कि वे किसी भी अधिराज्य म सम्मिलित हो सके या चाहे तो स्वतंत्र राज्य स्थापित करके रह। यह प्रस्ताव भारतीय नेताओ की इच्छा के विरुद्ध रखा गया था और इसे वायसराय के राजनैतिक परामर्शदाता सर कोनराड कोरफील्ड के जोर देन पर रखा गया था जो इसकी सिफारिश के लिये लेकर सरकार स बात करने इग्लैण्ड तक गया था। वायसराय लार्ड माउण्टवेटन के मन मे इन 565 राजाओ के लिये कोई सहानुभूति नही थी जो स्वतंत्रता प्राप्त करके भारत की स्थिति बिगाड सकते थे। माउण्टवेटन इन्हें "उल्लुओ का समूह" कहता था और इस बात के लिये आश्वस्त था कि भविष्यकालीन भारत मे उनका कोई भविष्य नही है। इस कारण भारत व पाकिस्तान अधिराज्यो मे इनका सम्मिलित किया जाना कष्टकारक भी था और रुचिकर भी।

राजनतिक परामर्शदाता न प्रभुता के सिद्धान्त की दुहाई देते हुये तक दिया कि इस तरह का हर राज्य ब्रिटिशराज के साथ सधि से आबद्ध था और इसलिये ब्रिटिशो की वापसी पर उन्हें यह अधिकार था कि यदि वे चाहे तो स्वतंत्र रह सकते है। ऐसी स्थिति मे यह स्वाभाविक था कि वे अपने क्षेत्र से होकर आने वाली रेल और तार लाइनो को रोक द। उन्हें यह भी अधिकार था कि वे ब्रिटिश सेना को समाप्त कर द और अपने राज्य के भीतर पडन वाले भारतीय डाकघरो को बंद कर दें। दूसरी ओर काग्रेस नेताओ का कहना था कि चूंकि उनकी वैदेशिक नीति भारत सरकार के पूणतया अधीन थी इसलिए इन राज्य इकाइयों को स्वाधीन नही माना जा सकता था। पर चूंकि सर कोरफील्ड के हाथ मे शक्ति थी इसलिये वह इसकी अनुभूति कराना चाहता था। वह ब्रिटिश कटिंजेंट ट्रूप्स को निजाम हैदराबाद के राज्य से हटाना चाहता था पर रक्षा मत्री बलदेव सिंह रास्ते मे आ गये। कोरफील्ड ने राजाओ को हर तरह का प्रोत्साहन दिया कि वे सगठित हो जाये और तीसरी शक्ति के

रूप मे भारत म प्रकट हो। जब वह इग्लैण्ड म वहाँ की सरकार से अपना मातव्य मावाकर लौटा, तो उसने तुरत अपने सहायको को इस काय मे लगा दिया कि वे पालिटिकल विभाग की फाइलो की छानबीन करके ऐसे कागजात और पत्र व्यवहार नष्ट कर द जो राजाओ के चरित्र पर छीटाकसी करने हो। इस तरह के 4 टन कागजात जला दिये गये। तमाम रिकाड इग्लण्ड के इम्पीरियल आर्काइव्ज भेज दिये गये। भारतीय नेता स्वाभाविक रूप से उत्तेजित हुये और एक बठक म नेहरू ने कहा, "म पोलिटिकल विभाग और विशेषकर सर कोनराड कोरफील्ड पर अपकरण का आरोप लगाता हूँ। मेरा विचार है कि उनके विषय मे एक उच्च स्तरीय न्यायिक जाच अति आवश्यक है।" वायसराय स्वय गुप्त रूप से इस भारतीय दृष्टिकोण से सहमत था। उसी बैठक मे यह भी तय हो गया कि जिना और नेहरू अपना-अपना स्टेट विभाग स्थापित करेंगे जो राजाओ का मामला देखेगा। भारतीय स्टेट विभाग सरदार पटल के हाथो सौंपा गया जिन्होन वी० पी० मेनन को अपना सचिव होने के लिये आमत्रित किया।

श्री वी० पी० मेनन एक कूटनीतिक प्रतिभा थे। उन्होने पहला काम तो यह किया कि सरदार पटल को समझाया कि प्रभुता की समाप्ति अप्रत्यक्ष रूप से वरदान सिद्ध होगी क्योकि उस समिति मे भारत को भिन भिन तरह की सधियां तथा राज्यो से हुये ब्रिटिश के समझौते उत्तराधिकार म नही प्राप्त होंगे। राजाओ द्वारा उपभोग म लाये जाने वाले अधिकार और लाभ समाप्त हो जायेंगे और हम नये सिरे से सब कुछ कर सकेंगे। कुछ राजाओ ने जिन्होन विद्रोही रुख अपनाया वे मेनन और पटेल के मिले जुले प्रतिभा के सामने नही ठहर सके। उनके चाल ढाल पर दष्टि रखी जाने लगी। इस तरह जब जोधपुर के महाराजा ने जिनका राज्य पाकिस्तान और भारत दोनो की सीमाओ से मिला हुआ था, जिना से इसलिये सम्पक किया कि पाकिस्तान से उनका किसी तरह का सम्पक बन जाय तो मेनन ने इसकी सूचना वायसराय को दे दी और इसके उपरात तुरत कदम उठाय गय जिसके फलस्वरूप महाराजा को भारत म सम्मिलित होने के कागजात पर हस्ताक्षर करना पडा। ट्रावनकोर के राज्य म भी कुछ कठिनाई उत्पन हुई। यहाँ पटेल ने दूसर अस्त्र का प्रयोग किया। उन्होंने इस राज्य म भूमिगत काग्रेस काय समिति को राजा के विरुद्ध जुलूस निकालने के लिये प्रोत्साहित किया और थोड़े ही काल म महाराजा के लिये इतनी कठिनाइया खडी हो गई कि वायसराय को तार स सूचना दी गई और राजा न भारत मे सम्मिलित होन वाले कागज पर हस्ताक्षर कर दिय।

इन परिस्थितियो में यह आवश्यक हो गया कि राज्यो को किसी न किसी

अधिराज्य में सम्मिलित होने के लिये 15 अगस्त की स्वाधीनता दिवस से पूर्व ही तैयार किया जाय। यदि इसे और दिनों तक के लिये टाला जाता, तो प्रभुता समाप्त हो जाती और राज्य स्वतंत्र हो जाते तो उनसे बातचीत करनी भी कठिन हो जाती। इस कारण पटेल और मेनन दोनों इस बात के लिये व्यग्र थे कि यह ममला जितने शीघ्र हो निपट जाय तो अच्छा है। जसे ही इन्होंने यह विभाग अपने हाथ में लिया उनका संघर्ष सर कोनराड से हुआ। वे वायसराय के पास पहुँचे और सर कोनराड से वापस जाने को कह दिया गया। राजाओं के प्रति वायसराय का विरोध भाव, जो उन्हें इतिहास की एक अनावश्यकता मानता था, सभी को मालूम था। इसीलिये उससे भी इस मामले में सहयोग लिया गया।

माउण्टबेटन ने 25 जुलाई को 75 बड़े राजाओं की एक बैठक बुलाई। लियोनार्ड मास्ले लिखता है कि उस दिन की कार्यवाही "माउण्टबेटन की चतुराई, आकर्षण तथा समझाने बुझाने की पराकाष्ठा की कला की सम्भवतः शानदार मिसाल थी।"[1] जब बैठक प्रारम्भ हुई तो राजाओं ने वायसराय के ऊपर सभी तरह के मूर्खतापूर्ण, अपमानजनक और बेहूदे आरोपों के आक्रमण प्रारम्भ कर दिये। पर माउण्टबेटन ने अपनी मुस्कराहट जारी रखी और जैसा कि कैम्पबेल जानसन ने लिखा है कि, "उसने किसी तरह अपना उत्साह उनमें भी उतारने की चेष्टा की तथा अपनी निर्णय की शक्ति को जताया।"[2] बीकानेर के महाराजा माउण्टबेटन के मित्र थे। यह मित्रता तब हुई थी जब प्रिंस आफ वेल्स के साथ वह भारत की यात्रा पर आया था। राजाओं से मजाक करने, उन्हें धमकाने और क्रोध दिखाने के उपरान्त, तथा इस सम्भावना का सुन्दर चित्र खींचने के बाद कि यदि वे अधिराज्य में सम्मिलित हो जाते हैं तो उन्हें इंग्लैंड के राजा से भी प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकती है क्योंकि ये अधिराज्य ब्रिटिश कामनवेल्थ के भाग रहेंगे, उसने बीकानेर महाराज से पूछा कि वह पहला राज्य नहीं होना चाहेगा जो इस पर हस्ताक्षर करे। बीकानेर ने इसे स्वीकार कर लिया और इस तरह कार्य प्रारम्भ हो गया। बीकानेर के बाद बड़ौदा ने हस्ताक्षर किये और हस्ताक्षर करने के बाद राजा ने, आश्चर्य चकित मेनन के गले में हाथ डाल दिया और फूट-फूट कर रोने लगा। एक अन्य राजा को हस्ताक्षर के बाद ही दिल का दौरा पड़ गया। पर सभी इसके लिये तैयार नहीं थे। जब माउण्टबेटन ने एक दीवान को बुलाया जो एक प्रमुख राजा का प्रतिनिधि था और राजा विदेश में था तो उस व्यक्ति ने कहा

1 मोस्ले लियोनार्ड पूर्वोद्धृत पृ 171।
2 कैम्पबेल जानसन मिशन विद माउंटबेटन।

"मुझे अपने राजा से कोई निर्देश नही मिला है और म हस्ताक्षर नही कर सकता।"

इस पर लाड लुई न कहा, 'निश्चित रूप से तुम्हे अपन राजा की इच्छा का ज्ञान होगा और तुम उनकी ओर स निणय ले सकते हो।"

'मैं उनकी इच्छा नही जानता" दीवान ने तजी व अक्खडपन स कहा, 'और म तार स भी उनस सपक नही कर सकता।"

माउण्टबेटन ने एक गोल शीशे का पेपरवेट उठाया और कहा, "मैं अपने क्रिस्टल म देखूगा और तुम्हे उत्तर दूगा।'

कई सकण्ड तक वह देखता रहा और राजा खीशें निपारते रह। तब माउटबेटन न धीर स कहा सम्राट की आज्ञा है इस पर हस्ताक्षर करिय।"

'अत म कमरे म हसी का ठहाका गूजा। और फिर सब सरल हो गया।"[1]

माउटबेटन के चतुराईपूण व्यवहार, मेनन की कूटनीतिज्ञता और पटेल के दृढ निश्चय के कारण *565* म से *562* राज्यो ने *अधिराज्य मे सम्मिलित* होने के पत्र पर हस्ताक्षर कर दिया और वह भी 15 अगस्त के पूव। तीन राज्य जिन्होंने ऐसा नही किया वे थे जूनागढ हैदराबाद और कश्मीर और उनकी दूसरी ही कहानिया थी।

जूनागढ

जूनागढ काठियावाड म एक छोटा राज्य था। इसकी जनसख्या 75% *हि दू थी, पर इसका शासक मुसलमान था। यह चारा ओर से हिन्दू राज्यो* के क्षेत्रा से घिरा था जैसे बडौदा और भावनगर जा पहले ही भारत म मिल चुके थ। उसका अपना क्षेत्र भी सगठित नही था क्योकि उसके बीच मे भी छोट छोटे राज्य थे जिसम हिन्दुआ की बस्ती थी और वे भी भारत म मिल चुके थे। जूनागढ का नवाब रगीन तबियत का व्यक्तित्व था जसे कि उनके कबीले म लोग प्राय होते थ। उसकी चार पत्निया थी, अनक रखले थी कई शिकारी कुत्ते थ और वह अत्यधिक खराब आदता का शिकार था। जूनागढ *का पाकिस्तान क्षेत्र से कोई सपक न था। सबसे निकट जूनागढ से पाकिस्तान* पानी माग (समुद्र) से पडता था जो 240 मील था। नवाब कांग्रेस नेताओ स एक ओर हसी मजाक करता रहा और दूसरी ओर गुप्त रूप से पाकिस्तान से सपक बनाये रहा। उसके पास भी भारत मे मिलन के लिये कागज पर हस्ताक्षर कराने को भेजा गया। इधर भारत सरकार उसके उत्तर की प्रतीक्षा मे थी कि इसी समय समाचार पत्रा म छपा कि वह ता पाकिस्तान म सम्मिलित

1 हैच *अल्डेन पूर्वोद्धत प 346 मोस्ले लियोनार्ड पूर्वोद्धत प 173।*

हो गया है। पाकिस्तान सरकार को अपने इस मामले की कमजोरी का ज्ञान था। पर उन्होंने अपने क्षेत्र में राज्यों को मिलाने के लिये कोई कार्यवाही न करते हुये, भारत सरकार के तार का उत्तर उन्होंने नहीं दिया और इस तरह संदेह अशांत बना रहा। इसी बीच नवाब ने अपनी सेना भेजकर अपने राज्य के बीच कुछ मंगोल क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। इस पर उस क्षेत्र के हिन्दू निवासियों ने भारत सरकार को सहायता की अपील भेजी। वहां भारतीय सेनायें भेजी गई पर उनके राज्य में प्रवेश करने से पूर्व ही नवाब अपनी 4 पत्नियों सहित, कुत्तों को साथ लिये तमाम कीमती सामान अपने निजी हवाई जहाज में भरकर उड़ने को तैयार था। उसकी एक पत्नी को इसी बीच अपने बच्चे को लाने को भेजा गया जो पीछे छूट गया था। नवाब ने कुछ देर प्रतीक्षा की, और फिर दोनों कुत्तों को लादकर वह उड़ चला। भारतीय सेना द्वारा कोई विरोध नहीं किया गया, पर पाकिस्तान बहुत नाराज हुआ। पाकिस्तान ने इसे एक परीक्षा समझा और बाद में जब कश्मीर का प्रश्न उठा, जहां की बहुमत जनता मुसलमान और शासक हिन्दू था, तो उन्होंने उदाहरण-स्वरूप जूनागढ़ का मामला सामने रखकर वहां पर अपना अधिकार जताया।

हैदराबाद

योजना को स्वीकार करने के लिये तयार है जिसे उसने पहले अस्वीकार कर दिया था। इसका उत्तर उसे यह दिया गया कि माउण्टबेटन योजना उसके साथ ही समुद्र से इंग्लैंड चली गयी है। इसके बाद ही भारतीय सेनायें आगे बढ़ी। अधिक विरोध नहीं हुआ और हैदराबाद पर अधिकार हो गया। अब निजाम का केवल पद मात्र ही बना रहा और उसकी सारी शक्ति जाती रही।

कश्मीर

कश्मीर मुख्यतया एक मुस्लिम जनसंख्या बहुल राज्य था जिसका शासन राजा हरिसिंह के हाथ में था। राजा ने भारत या पाकिस्तान किसी के साथ सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया और यह निर्णय ब्रिटिश शासन के अंत की घड़ी तक चलता रहा। पंडित नेहरू से जिनके पूर्वज इसी राज्य के रहने वाले थे, महाराजा के संबंध अच्छे नहीं थे। इसकी संभावना थी कि यदि नेहरू या गांधी महाराजा से बात करने जायेंगे तो उन्हें कैद कर लिया जायेगा। माउण्टबेटन ने स्वयं श्रीनगर जाने का निश्चय किया जहां वह महाराजा और उनके प्रधानमंत्री पंडित काक से मिले। महाराजा को किसी निष्कर्ष पर पहुंचने को कहा गया और यह भी स्पष्ट किया गया कि यदि वह पाकिस्तान में सम्मिलित होने का निर्णय करता है तो भी इसको अमैत्रीपूर्ण नहीं माना जायगा। पर वह अपने दुराग्रह पर अड़ा रहा और उसने भारत और पाकिस्तान को आमंत्रित कर एक यथास्थिति संधि करना चाहा जिससे उसे कुछ सोच विचार का और अवसर प्राप्त हो सके। पाकिस्तान ने इस निमंत्रण को स्वीकार कर समझौते पर हस्ताक्षर कर दिया पर भारत ने इस पर हस्ताक्षर नहीं किया। पर पाकिस्तान चाहता था कि महाराजा जल्दी ही इस संबंध में निर्णय करें। जब महाराजा ने अब भी देर की तो सीमा के कबीलों को उसने कश्मीर पर आक्रमण करने के लिये उत्तेजित किया और 22 अक्टूबर 1947 को आक्रमण प्रारंभ हो गया। घाटी के कई महत्वपूर्ण नगरों को रौंद डाला गया। उरी और बारामूला पर अधिकार हो गया और आक्रमण करने वाले श्रीनगर से कुछ ही दूर रह गये। इन आक्रान्ताओं ने आगजनी और लूटपाट की इन्तहा कर दी और इसाई मिशनरियों तक को मार डाला। महाराजा कांप उठा और उसने भारत से शीघ्र सहायता की अपील की। माउण्टबेटन ने उसे बताया कि जब तक वह भारत अधिराज्य में सम्मिलित नहीं हो जाता भारतीय सेनायें कश्मीर में प्रवेश नहीं कर सकती। इस तरह 26 अक्टूबर को जल्दी में इस पत्र पर हस्ताक्षर हुये और इसे शेख अब्दुल्ला ने भी स्वीकार कर लिया जो राज्य के सबसे बड़े राजनीतिक दल नेशनल कांग्रेस के नेता थे। भारत सरकार ने 27 अक्टूबर को सेना को हवाई मार्ग से उस क्षेत्र में भेजा और थोड़े ही काल में उरी आदि नगरों पर फिर

मे अधिकार कर लिया गया। 'निव स्टेट्समैन' और 'नशन' न 20 फरवरी 1948 को लिखा 'इसमे सदेह नही कि यदि भारत ने पिछले अक्टूबर मे हस्तक्षेप न किया होता तो श्रीनगर और सुदर कश्मीर की घाटी बर्बाद हो जाते और खडहरवत दिखाई देते।"[1]

कश्मीर घाटी मे जब भारतीय सेना प्रवेश कर रही थी तभी भारतीय सरकार न घोषणा की कि उनका राज्य म रुकने का कोई इरादा नही है। और जैसे ही सभव होगा अधिराज्य म सम्मिलित होने के मसले पर जनमत लिया जायेगा पर अभी घाटी आक्रमणकारियो से खाली नही हो पाई थी कि जनरल सर क्लाड औचिनलेक की मध्यस्थता के फलस्वरूप तथा सयुक्त राष्ट सघ के कहने पर, जिसे यह मामला माउण्टबेटन की राय पर सौप दिया गया था, गोलाबादी बद कर देने की घोषणा हो गई। स्पष्टतया जनमत सग्रह तभी हो सकता था जब आक्रमणकारियो द्वारा अधिकार मे लिये गये क्षेत्र खाली किये जाय। बाद म पाकिस्तान ने यह भी स्वीकार किया कि इन कबीले के आक्रमणकारियो की पाकिस्तानी सेना ने भी सहायता की थी। इस तरह के मताधिकार का प्रयोग सपूण राज्य मे ही सभव था, राज्य के एक भाग म नही। पर पाकिस्तान ने विजित क्षत्रा को खाली करने से इन्कार कर दिया और इस तरह यह पूरा मामला काफी समय तक अधर मे लटका रहा और अतत भारत सरकार ने यह घोषणा कर दी कि भारत मे कश्मीर का विलय अतिम है और यह अब भारत राज्य का एक भाग हो गया है। तक यह दिया गया कि कश्मीर पर पाकिस्तान इसलिये अधिकार जताता है कि यह एक मुस्लिम बहुल क्षेत्र है। इस तरह स्पष्टतया यदि जनमत सग्रह किया जाय तो लोगो की साम्प्रदायिक भावनाओ को उभरने का अवसर मिलेगा और इससे सपूण भारत मे साम्प्रदायिक भावनाये प्रभावित होगी जिससे एक बार पुन बडे स्तर पर साम्प्रदायिक झगडे और खून खराबी प्रारभ हो जायगी।

रेडक्लिफ अवाड

सीमाकन रेखा स्वाधीनता की प्राप्ति के पूव एक समस्या जिसका समाधान अति आवश्यक था वह थी पजाब और बगाल के क्षेत्रो म हिदू और मुसलमान क्षेत्रा पर सीमाकन रेखा। इस तरह की समस्या उत्तर पश्चिम प्रान्त, सिंध, मध्य प्रात, बिहार या असम म नही थी क्योकि वहा अल्पसख्यक अधिक मात्रा मे नही थे। पर यहा इन प्रान्तो मे एक सम्प्रदाय की जनसख्या

---

1 कुलकर्णी वी आर ब्रिटिश स्टेटसमन इन इडिया प 499।

लगभग दूसरे क बराबर थी और यह समस्या सचमुच अत्यधिक जटिल थी क्योंकि इस सीमाकन रेखा को लबे अरस से बसे और घनी आबादी वाले क्षेत्रों से होकर गुजरना था जिसके कारण उस क्षेत्र की आर्थिक स्थिति और आवागमन के साधन पर प्रभाव पडता। स्पष्टतया कोई भी सीमाकन रेखा किसी भी सम्प्रदाय क लिये न्याय नही प्रदान कर सकती थी और इस सबध म जो भी निणय होता उनको अलोकप्रियता मिलनी थी और एक विवाद खडा होना था। पर इसे अतिशीघ्र किया जाना जरूरी था और 6 सप्ताह म ही पूरा किया जाना था जिसके बाद 15 अगस्त की तिथि पड रही थी।

माउण्टबेटन के परामश पर प्रत्यक अधिराज्य से दो दो सदस्य लेकर चार सदस्यो क दो दल बनाय गय। इनम से एक को पजाब और दूसरे को बगाल का बटवारा करना था। यह प्रस्तावित किया गया कि दोनो समूह मिलकर अपना चेयरमैन चुनेगे। जिना और पडित नेहरू इस बात से सहमत हुय कि आयोग क सदस्य उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होंगे। सदस्य नियुक्त कर दिय गय, पर चूकि वे अपना चेयरमैन नही चुन सके इसलिय ब्रिटिश सरकार स कहा गया कि वह चेयरमन की नियुक्ति कर। दोनो दलो की पूण सहमति क बाद इग्लैण्ड क प्रसिद्ध वकील सर सी रेडक्लिफ को इस पद पर नियुक्त कर दिया गया। सर रेडक्लिफ इसके पूव भारत कभी नही आये थ और इस कारण वे किसी भी भारतीय नेता से परिचित नही थे। इससे अवाड म किसी के प्रभाव पडन की सभावना नही थी। रेडक्लिफ क अतिरिक्त इस आयोग के सदस्य थे— एस० ए० रहमान और साकर मुहम्मद अकरम जो पाकिस्तान की ओर स थे तथा भारत की ओर से सी० सी० विश्वास व बी० के० मुकर्जी। इस दल को बगाल का बटवारा करना था। दूसरा समूह जिसे पजाब का विभाजन करना था उसमे काग्रेस न तेजासिह और मेहरचद महाजन का नाम प्रस्तावित किया तथा लीग न मोहम्मद मुनीर व दीन मुहम्मद का नाम। इनका काय यह था कि यह सीमा आयोग पजाब को दो भागो म विभाजन मुसलमानो और गर मुसलमानो के क्षेत्रीय बहुमत के आधार पर कर। ऐसा करत समय आयोग अन्य तथ्यो को भी ध्यान म रखेगा। आखिर वे अन्य तथ्य क्या थे? इसी तरह के निर्देश बगाल के विषय म भी दिये गये। स्पष्टतया आयोग की सद्बुद्धि पर ही बहुत कुछ छोड दिया गया और सभी सदस्य हिन्दू, मुस्लिम और सिख होने के कारण अपनी निश्चित धारणायें रखत थे। इस कारण सब कुछ इसके चेयरमन रेडक्लिफ के हाथो म ही छोड दिया गया।

दोनो दलो ने काय प्रारभ कर दिया, एक न लाहौर म तथा दूसर न कलकत्ता म। रेडक्लिफ न स्वय वायसराय भवन दिल्ली म अपना दफ्तर खोला। यह अत्यधिक कठिन काय था पर आयोग ने 9 अगस्त 1947 को

बगाल अवाड और 11 अगस्त को पजाब अवाड की घोषणा कर दी। कमीशन के सीमा अवाड के कारण कष्ट और निराशा की उत्पत्ति होनी ही थी। पूव मे आयोग न चटगाव पवतीय क्षेत्र पूर्वी पाकिस्तान को दे दिया जिसका काग्रस न वडा विरोध किया। इसी तरह से पजाव का सिखो द्वारा बनाया गया क्षेत्र तथा नहरो वाला क्षेत्र जिसम ननकाना साहब का सिख तीथ भी सम्मिलित था पाकिस्तान को सौप दिया गया। सिख और हिन्दू बहुल क्षेत्रीय नगर लाहोर भी पाकिस्तान को द दिया गया। मुस्लिमजन बहुल गुरुदासपुर जिला भारत को सौंप दिया गया और मयाग से कश्मीर स भारत का रेल व सडक स सबध इसी क्षेत्र स होकर था। य अवाड माउण्टबेटन को सौप दिये गय पर उसन इनकी घोषणा नही की। माउण्टबेटन न कहा कि यदि वह इस सवध मे अपन मनतव्यो का प्रयोग कर सकेगा तो ऐसा करेगा और इसे कम से कम स्वाधीनता दिवस के पूव लोगो क सामने प्रस्तुत नही करेगा क्योकि इसकी प्रस्तुति एक निश्चित मनोवैज्ञानिक समय पर करना होगा तथा इसके अतिरिक्त इसकी घोषणा से जो विवाद और कष्ट उत्पन्न होगा उसस स्वाधीनता दिवस का क्या बबाद होने दिया जाय।"[1] इसीलिये 16 अगस्त को दोना दलो को एक बैठक मे आमन्त्रित किया गया और ये अवाड उनके समक्ष पश किये गये। वहा कष्ट और भय की छाया दिखाई पडी, पर काम कर दिया गया था और गन्तव्य से वापसी का कोई प्रश्न नही था।

बाद म इसकी आलोचना हुइ कि अवाड की घोषणा मे दर क्यो हुई। चौधरी मुहम्मद अली जस कुछ पाकिस्तान समथक मुसलमानो ने यह कहा कि माउण्टबेटन ने जानबूझ कर अवाड की घोषणा म देर की और इसी बीच इसमे भारत के पक्ष म कुछ परिवतन कर दिया। रेडक्लिफ का दफ्तर वायसराय भवन म था जहा पर इस निणय को प्रभावित करना माउण्टबेटन के लिये कठिन नही था। चौधरी मुहम्मद का कहना है कि उसने इस्मे के कार्यालय मे एक नक्शे पर पेंसिल की लाइन बनी देखी। "मैंने (इस्मे से) कहा कि मेरे लिय यह आवश्यक है कि मै इसका उत्तर दू क्योंकि नक्शे पर बनी हुई यह लाइन उसी सीमा का निर्देश देती थी जिसकी मैं बात किया करता था। इस्मे पीला पड गया और घबडाकर पूछा कि कौन उसके नक्शे से मजाक कर रहा था।"[2] पजाब के गवनर इवान जेकिन्स के दफ्तर म उसके उत्तराधिकारी सर जान मूडी को जो पश्चिमी पजाब का गवनर था,

1 कम्पबल जानसन पर्वोद्धत।

2 फिलिप्स सी एच एव मेरी डारीन वेनराइट (सम्पादन) पार्टीशन आफ इडिया पृ 22 23।

8 अगस्त का एक नक्शा मिला जिसमें फीरोजपुर और जीरा के कस्बे पाकिस्तान में दिखाये गये थे पर अंतिम अवार्ड में ये भारत को मिले। यह दूसरा उदाहरण दिया जाता है कि वायसराय ने संभवतः निर्णयों को प्रभावित किया। पर सी० एच० फिलिप्स और मरी डारीन वनरिट वायसराय के मन्तव्यों पर संदेह करने से इन्कार करते हैं। उनके अनुसार 8 अगस्त का नक्शा जार्ज एबेल द्वारा आयोग के सचिव से उसके द्वारा की गई टेलीफोन की बात के आधार पर तैयार किया गया था। एबेल ने यह नक्शा पंजाब गवर्नर के आवश्यक निर्देश पर तैयार किया था जो सीमा रेखा के विषय में हल्की फुल्की जानकारी चाहता था। इसका प्रयोग वह सावधानी के तौर पर साम्प्रदायिक दंगों में करना चाहता था। उन्होंने लिखा है, "प्रमाणों से यह सिद्ध है कि न तो माउण्टबेटन और न रेडक्लिफ व्यक्तिगत रूप से इस विवाद के भागी थे। जहां तक नक्शे पर लाइन खिंचने की बात है इसका सबसे साधारण उत्तर यही है कि इस तरह की लाइनें तमाम नक्शों पर उस समय खींची गई होंगी। सरकारी दफ्तरों में तो इसकी प्रशासकीय आवश्यकता भी होती है। यह भी आश्चर्यजनक नहीं है कि विभाजन पूर्वकाल में इसी तरह की सूचनायें मांगी गई हों और बंगाल सरकार के पास राष्ट्रीय सीमा के संबंध में इससे मिलती जुलती सूचना भेज दी गई हो।"[1]

भारतीय सेना

दूसरी समस्या थी भारतीय सेना का विभाजन जो 1857 के विद्रोह के बाद इतने परिश्रम से युद्ध के एक साधन के रूप में विकसित की गई थी। लार्ड कैनिंग और लार्ड लारेंस के काल में प्रतिभार की नई नीति के अंतर्गत भारतीय रेजीमेण्टों को साम्प्रदायिक बटालियनों में बांट दिया गया था अर्थात दो हिन्दू एवं एक मुस्लिम, दो मुस्लिम एवं एक हिन्दू या एक हिन्दू एक मुस्लिम एवं एक सिख जिससे कि एकाएक होने वाले धार्मिक या जातीय विद्रोह हाथ से बाहर न निकल सकें। ऐसी स्थिति में एक न एक बटालियन झंडे के नीचे स्वामिभक्त बनी रहेगी।"[2] जब भारतीय सेना के प्रधान जनरल सर क्लाड औचिनलेक से इस विभाजन कार्य को करने को कहा गया, तो उसने इस प्रयास को रोकने की हर प्रकार से चेष्टा की क्योंकि उसका विचार था कि भारतीय सेना विश्व में एक उत्तम सेना है और उस पर गर्व किया जा सकता

1 वही भूमिका प 23।
2 मोस्ले लियार्ड प 137।

है। पर उसके सभी तक एक ओर रख दिये गये। माउण्टबेटन की यह योजना कि भारतीय उपमहाद्वीप के लिए ब्रिटिश नेतृत्व में मात्र एक सेना रखी जाय जिससे यह निरपेक्ष बनी रहे, पर इसे नेहरू और जिन्ना दोनों ने पूर्णतया अस्वीकार कर दिया। भारतीय नेता इस बात के लिये आतुर थे कि दोनों अधिराज्यों के बीच कोई संबंध न हो और उन्होंने इस बात पर बल दिया कि 15 अगस्त को दोनों की अपनी-अपनी अलग सेना होनी चाहिये। नेहरू जी इस मसले पर विशेषकर इतने कड़े थे कि बाद में जब जिन्ना ने पूछा कि क्या स्वाधीनता के बाद ब्रिटिश सेना पाकिस्तान में रुक सकती है और जब माउण्टबेटन ने इस संबंध में भारतीय नेता से पूछताछ की तो उन्होंने अति कटु उत्तर देते हुए कहा, "मैं भारत के प्रत्येक गांव में आग लगवा देना पसंद करूंगा पर भारत में 15 अगस्त को ब्रिटिश सेना रखना पसंद नहीं करूंगा।"[1]

आचिनलेक को अपना कार्य करना था। सेना दो चरणों में विभाजित की गई। प्रथम चरण में मुस्लिम बहुल सैनिक इकाइयां पाकिस्तान रवाना हो गई और हिंदू बहुल इकाइयां भारत में आ गई। दूसरे चरण में इकाइयों का निरीक्षण किया गया और प्रत्येक व्यक्ति से कुछ प्रतिबंधों सहित यह पूछा गया कि वह किस अधिराज्य में जाना पसंद करेगा। तुरन्त एक अधिराज्य के लिये तीन तीन अध्यक्ष नियुक्त किये गये। इस तरह एक एक अधिराज्य में जल सेना, थल सेना और वायु सेना के लिये एक एक अध्यक्ष चुना गया। पर सेना के मुख्य प्रशासन का कार्य प्रधान सेनापति के हाथ में रखा गया जो स्वयं संयुक्त सुरक्षा परिषद की अध्यक्षता में कार्य करता था। 15 अगस्त के बाद सी०इन०सी० को सुप्रीम कमांडर माना गया और वह इस पद पर तब तक बना रहा जब तक कि यह पूरा नहीं हो गया।

स्वाधीनता

15 अगस्त से पूर्व होने वाले काम के पूरा हो जाने के बाद, वायसराय कराची के लिए उड़े जहाँ जिन्ना पाकिस्तानी अधिराज्य के गवर्नर जनरल का पद प्राप्त करने के लिये पहले ही रवाना हो चुका था। एक गुप्त सूचना के अनुसार शपथ ग्रहण समारोह के बाद जैसे ही जिन्ना सड़कों से होकर निकलेंगे उनके ऊपर बम फेंका जायेगा। जब जिन्ना और माउण्टबेटन साथ साथ रवाना हुये तो बड़ी भीड़ थी। जिन्ना अत्यधिक घबराये हुये थे, पर कोई

1 वही प 149।

बम नही फेंका गया और जब दोना सरकारी निवास मे सुरक्षित पहुच गये, जिन्ना ने भावुक होकर माउण्टबेटन का पैर पकड लिया और कहा, "खुदा का शुक्र है हम आपको जीवित वापस ले आये हैं।"[1] पाकिस्तान म समारोह की समाप्ति के बाद माउण्टबेटन उडकर भारत वापस आ गये और 15 अगस्त की अद्धरात्रि म भारत के वायसराय की हैसियत से उसने अपना काम पूरा कर लिया, वायसराय ने अपने हाथो अपने सदूर्क सवार दी और लिख दिया, 'ब्रिटिश साम्राज्य निनेवा और टायर की भाति हो गया।" इस बीच सविधान सभा म समारोह सबधी आवश्यक कायवाहिया पूरी की जा रही थी जहाँ पर नेहरू ने अपना स्मरणीय भाषण दिया "बहुत वर्षों पूव हमने भाग्य के साथ एक खेल खेला था, और अब समय आ रहा है जब हम अपनी शपथ दुहरायेंगे, पूण रूप स न सही पर पर्याप्त मात्रा मे। अद्धरात्रि का घटा बजते ही जब सारी दुनिया सो रही होगी, भारत जीवन और स्वतत्रता प्राप्त कर जाग उठेगा ' अद्धरात्रि के 20 मिनट बाद सविधान सभा के अध्यक्ष डा राजेद्र प्रसाद और नेहरू जी वायसराय के पास गये और स्वतत्र भारत के प्रथम गवनर जनरल पद के लिये उह आमन्त्रित किया। इस सबध मे माउण्टबेटन द्वारा इग्लण्ड की सरकार तथा वहा के विरोधी दल की स्वीकृति पहले ही प्राप्त कर ली गई थी। भारत के प्रस्ताव को स्वीकार करने के बाद माउण्टबेटन ने यह चेष्टा की थी कि पाकिस्तान भी यह स्वीकार कर ले कि वह दोना अधिराज्यो का सयुक्त गवनर जनरल कुछ काल के लिये बना रहे। पर जिन्ना ने प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और इस पर माउण्टबेटन से केवल भारत का ही गवनर जनरल बनने के लिय कहा गया। जसे ही डा० प्रसाद ने औपचारिक रूप से उन्हे यह पद ग्रहण करन के लिये आमन्त्रित किया, माउण्टबेटन ने उत्तर दिया, 'मुझे इस पद प्राप्ति पर गव है और म सवैधानिक ढग से आपके परामश को स्वीकार करूगा।"

लाखो लागो की भीड थी लोग प्रसन्न थ, हँस रहे थे, अद्धरात्रि से ही लोगो ने यह दिवस मानना प्रारभ कर दिया और 15 अगस्त को प्रात भारत ने एक स्वाधीन और सप्रभु राष्ट के रूप मे आखें खोली और उसे विश्व के स्वतत्र राष्ट्रा म एक वैधानिक स्थान प्राप्त हो गया।

1 टेरेन जान प 157।

2 जवाहरलाल नेहरू्ज स्पीचेज भाग 1 दिल्ली 1949 प 25।

विध्वस

15 अगस्त को भारत आजाद हो गया। लोग खुश थे पर यह खुशी खून खराबी और विनाश मे गायब हो गई। इस तरह का विध्वस विश्व ने शायद ही पहले देखा हो। इसके पहले कलकत्ता और नोआखाली मे बलवे हो चुके थे जिसके कारण हजारो बेगुनाह लोग मार डाले गये। इस बार पजाब मे आफत मच गई। बच्चो को उठाकर जमीन पर दे मारा गया स्त्रियो के स्तन काट डाले गये, युवा लडकियो के साथ व्यभिचार किया गया उन्ह सबसे अधिक कीमत देने वालो के हाथ बेच डाला गया और गाडिया सीमाओ को हजारो लाशो को लेकर पार करती थी जिस पर लिखा रहता था 'भारत की ओर से एक भेंट' या पाकिस्तान की ओर से एक भेंट'। लियोनार्ड मोस्ले का कहना है कि यह सब सिखो ने प्रारभ किया क्योकि उनकी उपजाऊ भूमि हाथ से जाती रही थी तथा उनके धमस्थल पाकिस्तान के हाथो मे चले गये थे। सिख जनसख्या सीमा के दोनो ओर आधी-आधी बट गई और उन्ह यह भय हुआ कि वे पश्चिमी पजाब म मुसलमानो के हाथो और पूर्वी पजाब मे हिन्दुओ के हाथो मार डाले जायेग। मास्टर तारासिंह ने स्वण मदिर मे अति उग्र भाषण दिया। मोस्ले ने लिखा है कि उन्होन कहा "ओ सिखो तुम्हें मालूम होना चाहिय कि हमारे भाई पश्चिम मे उन लोगो से खतरे म हैं जो उन्ह धम का विरोधी बताते हैं। हमारी भूमि पर कब्जा होने ही वाला है हमारी स्त्रिया की बेइज्जती होने ही वाली है और हमारे बच्चो को विदेशी शपथ दिलाई ही जाने वाली है" पूण तैयारी के प्रमाण थे और जिन्ना तथा लियाकतअली न मास्टर तारासिंह और उनके साथियो के विरुद्ध तुरत कायवाही करन की माग की। पर पटेल रास्ते मे आ गये और माउण्टबेटन को रुकना पडा।

7 अगस्त 1947 को जिन्ना के कराची रवाना होन से पूव साम्प्रदायिक भावना को शात करन की चेष्टा हुई थी। भविष्य की भारत सरकार की ओर से पटेल और डा० प्रसाद ने, भविष्य की पाकिस्तान की सरकार की ओर से जिन्ना और लियाकत अली ने तथा सिखो की ओर से बलदेव सिंह ने 22 जुलाई को एक सयुक्त बयान पर हस्ताक्षर कर प्रसारित किया जिसमे यह वादा किया गया था कि अल्पसख्यको के साथ समानता का व्यवहार किया जायगा, सभी के लिए समान नागरिकता के अधिकार की व्यवस्था की जायेगी तथा 15 अगस्त के पूव के राजनैतिक विरोधियो के लिये शाति, समान रूप से रक्षा और भेदभाव न अपनाने की नीति अपनाई जायेगी। यह घोषणा विभिन्न सम्प्रदाया के लिए स्वतत्रता का प्रमाणपत्र था। इसके अतिरिक्त, विभाजन

के समय जैसे ही संभावित साम्प्रदायिक झगड़े की अफवाह फैली वैसे ही माउण्टबेटन ने 50 हजार की एक सीमा सेना तैयार की जिसका सेनापति मेजर जनरल रीस को बनाया गया। इसकी सहायता के लिये भारत की ओर से ब्रिगेडियर दिगम्बर सिंह और पाकिस्तान की ओर से कर्नल अयूब खां को नियुक्त किया गया। इस सेना का कार्य रेडक्लिफ एवार्ड की घोषणा के समय शांति और व्यवस्था कायम करना था। पर इसके आगे माउण्टबेटन ने और कुछ नहीं किया। इस तरह जब यह पता चला कि यदि ननकाना साहब पाकिस्तान को सौंपा जायगा तो सिख बड़े स्तर पर झगड़े की तैयारियां प्रारंभ कर देंगे तो वी० पी० मेनन ने प्रस्ताव रखा कि जिन्ना से कहा जाय कि वे इस स्थल को वेटिकन के तरह की स्थिति प्रदान करें। सभी ने यह अनुभव किया कि सिखों का इसमें बड़ा बलिदान होगा। हिंदू बहुल नगर लाहौर निश्चित ही पाकिस्तान को सौंपा जाने वाला था और यह राय दी जा रही थी कि नेहरू और पटेल से कहा जाय कि वे इस नगर से एवार्ड की घोषणा के पूर्व ही मुसलमानों के प्रति सद्भावना व्यक्त करने हेतु इस नगर पर से अधिकार त्याग की घोषणा कर दें। पर वायसराय ने ऐसे किसी मत पर गंभीरता से ध्यान नहीं दिया क्योंकि इससे सिखों को तथा अन्य लोगों को जो प्रभावित थे उनके संतोष के लिये भी कुछ करना पड़ता।

चीजें नियंत्रण से बाहर इसलिये भी हो गई क्योंकि भारतीय नेताओं ने भी अनुत्तरदायी बातें कहीं। यह कहा जाता है कि जब जिन्ना ने पश्चिमी पंजाब के लिए प्रस्थान किया उस समय वह गंभीर मुद्रा में था और उसने सभी सम्प्रदायों से अपील की कि वे भूतकाल को भूल जाय"। पर उसके प्रस्थान के बाद पटेल ने इस बात के उत्तर में कहा कि 'भारतीय शरीर से विष निकल गया है।' कांग्रेस अध्यक्ष कृपलानी की कुछ बातों के कारण पश्चिमी पंजाब में गलतफहमी पैदा हुई जिस पर लियाकत अली ने कहा "मैं कृपलानी को बताना चाहता हूँ और अन्य हिंदू नेताओं को भी कि वे आग से खेल रहे हैं। यदि कृपलानी जैसे हिन्दू नेता जनता को भड़का रहे हैं तो यह आशा करना बेकार है कि इसकी प्रतिक्रिया नहीं होगी।" पाकिस्तान के होने वाले प्रधानमंत्री के ये वाक्य उतने ही अनुत्तरदायित्व पूर्ण थे जितने कि पटेल के।

जैसे जैसे स्वाधीनता की तिथि निकट आई तनाव बढ़ता गया। यदि एवार्ड पहले ही घोषित कर दिये जाते और यह काम स्वाधीनता के पहले ही हो गया होता तो लोगों को यह पता चल जाता कि उन्हें कहाँ रहना है और पंजाब सीमा सेना की सहायता से शांतिपूर्वक लोगों के आने जाने की व्यवस्था भी हो जाती। पर लोग 16 अगस्त तक अपने घरों में निश्चिन्त पड़े रहे जब

स्वतन्त्र घोषित हुआ और उन्हें एकाएक बताया गया कि जिस जमीन और मकान में वे रह रहे हैं वह उस अधिराज्य का नहीं है जिसमें वे रहना चाहते हैं तो वे एकाएक घबड़ाकर हड़बड़ाते हुये सीमा की ओर भागने लगे। पशुओं और गृह सामग्रियों सहित 60 से 70 मील की लाइनों में शरणार्थी उन लोगों की धर्मानुयायिता का शिकार होते हुए जिन्होंने अपने गुरु पैगम्बर और अल्लाह राम और कृष्ण के नाम पर सब किया, सीमा की ओर आगे बढ़े। 6 लाख लोग तलवारों छुरा और अन्य हथियारों से काट डाले गये। 1 करोड़ 40 लाख लोग बेघर हो गये जिन्हें नये सिरे से जीवन की शुरुआत करनी पड़ी। पता नहीं कितनों का धर्म परिवर्तन कर दिया गया। इनमें से अधिकतर मर गये और इनसे भी अधिक मरों की याद करने के लिये जीवित रहे और घृणा का जहर फैलाते रहे। स्वाधीनता का फल इस तरह का था। आदमी शैतान हो गया, ईश्वरभक्त ईश्वर की रचना आदमी को काट डालने पर आमादा हो गया। यह सब कुछ पंजाब और बंगाल दोनों स्थानों पर हुआ। वैसे पश्चिम में पूर्व से कुछ अधिक ही हिंसा के दृश्य हुये। इस आग से केवल कलकत्ता बच सका जहां कुछ महीने पहले हिंदू और मुसलमानों ने एक दूसरे की गर्दनें काटी थीं। पर अब की बार वहां 5000 हिन्दुओं और मुसलमानों ने संयुक्त जुलूस निकाला और हिंदू मुस्लिम भाई भाई का नारा लगाया। कलकत्ता पर इस समय गांधी का जादू था। साबरमती का फकीर बेलियाघाटा की गंदी बस्तियों में इस समय ठहरा हुआ था और वहां लोगों को शांति का संदेश दे रहा था। जो काम 50 हजार की सीमा सेना पंजाब में नहीं कर सकी वह काम 'एक व्यक्ति की सीमा सेना' ने कलकत्ता में कर दिखाया।

गांधी की हत्या

गांधी ने स्वाधीनता समारोह में भाग नहीं लिया। उनका दिल वहां नहीं था। वह हिंदुओं और मुसलमानों को एक नहीं कर पाये थे और उन्होंने दिल्ली इसलिये छोड़ दी थी कि वे लोगों के इस भाव के पहलू पर कुछ सोचें। वे दिल्ली तब वापिस लौटे जब देश स्वाधीनता मिल गई और दुर्भाग्यशाली शरणार्थियों की भीड़ दिल्ली में एकत्रित हो गई। लूटपाट और मौतें अब भी जारी थीं। गांधी ने एक बार पुनः दूसरों की गलती के लिये अपने को दंडित करना चाहा। 13 जनवरी 1948 को मृत्युपर्यन्त तक के लिये 'भूख हड़ताल' प्रारंभ कर दी। वे तभी तोड़ने को तैयार थे जब "मैं यह अनुभव कर लूं कि अब सभी सम्प्रदायों में दिल एक हो गये हैं और ऐसा भाव उनमें किसी

दवाव के कारण नही बल्कि अपने आप कत्तव्यभाव से आया है ।" इसके पाच ही दिनो के अदर नेहरू ने 55 करोड रुपये जो भारत द्वारा पाकिस्तान को दिया जाना था, दे दिया । जब साम्प्रदायिक समितिया की स्थापना हो गई और वे विभिन्न सम्प्रदायो को एक करने का काय करने लगी । वातावरण म तनाव घटा और गाधी ने भूख हडताल तोड दी । पर इसके 12 दिना वाद ही 30 जनवरी को एक हत्यारे की गाली ने उनके दुवले पतले शरीर को वीध दिया और उनकी मत्यु हो गई । माउण्टवेटन तुरत वहा पहुचे । किसी ने जोर से आवाज की कि "यह किसी मुसलमान का काम है ।" माउण्टवेटन को पता था कि यदि ऐसा था तो सव समाप्त हो गया क्योकि फिर तो सारे देश म सिंध से ब्रह्मपुत्र तक की नदिया का पानी हिंसा के खून से लाल हो जायेगा । उसने तुरत चिल्लाकर उत्तर दिया "वेवकूफ तुम्ह पता नही वह हिन्दू था ।' भाग्य से उसकी वात सच सिद्ध हुई, वसे उसे इस बारे म कुछ भी स्पष्ट पता नही था । वैसे यह काय पूना निवासी एक युवा हिन्दू नाथूराम विनायक गोडसे ने किया था । वह महात्मा की जीवन लीला समाप्त कर हिन्दू धम को बचाने की इच्छा रखता था ।

भारत मे माउण्टवेटन का काय अव समाप्त हो गया था । 21 जून 1948 को अत्यधिक भीड और शोर शरावे के वीच तथा उसके भारत न छोडने के निवदन और चिल्लाहट के वीच उसने इस दश को अतिम नमस्कार कर छोडा । अपने सरकारी निवास स जब वह खुली मोटर मे सवार होकर निकला, तो चारो ओर भावुकतापूण दश्य द्रष्टव्य था, यहा तक कि इस दृश्य को देखकर उसका घोडा तक पागल हो गया । घोडा पिछले पैरो पर खडा हो गया "कूदा, उछला और लगभग ढुलक गया । अब इसके अतिरिक्त कोई माग न था कि घोडे को खोल दिया जाय ।"[1] स्पष्ट था कि घोडे तक चाहते थे कि माउटवटन भारत न छाडे ।

'भूतपूव वायसराय, गवनर जनरल इग्लैंड वापसी पर रियर ऐडमिरल के नीचे पद पर भी काम करने को तयार हो गया और उस माल्टा म प्रथम क्रूजर स्क्वाडन का नेतृत्व सौंपा गया ।'[2] ऐडमिरल सर आथर पावर जो एस० ई० ए० सी० मे उसके अधीनस्थ काय कर चुका था अव उसका अधिकारी था । उस अधिकारी ने उसे 'सर' कहकर सबोधित किया और लुई ने भी उसे 'सर' कहा । इस तरह दोना ने नियमा का पालन किया । 1951 म चर्चिल पुन चुनाव जीत गया और उसने उसे 1952 म मेडीटरेनियन म सेनापति के स्थान

1 हैच अल्डन द माउटवटस प 361 ।
2 टरेन जान द लाइफ ऐड टाइम्स आफ माउटवटन प 166 ।

पर पदोन्नत कर दिया। 1955 में उसे और पदोन्नति देकर प्रथम सी लार्ड नियुक्त कर दिया गया। यह माउण्टबेटन के जीवन की परम अभिलाषा थी। अब वह वहां खड़ा था जिस पद से उसके पिता को स्तीफा देने को बाध्य होना पड़ा था। बाद में उसके परामर्श पर ब्रिटिश सुरक्षा सेना को अमरीकन ढंग पर पुनर्गठित किया गया और माउण्टबेटन को सेनापति बना दिया गया। पद निवृत्ति के बाद उसका जीवन संतोष और शांति से भरपूर रहा।

ब्रिटिशों ने भारत क्यों छोड़ा ?

अब केवल यही शेष बच रहता है कि उन परिस्थितियों का अवलोकन किया जाय जिसने नाटकीय ढंग से एकाएक एटली को भारत से ब्रिटिशों की वापसी की तारीख निश्चित करने को बाध्य ही नहीं किया बल्कि निश्चित समय से पूर्व ही उन्हें भारत से वापस भेज दिया।

माइकेल ब्रीचर ने लिखा है कि, "भारत की स्वाधीनता ब्रिटिश राज द्वारा अचेतन अवस्था में लाई गई चेष्टा का स्वाभाविक और आवश्यक परिणाम थी जिसमें स्वाभाविक चेतनता और सार्वजनिक उद्देश्यों की पूर्ति हुई। कांग्रेस ने एक लम्बे अरसे में यही काम किया। इस दृष्टि से ब्रिटिशराज में ही इसके विनाश के बीज छिपे थे।"[1] भारत में ब्रिटिश शासन यदि साम्राज्यवाद के रूप में एक बुराई थी तो साथ ही अप्रत्यक्ष रूप से एक वरदान भी थी। ब्रिटिश शासन के कारण ही भारत उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक इतिहास में प्रथम बार एक हो गया था। एक राजनैतिक व्यवस्था, एक भाषा एवं सार्वजनिक संचार के साधन एवं सार्वजनिक डाक व तार व्यवस्था तथा एक शांति व आर्थिक शोषण ने जो ब्रिटिश द्वारा दो शताब्दियों तक भारत में चलाया गया भारत में राष्ट्रवाद की नींव डाल दी। सभी क्षेत्रों में देश के जीवन में स्वाधीनता के भाव की उत्पत्ति हुई और एक ऐसा शक्तिशाली धारा लिया कि ब्रिटिश उसको रोक नहीं सके। 1857 के विद्रोह से गांधी के द्वारा चलाये गये आन्दोलन तक भारत छोड़ो आन्दोलन तथा आई० एन० ए० की भूमिका तक एक महान परिवर्तन आ चुका था। 20वीं सदी के चतुर्थ दशक में राष्ट्रवादी भावना 1857 जितनी कमजोर न रह गई थी। आई० एन० ए० के मुकदमों के समय प्रदर्शित जोश तथा 19 नवम्बर 1945 में पुलिस गोली और लाठी चार्ज के बावजूद कलकत्ता के छात्रों का हजारों स्वयंसेवक तक भेजे जाने वाला प्रदर्शन 19 फरवरी को होने वाला 3000

---

1 माइकल ब्रेचर नेहरू—ए पॉलिटिकल बायोग्राफी पृ० 373।

जलसैनिकों का हिंसात्मक विद्रोह तथा इसका कराची, मद्रास, कलकत्ता और दिल्ली तक फैलना और इसकी सहानुभूति मे नगरा मे हडताल, इस सबसे यह दिखता है कि विद्रोह भाव छात्रा से होकर मजदूरो, किसाना, दूकानदारो और अब तो सामान्य सनिको तक पहुँच चुका था जिनके समथन के विना ब्रिटिश एक दिन भी भारत मे नही रह सकते थे। अब यह स्पष्ट था कि ब्रिटिश भारत छोड देंगे और वह भी समय से छोड देंगे अन्यथा उन्हे इस आग मे जलकर खाक हो जाना पडेगा।

इसके अतिरिक्त इग्लड के लाक स्पेसर, मिल, मैकाले एव बक ने प्रजातानिक सस्था को केवल इग्लड के लिये ही उपयोगी नही बताया था। मानव जाति की प्रतिष्ठा का सदेश देने वाला वडस्वथ और स्वतत्रता को अघ्य चढाने वाला बायरन केवल इग्लड की सीमा मे ही बधे नही रह गये थे। ईस्ट इडिया कपनी द्वारा स्थापित शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से वे भारत की यात्रा पर पहुँच चुके थे। इन नवीन विचारो का उत्साह लिये और नशा खाये बुद्धिजीवियो का एक नया वग राजा राममोहन राय के काल से प्रारभ होकर गाधी, जवाहर सुभाष, आजाद एव पटेल के समय अवतरित हो चुका था। अब इग्लैड के चर्चिल और साइमन भारतीयो से बेहतर तर्कदाता न रह गये थे और न ही मोतीलाल और सप्रू से अधिक बुद्धिमान। इस तरह इस देश पर शासन करते रहने की ब्रिटिशो की न्यायपूणता नही रह गई थी। भारत का मध्य वग व आधुनिक काल मे ब्रिटिश द्वारा उत्पन्न बुद्धिजीवी वग अब पर्याप्त शक्तिशाली हो गया था जो उत्तरदायित्व ग्रहण कर सकता था। इस तरह ब्रिटिशो के समक्ष देश छोडने के अतिरिक्त कोई चारा ही नही था।

पूण एक शताब्दी तक ब्रिटिश भारतीया को आपस म बाटकर शासन करने म सफल रहे थे। अपने जन्मकाल से ही काग्रेस साम्प्रदायिकता के विरुद्ध लडती रही थी और इसी कारण ब्रिटिशो से उसकी लडने की शक्ति बिखर गई थी। भारत ब्रिटिश शासन का इसलिये बर्दाश्त करता रहा क्योकि उसे अपनी स्वतत्रता चाहिये थी और उसका अग भी बचना चाहिए था। पर अब चूकि अगभग का निश्चय हो ही गया था और पाकिस्तान बन ही गया था तो *ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बने रहने का अब कोई औचित्य नही था।* लाड और लेडी माउटबेटन के समझाने बुझाने की नीति को धन्यवाद दिया जाना चाहिये जिन्होने कांग्रेस और लीग के बीच समझौता कराने म सफलता अर्जित की। इस कारण ब्रिटिशो के समक्ष भारत छोडने के अतिरिक्त कोई चारा नही था।

और भी बाते थी जिसके कारण भारत को स्वाधीनता प्राप्त हुई। काग्रेस और लीग का अपना अपना अलग-अलग दिशाओ वाला दशन था जिसका परिणाम यह हुआ कि उनके बीच निराशा और असहायता का भाव घर कर

गया। इसके फलस्वरूप इन दोनो के साम्यवाद या किसी अन्य एकतत्रवाद के मुह मे चले जान की सभावना बढ गई। इसे केवल समझौते से ही रोका जा सकता था। यदि भारत साम्यवाद की बलि चढ जाता तो ब्रिटिशो को अपने ही लोगो के बीच शम से गड जाना पडता और साथ ही गैर साम्यवादी देशो मे भी उनकी बदनामी होती। यह भाग्य की बात थी कि एटली ने इस खतरे को भाप लिया और लाड माउण्टबेटन से कहा, "यदि हम सावधान न होते, तो हम भारत को केवल विद्रोह की आग म ही धाक्कर नही छोड देत, बल्कि एकतत्रवादी राजनैतिक शक्तिया भी वहाँ हावी हो जाती। इस स्थिति को ठीक करने के लिये कायवाही अति आवश्यक थी।"

बढते हुए विश्व के दबाव को भी अनदेखा नही किया जा सकता था। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका और सोवियत युनियन लम्बे अरसे से भारत को स्वतत्र करने के लिये इग्लैंड पर दबाव डाल रहे थे। युद्धकाल म चाँग काई शेक द्वारा भारत की यात्रा ने ब्रिटिशो को क्रुद्ध अवश्य किया था, पर उन्ह यह जता भी दिया था कि भारत की स्वतत्रता मे देरी भले ही की जा सकती है, पर इससे इग्लैंड की प्रतिष्ठा को धक्का ही लगेगा।

अब भारत पर अधिकार बनाये रखना पहले की भाँति उपादेय भी नही था। भारत म उद्योगो के विकास ने ब्रिटिश औद्योगिक मालो के बाजार को भारत मे निहायत कम कर दिया था। एक स्वतत्र और मित्र भारत सभवत कुछ मैत्रीपूण आर्थिक सबध रखकर ब्रिटिशो का हित कर भी सकता था, पर एक ऐसा भारत जो असतोष और घणा से भरा हुआ हो वह उनके लिय एक कठिन उत्तरदायित्व ही हो सकता था, विशेषकर उस समय जब युद्ध ने उसकी अथशक्ति को कही का न छोडा हो। भारतीय सनिक ब्रिटिशो के नेतृत्व म लडन से इन्कार कर रहे थे और इस तरह अब भारत के दस ब्रिटिश सेना की सहायता से ही ब्रिटिश हाथो मे रखे जा सकते थे जिनकी सख्या पहले ही अति अल्प रह गई थी।

युद्ध के अवसर पर भारत और उसके सनिको को दिये गय आश्वासन स भी अधिक दिन तक के लिय मुकरा नही जा सकता था। भारतीय जवानो का खून युद्ध म बहाया गया था और भारत के भूमिहारो न युद्ध पर होन वाले व्यय म सहयोग किया था। भारत ने यह सब कुछ इसलिये किया था कि उसका वह वादा पूरा होगा कि वह जिस उद्देश्य को बचान के लिये ब्रिटिश और मित्र राष्ट्रो की ओर स लड रहा है भारत के भी उस उद्देश्य की पूर्ति की जायगी। इन आश्वासनो को अधिक काल तक क लिय टालने के अच्छे नतीजे होन की सभावना नही थी।

जब यह सब कहा जाता है तो हम यह भी नही भूलना चाहिये कि

ब्रिटिश जनता न भी इस अतक्पूण क्रूर ब्रिटिश शासन की महक पा ली थी इसीलिय उन्होने वहाँ अनुदार दल को पराजित कर दिया। एसा उन्होन इसलिय भी किया था क्याकि लेबर सरकार न 1945 के चुनाव मे भारत को स्वाधीनता प्रदान करन का आश्वासन भी दिया था। हम अपनी स्वतत्रता की घडी म एटली और लेबर सरकार के उनके मित्रा को साधुवाद दना चाहिय जिनके दढ उद्देश्या और सच्चाई न भारत को स्वतत्रता का दिन दिखाया।

भारत म चीनी राजदूत चिया लुएन लो न स्वतत्र भारत को नमन करते हुए लिखा—

भारत स्वाधीन हो
क्या ऐसा न होगा
यह एक दिवास्वप्न है?
कितना मोहक
कितना असगत विचार
मैन तो ऐसा कभी नही सुना
एकाएक एक अविश्वसनीय बुद्धि विजय
जहा पूव और पश्चिम एक जगह मिले
कितना आश्चयपूण है
कि स्वतत्रता मिल सकती है
युद्ध के बिना ! इतिहास साक्षी है
ऐसा पहले कभी नही हुआ।
बहादुर बनो आगे बढो
समय के रथ पर चढ चलो !
पवत शिखर पर पहुचत समय
चढने की शक्ति द्विगुणित कर लो !
उच्च और सुन्दर
महान एव भव्य
विचारा तक तुम स्वय पहुच जाओगे।'[1]

1 मोस्ल लियानार्ड पूर्वोद्धत प 241 42।

11

उस काल के कुछ भारतीय व्यक्तित्व

स्वामी दयानन्द सरस्वती

भारतीय प्रायद्वीप के उत्तर पश्चिम कोने पर मोरवी के वैभवपूर्ण नगर (काठियावाड़) में 1824 में स्वामी दयानन्द का जन्म हुआ था। उनके पिता एक उच्चकुलीन ब्राह्मण थे और राज्य सरकार में एक उच्च पद पर थे तथा वे एक कट्टर पवित्र और दृढ़ता परम्परावादी तथा अपने धार्मिक विश्वास और व्यवहार में अपनी ही बातों पर अटल रहते थे। दूसरी तरफ उनकी माँ उदारता अच्छाइयों और शिष्टतापिता की अवतार थी।[1]

दयानन्द की शिक्षा जिनका प्रारम्भिक नाम मूलशंकर था, 5 वर्ष की आयु में प्रारम्भ हुई उनके पिता ने अध्यापक की भूमिका स्वयं अदा की। जब वे 14 वर्ष के थे तभी उनके पिता का पवित्र भाव से शिवरात्रि के व्रत रखने के जोर देने पर उनका पुत्र 'उस काल का सबसे बीहड़ मूर्ति पूजा का विरोधी हो गया। एक के बाद एक दयानन्द के 19 वर्ष की आयु में उनकी प्रिय बहन तथा चाचा की मृत्यु ने जीवन में निराशा भर दी, और जब उनके पिता ने उसके विवाह की व्यवस्था कर दी तो वह घर से भाग खड़ा हुआ और गेरुआ वस्त्र धारण कर 1845 से 1860 तक पूरे 15 वर्ष उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक पूरे भारत में ज्ञान और सत्य की तलाश में घूमता रहा।[2] अततः उसने अपनी शिक्षा को स्वामी विरजानन्द की छत्रछाया में 2½ वर्ष तक रहकर अंतिम स्वरूप प्रदान किया। और फिर वह सार्वजनिक जीवन में प्रविष्ट हुआ और 1875 में बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की। उनके लाहौर पहुँचने पर 1877 में पंजाब में यह एक शक्तिशाली आंदोलन के रूप में परिणित हो गया। 1883 में उनकी मृत्यु हो गई।

राजा राममोहन राय के विपरीत जो पश्चिम से हर अच्छी चीज प्राप्त करना चाहते थे, स्वामी जी ने मात्र भारतीयता में ही सब कुछ प्राप्त करना चाहा। कुछ सीमा तक तो यह ठीक था क्योंकि भारत धीरे धीरे शानदार भूत

1 लाजपतराय द आर्य समाज पृ 4।

2 वही पृ 18, ले सस पूर्वोद्धृत पृ 534।

दादा भाई नौरोजी

"उत्तम कोटि की देशभक्ति के सही प्रतीक' दादा भाई का जन्म बम्बई मे एक सत पारसी परिवार म 4 सितबर 1825 म हुआ। जब वे 4 वष के थे तभी उनके पिता का देहा त हो गया। आ० पी० मसानी ने लिखा है कि, 'उनकी गुणवती माँ ने पिता की भूमिका भी उचित रीति स निभाई।"[1] ग्यारह वष की आयु मे उनका विवाह सरोबजी श्रोफ की पुत्री गुलबाई से हुआ। उनकी शिक्षा एलफिन्स्टन सस्था मे हुई जो बम्बई प्रेसीडे सी म सिरोती स्कूल के नाम से जाना जाता था। इस विद्यालय मे वे सबसे तेज छात्र थे। एक छात्र साथी के सपन्न मा बाप दादाभाई की पुस्तको से सहायता करते थे। उस आयु म भी वे 'शाहनामा' पढ लेते थे, जिस पुस्तक को अत्यधिक ऊचा स्थान प्राप्त था। एक अ य पुस्तक जिसे वे सदा साथ रखते थे वह थी द डयुटीज आफ जोरो स्ट्रिय स'। इसमे 'विचारा, सही बोलने और सत्कम' पर जोर दिया गया था।

1840 मे उन्हे क्लेयर स्कॉलरशिप मिल गई और दो वष बाद वे नामल क्लास की नयी खोली गयी कक्षा म भर्ती कर दिये गय। व नैसर्गिक दशन और राजनैतिक अथशास्त्र मे अपने सामने किसी को टिकन नही देते थे एव बम्बई के उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश सर अर्सकिन पेरी इनकी बुद्धि तजस्विता से इतने प्रभावित थे कि उन्होन इग्लैड मे इनकी शिक्षा का आधा व्यय अपनी ओर से देने की घोषणा की यदि शेष आधा व्यय दादाभाई सप्रदाय के लोग वहन करने को तैयार हो। पर इस सम्प्रदाय के रुढिवादिया ने इस उदार दान मे विनाश की गध की अनुभूति कर इस योजना को बर्बाद कर दिया।

अपनी शिक्षा पूरी करन के बाद दादाभाई को एलफिन्स्टन स्कूल मे हड नेटिव असिस्टेण्ट मास्टर' नियुक्त किया गया जिसके कारण दो वष के बाद वे गणित व नैसर्गिक दशन के वही पर असिस्टेण्ट प्रोफेसर नियुक्त कर दिये गये। बोड आफ एजूकेशन न उनकी नियुक्ति पर अपनी रिपाट देते हुये 1850 51 मे कहा कि 'वे अति अनुभवी और योग्य व्यक्ति है जो इस सस्था मे पहली बार आये है।' सरकार न भी बाड को ऐसी नियुक्ति करने के लिय बधाई दी और दादा न स्वय बाद म कहा, "मेरे जीवन मे मुझे तमाम प्रतिष्ठा मिली, पर किसी अ य पद ने उतना गौरव का अनुभव नही कराया जितना कि प्रोफे सर की पद प्राप्ति न।'

4 अगस्त 1849 को बहरामजी खरशेद जी गाधी न नारी शिक्षा पर एक

---

1 मसानी आर पी दादाभाई नौरोजी प 26।

निबंध पढा जिसके कारण कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं ने उत्साहित होकर 3 हिन्दी और 4 पारसी स्कूल स्त्रियों के लिये खोले। इन विद्यालयों में अध्यापक नि शुल्क पढाते थे। दादाभाई वहारकोट स्कूल की देखभाल करते थे। उनका सामाजिक सुधार कार्य से यह पहला संपर्क था जो धीरे धीरे बढता ही गया।

3 अगस्त 1851 को उन्होंने अन्य लोगों की सहायता से 'रहनुमाये मज दयासनन सभा' की स्थापना की जिसके नौरोजी फदूनजी अध्यक्ष थे और दादा भाई सचिव। ' इस संगठन का मुख्य कार्य जारोस्ट्रियन विचारधारा का प्रचार करना था, इस पर से गंदगी को उतारना, मुख्य और आवश्यक तत्वों की जानकारी करना तथा इस पुराने धर्म को एक सही स्थिति प्रदान करना था।"[1] सभा कार्य करती रही, और दादाभाई इस हीरक जयंती देखने के लिये जीवित रहे।

26 अगस्त 1852 को पहली बार वे 'बम्बई सभा' के संपर्क में आये जहां उन्होंने अपना प्रथम भाषण दिया। इस सभा ने ब्रिटिश सम्राट को राज-नैतिक सुधारों हेतु एक आवेदन किया जिनमें से कुछ 1853 के चार्टर ऐक्ट में स्वीकार कर लिये गये। इससे दादाभाई उत्साहित हुये और अब वे एक कर्मठ राजनीतिज्ञ हो गये।

15 नवम्बर 1851 को एक सार्वजनिक क्षेत्र में उत्साही व्यक्ति खर्शेदजी नसरवाजी कामा की आर्थिक सहायता से दादाभाई ने एक पाक्षिक पत्र निकालना प्रारंभ किया जिसका नाम था 'रस्त गोफ्तार' जो शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया और पाठकों की मांग पर इस अब पाक्षिक के स्थान पर साप्ताहिक पत्र बना दिया गया। इस पत्र के माध्यम से दादाजी ने भारत और भारत के बाहर पारसियों की समस्यायें रखी और क्रीमिया के युद्ध में रूस के विरुद्ध इंग्लैंड और फ्रांस को नैतिक समर्थन दिया।

पर प्रोफेसर का जीवन ही दादाभाई की महत्वाकांक्षा को बांधे नहीं रह सका और कामा के साथ सहभागी बनकर उन्होंने इंग्लैंड में प्रथम भारतीय वाणिज्य फर्म की स्थापना की जो अफीम, शराब और स्प्रिट का व्यापार करती थी। पर इस व्यापार से होने वाले लाभ से उन्हें आघात लगता था। इसी कारण तीन वर्ष बाद स्तीफा देकर वे बम्बई वापस लौट आये। 1858 में वे पुन इंग्लैंड गये और वहाँ दादाभाई नौरोजी एण्ड क० नामक फर्म बनाई और वहाँ भारत के राजनैतिक हितों के लिए कार्य करना प्रारंभ कर दिया। उन्होंने वहाँ 'जारोस्ट्रियन परिषद' भी स्थापित की जो उस देश में पारसी छात्रों के लिये थी।

एक अशिक्षित पत्नी के साथ उनकी पारिवारिक जिन्दगी सुखी न थी। पर

1 वही प० 48।

उनका व्यापार पूर्ण रूप से सफल था। उनकी मजबूत आर्थिक स्थिति का परिचय इसी से मिलता है कि उन्होंने तमाम समाजसेवी संस्थाओं को दान दिया। उन्होंने लार्ड कैनिंग की स्मृति में 50 हजार रुपये की एक स्थायी निधि बम्बई विश्वविद्यालय को सौंपी जिससे एक फेलोशिप की व्यवस्था होती थी। पर जल्दी ही अमेरिकी नागरिक युद्ध समाप्त होने के बाद उन्हें व्यापारिक घाटा हो गया। दादाभाई ने इस घाटे को दार्शनिकता से लिया और अब पूर्ण रूपेण भारतीय राजनैतिक अधिकारों और संघर्ष की ओर अपने को लगा दिया।

डब्लू० सी० बनर्जी के सहयोग से उन्होंने 'लंदन इंडियन सोसाइटी' को प्रारंभ किया, पर इसमें पूर्ण सहयोग न दे पाने के कारण उन्होंने 1 दिसंबर 1866 को 'ईस्ट इंडियन एसोसियेशन' की स्थापना की जिसका उद्देश्य भारतीयों की कठिनाइयों पर प्रकाश ही डालना न था, बल्कि भारतीयों और अंग्रेजों के बीच समझदारी व मैत्री की भावना पैदा करना था। भारत आने पर इन्होंने इस एसोसियेशन की शाखायें कलकत्ता, मद्रास और अन्य नगरों में स्थापित की तथा भारतीयों की आर्थिक दुर्दशा के विषय में लोगों को बताया और समाचार पत्रों में लिखा। उनकी सेवाओं का उत्तर बम्बई के लोगों ने दिया और एक समारोह में उन्हें 25 हजार रु० की एक थैली इसलिये भेंट की क्योंकि उन्होंने अपने व्यक्तिगत हित को सदा नजरंदाज किया। पर यह धन उन्होंने अपने एसोसियेशन के कार्यार्थ सौंप दिया।

1870 में बड़ौदा के गायकवाड़ ने उन्हें अपना दीवान नियुक्त किया जहाँ पर उन्होंने प्रशासकीय सुधार के तमाम कार्य किये। पर वे यहां काम नहीं कर पाये और 13 महीने की सेवा के बाद स्तीफा दे दिया। इसके कुछ ही दिनों बाद वे बम्बई के नगर कौंसिल के सदस्य चुन लिये गये जो बम्बई कार्पोरेशन की कार्यकारिणी समिति थी। पर उन्होंने 32 रुपये दैनिक भत्ता लेना अस्वीकार कर दिया और मुफ्त ही रचनात्मक कार्य करते रहे।

1876 में उन्होंने 'पावर्टी इन इंडिया' नामक एक अति सुंदर लेख लिखा और इसी के उपरान्त वह प्रसिद्ध पुस्तक जिसका नाम था 'पावर्टी ऐण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इंडिया'। 1882 के 'शिक्षा आयोग' ने दादाभाई को देश की शिक्षा समस्याओं पर उनका विचार जानने के लिये भेजा। 1883 की जनवरी में इन्हें 'जस्टिस आफ पीस' बनाया गया और उसी वर्ष उन्होंने 'वायस आफ इंडिया' का प्रारंभ किया। उन्होंने रिपन के इल्बर्ट बिल को पूर्ण समर्थन प्रदान किया और रिपन के पद मुक्ति के बाद उसकी यादगार बनाने के लिये चंदा एकत्रित किया। अगस्त 1885 में बम्बई के गवर्नर ने दादाभाई को बम्बई लेजिस्लेटिव कौंसिल में अतिरिक्त सदस्य के रूप में सम्मिलित होने के लिये

आमन्त्रित किया। अब तक भारतीय समस्याओं के प्रति गहरी जानकारी के प्रति दादाभाई की प्रतिष्ठा देश और विदेश में फैल चुकी थी और बहुत से अंग्रेज भी परामर्श लेने हेतु उनके पास आते थे।

1886 में दादा होलबार्न से ब्रिटिश संसद के लिये चुनाव लड़े, पर अपने उदार विचारों के कारण उस अनुदारवादी क्षेत्र से हार गये। 1886 के अन्त में उन्हें द्वितीय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सभा में सम्मिलित होने के लिये आमन्त्रित किया गया। वहीं पर वे इसके अध्यक्ष चुन लिये गये। इसके बाद वे कांग्रेस के सदस्य आजीवन बने रहे। 1891 में वे पुनः सेन्ट्रल फिन्सबरी से ब्रिटिश संसद के लिये चुनाव लड़े और उदारवादियों की सहायता से जीत गये। दादाभाई अब तक अपनी प्रसिद्धि की चोटी पर पहुंच चुके थे।' सप्ताह भर प्रथम भारतीय संसद सदस्य बधाइयों के संदेश पाता रहा। ये संदेश मित्रों और परिचितों से दुनिया के सब क्षेत्रों से उन्हें मिले। उस क्षेत्र के उदारवादियों ने उन्हें अगले चुनाव में फिर टिकट दे दिया पर अब की बार वे हार गये। पर पदमुक्त होते ही उन्हें उस रॉयल कमीशन का सदस्य बना लिया गया जिसका कार्य भारतीय व्यय प्रशासन की छानबीन करना था। यह एक ऐसा कार्य था जिसमें उन्होंने बड़ी उत्तम भूमिका अदा की।'[1]

जब भारत लार्ड कर्जन के राज्य की क्रूर नीतियों के विरुद्ध खड़ा हुआ तो उसी समय दादाभाई ने 1904 में लन्दन इण्डियन सोसाइटी के समक्ष भाषण करते हुये कहा कि "मैं भारतीय जनता का आह्वान करता हूँ कि वह बिना रुके अपने जन्मसिद्ध अधिकारों की प्राप्ति की ओर बढ़े। उन्होंने उन्हें ब्रिटिश नागरिकता दिलाने के लिये समर्थन व्यक्त किया और अपनी सरकार की प्राप्ति की ओर भी आगे बढ़ने को कहा।' उन्होंने दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों की जातिभेद की समस्या को भी हाथ में लिया और इस सम्बन्ध में गांधी की सहायता की।

1906 में वह ब्रिटिश संसद सदस्य के पद के लिये पुनः चुनाव लड़े पर पराजित हो गये, और इसके कुछ ही दिनों के बाद जब वे गम्भीर रूप से बीमार पड़े तो उन्होंने वह देश छोड़कर शेष जीवन अपनी मातृभूमि में बिताने का निश्चय किया। भारत में वापस आने पर, कांग्रेस में बटवारा हो गया था, जिसमें उन्होंने उदारवादियों का पक्ष लिया। पर सामान्य रूप से वे पदनिवृत्त जीवन ही व्यतीत करते थे। 1915 में श्रीमती एनी बेसेण्ट ने भारत में होम रूल लीग संगठित करने का निश्चय किया जिसके सभापति बनने के लिये दादाभाई राजी हो गये। पर लीग के नियमित रूप से बनने के पूर्व 30 जून

---

1 वही पृ 145-47।

1917 को उनका देहावसान हो गया।

भारत के नायक वे ऐसे व्यक्ति थे जिनके विषय मे सर एन० चन्दावकर ने लिखा, "यदि हम उनके जीवन की ओर देखें तो वे जोरास्टर धर्म के पैगम्बर के अवतार लगते हैं।" गाधी ने उनके विषय मे लिखा कि, "मैं सदा नायक उपासक रहा हूँ। और दादाभाई सचमुच हमारे लिये दादा हो गये। मुझे उनसे कभी टाइप किया हुआ पत्र नही प्राप्त हुआ यह इतने उत्तम और सादे जीवन की कहानी है।"[1]

यह विवरण समाप्त करने से पूर्व हम सी० वाई० चिन्तामणि का मत यहाँ प्रस्तुत कर सकते है, 'पूरे 61 लम्बे वर्षों तक इगलैंड और भारत मे दिन रात पक्ष और विपक्ष की परिस्थिति मे, अनुत्साही स्थिति के समक्ष जो किसी साधारण व्यक्ति का दिल ही तोड देती, दादाभाई ने अविचलित उद्देश्यो से, पूर्ण नि स्वार्थ भाव से, शक्तिपूर्ण विश्वास से मातृभूमि की सेवा की जो आज के युवावर्ग के लिये एक चुनौती है। वे एक महान आत्मा थे और न्याय मात्र मे अति उदार थे और कभी किसी को व्यक्तिगत शत्रु नही बनाते थे। व्यक्तिगत चरित्र मे उच्चता और सार्वजनिक सेवा मे महानता के लिये देशवासियो के लिये दादाभाई नौरोजी उच्चतम आदर्श थे।"

सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी

'ए नेशन इन मेकिंग' पुस्तक के प्रसिद्ध लेखक एस० एन० बैनर्जी के विषय मे पी० सीतारमय्या ने लिखा है "भाषाधिकार, शब्दो के उचित प्रयोग, उत्तम काल्पनिकता, भावात्मक ऊँचाइयो, पुरुषोचित चुनौती आदि मे उनके भाषणो का कोई सानी नही था। वह लोगो की पहुच के बाहर ही रहता था।"[3] एस० एन० बनर्जी 1848 मे एक कुलीन ब्राह्मण परिवार मे पैदा हुये और उनके पिता एक अत्यधिक सफल डाक्टर थे। बी० ए० करने के बाद 1868 मे प्रतियोगिता के माध्यम से वे इण्डियन सिविल सर्विस मे आ गये। पर अपने प्रगतिशील राष्ट्रवादी विचारो के कारण उन्हे इस सेवा से जल्दी ही मुक्त कर दिया गया। इस कारण उन्हे मेट्रोपालिटन इन्स्टीच्युट, कलकत्ता मे अग्रजी के प्रोफसर पद से ही सतोष करना पडा। पर पत्रकारिता और राजनीति मे अपने कडे परिश्रम के कारण वे शीघ्र ही जनमत मोडने वाले

1 गाधी एम के माई एक्सपेरीमेण्टस विद ट्रुथ पृ 233।
2 चिन्तामणि पूर्वोन्धृत पृ 283।
3 सीतारमय्या पृ 59 62।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

चिरोल ने उन्हें, "भारतीय बेचैनी का जनक" कहा है।[1] तिलक 23 जुलाई 1856 को महाराष्ट्र के एक ब्राह्मण परिवार मे पैदा हुये। ऑनर्स सहित ग्रेजुएट होने के बाद उन्होंने फर्ग्युसन कालेज पूना मे प्रोफेसर के रूप मे अपना जीवन प्रारंभ किया। 'एज आफ कन्सेन्ट बिल' के विरोध ने इन्हें राजनीतिज्ञ बना दिया। दो साप्ताहिक पत्रों मे इनके जोरदार लेखो ने (मराठी मे 'केसरी' तथा अंग्रेजी मे 'मराठा') उन्हें अधिकारियो की नजर में चढा दिया। बम्बई के गवर्नर ने उनके विषय में लिखा 'प्रमुख षडयंत्रकारियों में से एक, संभवतः प्रमुख षडयंत्रकारी तिलक भारत मे ब्रिटिश सरकार के अस्तित्व का ही विरोधी है। उसने उनके हर कमजोर बातों का गहन अध्ययन किया है।'

तिलक कांग्रेस मे 1889 मे सम्मिलित हुये, पर अतिवादी विचारो के होने के कारण उनकी उदारवादियो के साथ ठीक से न निभ सकी क्योंकि वे राजनैतिक अधिकारो के लिये शनैं शनैं संवैधानिक संघर्ष के पक्ष मे न थे और इसीलिये 1907 में उन्होंने इस संस्था से नाता तोड लिया। उन्होंने लाठी क्लब, गोवध विरोधी समितियां और अखाड़े स्थापित किये। 1893 मे उन्होंने गणपति त्यौहार प्रारंभ किया और 1895 मे शिवाजी त्यौहार। उनका उद्देश्य भारतीय नायको की स्मृतियो के माध्यम से युवा लोगो को प्रोत्साहित करना था। उन्होंने कहा, "दूसरे लोगो के हित मे दयामय विचारो से शिवाजी ने अफजल खां की हत्या कर दी। यदि चोर हमारे घर मे घुस जाय और यदि हमारी कलाई में उन्हें घर से निकाल देने की क्षमता न हो, तो हम घर मे ही उन्हें बंद करके जिंदा जला देना चाहिये।"

1882 में उन्हें 4 महीने के लिये कैद किया गया, 1897 मे उन्हें 18 माह की कठोर कारावास की सजा दी गई, और 1908 मे 6 वर्ष की कारावास की सजा दी गई। 1897 में दुबारा उनका जेल जाना इस दृष्टि से महत्वपूर्ण था। कहा जाता है कि इन्होंने भारतीय राष्ट्रीय संग्राम में एक नये युग की शुरुआत की। तिलक के ऊपर राजद्रोह का आरोप लगाया गया और 6 युरोपीयों व 3 भारतीयो की जूरी ने उन पर मुकदमा चलाया। भारतीयो ने उन्हें दोषभागी नहीं पाया पर युरोपीयो ने उन्हें दोषी सिद्ध किया। तिलक ने क्षमा मांगने से इंकार कर दिया और यह प्रथम उदाहरण प्रस्तुत किया कि कोई व्यक्ति राजद्रोह के लिये जेल गया हो।

तिलक के दूसरी बार की जेल यात्रा ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारत मे

1 चिरोल वी इण्डियन अनरेस्ट पृ 251।

नही रहेगी। हम उन्हे सीमा पार या भारत के बाहर युद्ध करने मे सहायता नही देंगे और इसमे भारतीय खून व धन बर्बाद न करेंगे। हम उन्हे न्याय प्रशासन चलाने में भी सहायता नही करेंगे। हम अपने ढंग से काम करेंगे और जब समय आयेगा तो हमे तकलीफ से मुक्ति भी मिलेगी। अगर यह काम आप संगठित रूप से कर सकें तो आप कल से ही स्वतन्त्र हैं।" तिलक का इस तरह का विश्वास था। वे कांग्रेस में उदारवादियो को पसंद नही करते थे और वे जोर देकर कहते थे कि भारत मात्र प्रस्तावो को पारित करके और रियायतो की मांग करके स्वतन्त्रता हासिल नही कर सकता। अपने गन्तव्य तक पहुंचने के लिये उसे दूसरे तरीके अपनाने होंगे। जब तक हमारा उद्देश्य उत्तम है, हमे इस बात की चिन्ता नही करनी चाहिये कि हम कैसा साधन अपना रहे हैं अच्छा या बुरा।

चिन्तामणि ने तिलक के विषय मे लिखा है, "इतिहासकार इसे स्वीकार करने में संकोच नही करेंगे कि वह ऐसे व्यक्ति थे जिन्होने अपने उत्तम गुणो तथा जीवनभर की सेवाओ से भविष्य के भारत की ही नींव नही डाली बल्कि स्वराज की भी।"[1]

विपिनचन्द्र पाल

वे अतिवादी विचारो के थे, अच्छे भाषणकर्ता थे तथा तिलक की विचार-धारा वाले थे। उनका जन्म 7 सितंबर 1858 को हुआ। अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद उन्होंने अध्यापन का पेशा अपनाया। उन्होंने अपना सार्वजनिक जीवन ब्रह्म समाज में सम्मिलित होकर प्रारंभ किया। वे एक अच्छे लेखक भी सिद्ध हुये और 'निव इंडिया' के संपादक भी हो गये। उन्होंने बंगभंग आंदोलन में प्रमुख भूमिका अदा की। 1906 के कलकत्ता कांग्रेस सम्मेलन में उन्होंने अतिवादियों का शक्तिशाली समर्थन करके अग्रिम पंक्ति में स्थान बना लिया। 1907 मे सूरत के कांग्रेस अधिवेशन मे तिलक को कांग्रेस अध्यक्ष बनाने के लिये उन्होंने प्राणपण से चेष्टा की। अन्य अतिवादियो की भांति सूरत के विभाजन के तुरन्त बाद उन्हे भी मद्रास प्रेसीडेंसी छोड़नी पड़ी। उन्होंने एक बार 'एथालाजी आफ बाम्ब' पर एक लेख लिखा जिसके लिये उन पर मुकदमा चलाया गया, पर उन्होंने माफी मांग ली। वे 1932 में मृत्यु को प्राप्त

1 देखें चिन्तामणि इंडियन पालिटिक्स सिन्स द म्यूटिनी पृ 118 तेहमानकर, डी वी लोकमान्य तिलक भी देखें तिलक बी जी राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज (मद्रास) अथवा द लाइफ आफ लोकमान्य तिलक।

हुये।

विपिनचन्द्र पाल एक शक्तिशाली व्यक्तित्व थे और एक ओजपूर्ण भाषण-कर्त्ता जिनका उद्देश्य देश हेतु तुरन्त और पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति था। स्वाभाविक ही था कि इन परिस्थितियों में वे उदारवादियों से लदी कांग्रेस से स्थायी मैत्री नहीं रख सकते थे और इसी कारण उन्हें इसे छोड़ना पड़ा। राष्ट्रीय शिक्षा और 'बॉयकाट' उनके अन्य प्रिय विषय थे और उन्होंने देश के अतिवादी आंदोलन के विकास में एक महती भूमिका अदा की।

लाला लाजपत राय

'पंजाब केसरी' के नाम से प्रसिद्ध लाला लाजपतराय 1865 में राजकीय स्कूल के एक अध्यापक श्री राधाकृष्ण के घर में लुधियाना जिले के जगरौन नामक स्थान पर पैदा हुये। लाजपतराय इस दृष्टि से भाग्यशाली थे कि उनके मां और बाप दोनों उच्च चरित्र और उत्तम बौद्धिक आदतों के थे जिसका प्रभाव उन पर पड़ा। लाला ने एक बार कहा भी, "जो भी मैं हूँ अपने माता पिता की वजह से हूँ।"

अध्ययन समाप्ति के बाद उन्होंने हिसार में वकालत प्रारंभ की और बाद में यही कार्य उन्होंने लाहौर में प्रारंभ किया। लाहौर में उन्होंने थोड़े ही दिनों में अत्यधिक प्रतिष्ठा अर्जित कर ली। उनके पिता स्वामी दयानंद के पुजारी थे और लाला की आयु जब बढ़ी तो वे भी आर्य समाज की कार्यवाहियों में रुचि लेने लगे। लाहौर में तो यह कार्य उनका और बढ़ गया। वे आर्य समाज की सभाओं में भाषण करते थे और उन्होंने आर्य समाज की शाखायें कई स्थानों पर स्थापित कराईं और लाहौर में डी० ए० वी० कालेज स्थापित करने में प्रमुख भूमिका निभाई। उन्होंने स्वामी दयानंद की जीवनगाथा भी लिखी।

पर चूंकि आर्यसमाज की कार्यवाहियों से ही वे संतुष्ट नहीं हुए इसलिये 1888 में वे राजनीति में कूद पड़े। अखिल भारतीय कांग्रेस धीरे धीरे अपनी राष्ट्रीय कार्यवाहियां बढ़ा रही थी जिससे लाला जी भी आकृष्ट हुए और वे इसके इलाहाबाद सम्मेलन में सम्मिलित हुए। इसके बाद वे इस संस्था के एक अच्छे कार्यकर्त्ता हो गये। चूंकि वे परिश्रमी और साहसी कार्यकर्ता थे इस कारण वे राजनीति के आकाश को छूने लगे और उनका नाम और उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैलने लगी। उन्होंने आग उगलने वाले भाषणकर्त्ताओं में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करली जिसके कारण 1905 में उन्हें तथा गोखले को इंगलैंड की जनता में जनमत तैयार करने के लिये भेजा गया। वहां जाकर इन्होंने तूफानी दौरा किया और भारतीय योग्यता व इच्छा का अंग्रेजों पर अच्छा

सिक्का जमाया।

पजाब मे भी लाजपतराय ने सावजनिक हिता के कार्यों म गहन रुचि ली। वे अतिवादी विचारा के थे और जब काग्रेस मे उदारवादियो और अनुदारवादियो के मतभेद को लेकर विभाजन हो गया तो सरकार ने अतिवादियो को दडित करने की नीति अपनाई। इसी नीति के अतगत लाला जी को 1906 मे माडले भेज दिया गया जहाँ उन्होने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द स्टोरी आफ डिपोर्टेशन' लिखी।

उनके अतिवादी कार्यों के कारण ब्रिटिश सरकार उनके विरुद्ध अति कठोर हो गई। युद्धकाल म उन्होन यह देश छोड दिया और 1914 से 1920 के बीच अमेरिका मे प्रवासी बने रहे। वहाँ वे लिखते रहे और शिक्षा देते रहे और अपनी पुस्तको की आय से आदश जीवन व्यतीत करते रहे। उनकी प्रसिद्ध पुस्तकें 'यग इडिया', द आय समाज' एव 'इगलडस डेट ट इडिया' अमेरिका प्रवास के दौरान ही लिखी गइ।

1920 मे अपनी वापसी पर कलकत्ता के काग्रेस के विशेप अधिवेशन मे उन्हे अध्यक्ष चुना गया। पर बाद मे जब गाधी का उत्थान हुआ तो उनके असहयाग आदोलन के दशन को पसद न करने के कारण वे स्वतन्त्र रूप से काय करने लगे। स्वराज पार्टी के माध्यम से वे केन्द्रीय परिपद के सदस्य चुन लिये गये और वहा पर उन्होंने भारतीय स्वाधीनता हेतु साहसपूण वकालत की। वह हिन्दुओ के हितो मे विशेप रुचि रखते थे और इसी कारण उन्होने मालवीय जी के साथ 'हिन्दू सगठन' आदोलन चलाया। चिन्तामणि ने लिखा है, "उन्होने हिन्दू हितो की कभी बलि नही दी। उनकी अन्य लोगो की तरह हिन्दू मुस्लिम एकता मे भी रुचि थी पर उनका विश्वास बहुत बडी कीमत चुकाकर हिन्दू सम्प्रदाय को हानि पहुचाकर इसे खरीदने का नही था।"[1]

20 अक्टूबर 1928 को लाहोर मे साइमन कमीशन के पहुचने पर एक विरोध जुलूस का इन्होने नेतृत्व किया। वह इस दौरान बुरी तरह से घायल हो गये और 17 नवम्बर को उसी वप मृत्यु प्राप्त कर शहीद हो गये।

भारतीय राजनतिक नेताओ म लाला लाजपतराय सचमुच एक नेतृत्वपूण गुणो वाले व्यक्तित्व थे और चिन्तामणि ने उनकी तुलना एक सावजनिक भाषणकर्ता के रूप मे लायड जाज से की। जनता मे उनका जोर और प्रतिष्ठा कितनी थी इसी से सिद्ध है कि उन्होने केवल दस दिनो मे तिलक स्कूल कोप के लिये 9 लाख रुपया एकत्रित किया। कहा जाता है कि इन्होने 'लक्ष्मी इन्श्योरेन्स कम्पनी' तथा 'पजाब नेशनल बक' की स्थापना मे प्रमुख भूमिका

---

1 चिन्तामणि पूर्वोन्घत प 231।

अदा की। उनके उर्दू अखबार 'वन्देमातरम्' और अंग्रेजी पत्रिका 'द पीपुल' ने उन्हें बड़ी प्रतिष्ठा प्रदान की।

जे० सी० वेजवुड संसद सदस्य के कथनानुसार लाला लाजपतराय के मूल्यांकन के संबंध में हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं, "मैं समझता हूँ कि लाजपतराय अपने को रचनात्मक राष्ट्रवाद का वकील समझते रहे होंगे, पर हमारी दृष्टि में वे राष्ट्रवादी ही नहीं थे बल्कि अन्याय और कष्ट से घृणा करने वाले ऐसे व्यक्ति थे जिनकी रोशनी की ज्योति प्रत्येक युग का उदारवाद गर्व से अनुभव करेगा।' गांधी ने उनके विषय में कहा, 'जब तक भारतीय आकाश में चन्द्रमा चमक रहा है तब तक लाला जी जैसे व्यक्ति मृत्यु को नहीं प्राप्त हो सकते।"[1]

एलेन आक्टेवियन ह्यूम

भारत के यूरोपीय मित्रों में हम ए० ओ० ह्यूम का नाम नहीं भूल सकते जिसे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का पिता भी कहा जाता है। श्री ह्यूम एक अंग्रेज थे जिन्होंने 1849 में बंगाल सिविल सर्विस में कार्य प्रारंभ किया कई स्थानों पर सफलतापूर्वक कार्य किया और अंततः भारत सरकार के सचिव पद को प्राप्त किया। डॉ० पी० सीतारमैय्या ने लिखा है कि "जिलाधिकारी के रूप में उन्होंने लोकप्रिय शिक्षा, पुलिस सुधार, शराब की रोकथाम, वर्नाक्युलर प्रेस, बाल अपराध सुधार गृह और अन्य कार्यों के लिये परिश्रम से कार्य किया। उनकी एक रुचि गावों में थी तथा उसकी कृषि में तथा उनका ध्यान जनता के सुख व उसके परवाह में था।

ह्यूम ऐसे पुलिस अधिकारियों के पक्ष में न थे जिनके पास न्यायिक शक्ति थी। वह शिक्षा का विकास स्थानीय लोगों के माध्यम से करने के पक्ष में थे। उन्होंने आबकारी की आलोचना करते हुये लिखा, "हम जनता को गिराते हैं पर हम उनके पतन से कोई लाभ भी अर्जित नहीं करते। यह सारा राजस्व पाप की कमाई है और हर एक अतिरिक्त रुपया जो आबकारी के द्वारा आता है, उसमें से कम से कम दो रुपया अपराध होने तथा सरकार द्वारा उसे दबाने पर व्यय हो जाता है।"

1857 के विद्रोह के समय ह्यूम इटावा जिले में थे जहां वे भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को बचाने में जुट हुये थे। विद्रोह की समाप्ति के बाद वह

---

1 गांधी पूर्वोद्धृत पृ 214।

2 डा पी सीतारमय्या द हिस्ट्री आफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस भाग 1, पृ 77।

इसके पक्ष मे थे कि सहनशीलता की नीति अपनाई जाय, पर सरकार ने इसे पसद नही किया। बल्कि इसके लिये सरकार से उन्हे चेतावनी दी गई। पर इससे कोई अतर नही पडा और अपने मत पर वे आरूढ रहे। एक वर्नाक्युलर अखबार 'द पीपुल्स फ्रेण्ड' का प्रारभ भी उसने 1859 मे किया। चार वर्ष बाद वह एक 'बाल अपराध सुधार गृह' स्थापित करने मे लग गये जहा पर अपराधियो के अच्छा सा सुधार होता था। 1879 मे उन्होने एक असफल कृषि सुधार की योजना का प्रारभ किया जिसके अतर्गत उन्होने ग्रामीण जिलो मे सिविल कोर्ट्स को सूदखोरो के चगुल मे कृषको को फसाने के लिये उत्तरदायी बताया। उन्होने परामर्श दिया कि, ग्रामीण ऋण के मुकदमे तुरन्त और अंतिम रूप से निबटाये जाय जिसमे चुने हुये ईमानदार भारतीयो को रखा जाय।" उनका कहना था कि, "जब उसे आप न्यायालय मे लाते हैं कोई भी गवाह सही बताने की स्थिति मे नही होता क्योकि उसके अपने ही गाव के पडौसी वहा जब होते हैं तो वह असत्य नही कह सकता। हर एक व्यक्ति हर एक के विषय मे जानता है।

ह्यूम ने कुछ काल के लिये 'कस्टम कमिश्नर' के रूप मे भी काय किया और इस पद पर काय करते समय कुछ वरिष्ठ अधिकारियो के परामर्श पर उन्होने एक बडा महत्वपूर्ण सुधार प्रारभ किया जो नमक कर के सबध मे था जिस पर करारोपण अलग अलग प्रान्तो मे अलग अलग कोटि का था और उसकी दरें भी भिन्न थी जिससे नमक की एक प्रान्त या एक भारतीय राज्य से दूसरे राज्य मे तस्करी होती थी। इस अपराध को रोकने के लिये 2500 मील लबी सिंध नदी के अटक से लेकर दक्षिण के महानदी तक फली हुई एक पक्ति बनाई गई जहा कही-कही दीवालें, कही कही कक्टस की झाडी लगाई गई या कही कही गड्ढे बनाये गये। इतनी लबी कस्टम पक्ति की रक्षा के लिये 15 हजार आदमियो की आवश्यकता थी। यह सभी कस्टम लाइन अनावश्यक हो जाती यदि भिन्न भिन्न प्रान्तो के नमक कर मे एकरूपता आ जाती और यदि भारतीय राज्यो मे नमक उत्पादन को नियंत्रित कर दिया जाता। ह्यूम ने ये सुधार कर दिये और सपूर्ण कस्टम रुकावट और लाइन को समाप्त कर दिया गया।

1870 से 1879 के बीच ह्यूम ने भारत सरकार के सचिव के पद पर काय किया। पर चूकि उनके विचार अति प्रगतिवादी थे और स्वतन्त्र थे इस कारण उन्हे इस कार्यालय मे अधिक दिनो तक बर्दाश्त न किया जा सका और उन्हे इसीलिये हटा दिया गया। उन्हे अब पजाब का लेफ्टीनेन्ट गवनर का पद प्रदान किया गया जिसे लेने से उन्होने इकार कर दिया और 1882 मे पदमुक्त होने पर वह शिमला मे बस गये।

पर पदनिवृत्ति के बाद ह्यूम कार्यालय में काम करने वाले ह्यूम से अधिक प्रभावशाली थे। विलियम वेडरबन के अनुसार पदमुक्ति के बाद उन्होंने "कष्टपूर्वक यह अनुभव किया कि वर्तमान सरकार जो निरंकुशता के आधार पर शासन कर रही है खतरनाक रूप से जनता से दूर है।"[1] वह लार्ड डफरिन से मिले जिन्होंने उन्हें समझाया कि इस समय देश में किसी तरह के एक राजनैतिक संघ की आवश्यकता है जो ब्रिटिश शासन के अवगुणों को उजागर करने का कार्य करे। वायसराय ने ह्यूम से सहमति व्यक्त करते हुये कि यह आशा की जाती है कि भारतीय राजनीतिज्ञ प्रति वर्ष मिलें और कहां सरकार को यह इंगित कर कि उसके प्रशासन में क्या दोष हैं और इनका समाधान कैसे हो।" या दूसरे शब्दों में एक ऐसे राजनैतिक संघ की आवश्यकता अनुभव की गई जो 'सेफ्टी वाल्व' के रूप में भारतीय राजनीतिज्ञों की महत्वाकांक्षाओं पर कार्य कर सके। ह्यूम ने अब यह निर्णय किया कि इस उद्देश्य के लिये संगठन बनाया जाय। इसी को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का नाम दिया गया। उनके इस कार्य में सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने सहायता की। दोनों ने मिलकर एक पत्र प्रसारित किया और 1885 में एक बैठक आयोजित की जो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली बैठक सिद्ध हुई। ह्यूम को इसका प्रथम जनरल सक्रेटरी बनाया गया। यह पद उनके पास 1907 तक रहा।

डा० रघुवंशी की तरह के कुछ लेखक यह जोर देकर कहते हैं कि कांग्रेस को संगठित करने में ह्यूम का उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य को बचाना था।" पर यह सच नहीं मालूम पड़ता। एक पर्चे में, जिसका नाम था ऐन ओल्ड मैंस होम, ह्यूम ने अंग्रेजों को इस तरह संबोधित किया, "सभी बन्धुओ, आप का पेट भरा है और आप प्रसन्न हैं। क्या आप यहां के लाखों लोगों के कष्ट का अनुभव करते हैं? कठोर परिश्रम, कठोर परिश्रम, भूख, भूख, बीमारी, कष्ट, आपदा, ये हाय, हाय इनके भाग्य में है एवं यह इनके उदास जीवन का अंग है।' पुनः उन्होंने 1 मार्च 1883 को कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातक छात्रों को एक पत्र के माध्यम से संबोधित किया 'जैसा कि विदित ही है कि आप लोग भारतीय उच्चशिक्षित युवा लोगों के समूह में से एक है इसलिये आप को भारत की बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक और राजनैतिक प्रगति का स्वाभाविक रूप से स्रोत बनना चाहिये मेरी तरह बहुत से विदेशी भारत और उसके बच्चों को जो प्यार करते हैं वह, बेकार ही है क्योंकि उनमें राष्ट्रीयता का वह भाव नहीं है, और न उनमें वह बात ही है जो एक

---

1 वेडरबन ए ओ ह्यूम प 142।

2 रघुवंशी वा पो एस द इंडियन नेशनलिस्ट मूवमेण्ट एण्ड थाट प 44 47।

देश के नागरिक को अपने देश के लोगा के लिये करनी ही चाहिए। और पुन अप्रैल 1888 का उनका उत्तेजक भाषण जिसमे भारतीय जनता म प्रचार का वैसे ही आह्वान करने को कहा गया जैसे 'इग्लैण्ड म ऐंटीकान लॉ लीग' के विरुद्ध किया गया था। य सब कायवाहिया सचमुच ही ऐसी थी जो उह 'ब्रिटिश साम्राज्य बचाओ' के सिद्धात का अनुगमनकर्त्ता नही सिद्ध करती। यह बिना मतलब ही नही था जो उह ब्रिटिश अधिकारिया ने भारत स बाहर भेज देने की चेतावनी दी थी और अक्टूबर 1888 म सर ए० कालिवन ने, जो उत्तर पश्चिम सीमा प्रात का लेफ्टीनेन्ट गवनर था, उनके पास 20 पष्ठा का एक पत्र भेजकर उह उनक परिणामा के लिये आगाह किया था और ह्यूम ने इस पत्र का उत्तर 60 पष्ठा मे दिया था।

पर यह सोचना भी अति ही होगी कि उस प्रारभिक काल मे ह्यूम ने भारत से ब्रिटिश साम्राज्य को तोड फॅकने की जिम्मेदारी का वहन किया होगा। उनका तुरत का उद्देश्य यह था कि सरकार को भारत के लिये काय करना चाहिये इग्लैण्ड के लिये नही, और इसका उद्देश्य यह होना चाहिये कि भारतीया को इन सब मसला पर सारी जानकारी प्राप्त हो जाय।

महादेव गोविन्द रानाडे

सी० वाई० चिन्तामणि ने उनके विषय मे कहा कि वे "बौद्धिक दृष्टि से शक्तिशाली, अपूव रूप से क्षमताशील, कइ क्षेत्रो मे ज्ञानी, उत्तम विचारक और समर्पित देशभक्त थे।"[1] गाखले के राजनतिक गुरु रानाडे का जम 1842 मे हुआ। अच्छे शैक्षिक जीवन की पष्ठभूमि वाले महाराष्ट्रीय इस विद्वान ने बम्बई उच्च यायालय म यायाधीश का पद प्राप्त किया। सरकारी सेवा वसे तो उनके लिये कठिनाइया पशा करती थी, पर उह विचार करने का अवसर मिलता था तथा सामाजिक सुधार की योजना बनाने का भी। भले ही वे राजनैतिक आदोलन नही कर पाते थे। उन्होंने 'डेकन एजूकेशन सोसाइटी' का प्रारभ किया जिसने पूना म एक स्कल स्थापित किया। यही स्कूल बाद मे फर्ग्युसन कालेज के रूप मे बदल गया जिसके प्रिंसिपल के पद पर गोखले 20 वर्षो तक काय करते रहे। चूकि व रानाडे के शिष्य थ इसलिये वे 70 रुपय मासिक पर यहा काय करने रहे।

यायाधीश रानाडे ने राजनतिक आदोलन म भाग नही लिया, पर फिर भी वे भारतीय राष्टीय काग्रेस के लिये एक अजस्र शक्तिस्रोत थे। चूकि

1 चितामणि, सी वाई इण्डियन पालिटिक्स सि स म्युटिनी प 37।

वे एक सामाजिक सुधारक थे, उन्होने एक पुस्तक लिखी जिसका नाम था 'सोशल रिफार्म्स ऐण्ड राइज आफ द मराठा पावर'। इस पुस्तक मे उन्होने मराठा जाति की बुराइयो की ओर इगित किया और उसे सुधारने की आवश्यकता पर जोर दिया। भारतीय आर्थिक समस्याओ के प्रति उन्ह कितना गहन ज्ञान था इसका परिचय उनकी पुस्तक 'एसे आन इण्डियन इकोनामिक्स' से प्राप्त होता है। उन्होन सामाजिक सुधार सम्मेलन आयोजित किये और इस सगठन के माध्यम से उन्होने सामाजिक सुधार आदर्शो को एक स्वरुप प्रदान किया। 1901 मे 59 वष की आयु म वे नही रहे।

सर फीरोजशाह मेहता

वे एक कट्टर उदारवादी थे जिनका यह विश्वास था कि अग्रेज भले हैं। उनके अनुसार इस देश की स्वाधीनता के लिये सवैधानिक विधि से की जाने वाली कार्यवाही सबसे उत्तम थी। सर फीरोजशाह मेहता भारतीय स्वाधीनता के सघष क प्रारभ म भाग लेने वाले पूज्य नताओ मे से एक थे। सर फीरोजशाह ने प्रारभिक काग्रेस सगठन मे भी एक महत्वपूण भूमिका अदा की और 1890 म कलकत्ता क छठे सम्मलन म उन्होने इसकी अध्यक्षता की। उन्होने काग्रेस की विभिन्न समितियो म काय किया और उसमे अपना योगदान दिया। वे ऐसी ही उस समिति के भी सदस्य थ जिसे 1892 मे काग्रेस न इस काय के लिय नियुक्त किया था कि वह ब्रिटिश ससद के पास भेजन हेतु एक माग पत्र तैयार करे जो लोक सेवा आयोग के सबध मे हो। 1894 मे वे काग्रेस के उस प्रतिनिधिमडल मे सम्मिलित किये गये थे जो गवनर जनरल से मिला था और तत्कालीन समस्याओ पर अपना दष्टिकोण व्यक्त किया था। सूरत काग्रेस म 1907 मे उन्होन अतिवादियो का जमकर विरोध किया था। अतिवादियो को जब काग्रस से निकाल दिया गया तो उनके जीवित रहत वे इस सस्था म वापस नही लौट सके। उनकी नि स्वाथ सेवाओ को तब पुन स्वीकृति मिली जब लाहौर के काग्रेस अधिवेशन म उन्ह पुन अध्यक्ष चुना गया पर उन्होन सम्मेलन प्रारभ होने स पूव ही इस पद से स्तीफा दे दिया।

सर फीरोजशाह मेहता सचमुच, उत्तर 19वी सदी के भारत के, एक वरदपुत्र थे, जिन्होने स्वतत्रता आदोलन की नीव डाली। अपनी आयु के अपने साथियों के साथ उन्होने भारत की राजनतिक स्वतन्त्रता का ताना बाना बुना जिसका स्वरूप आज हमारे समक्ष उपस्थित है।

स्वामी श्रद्धानन्द

एक हिन्दू सुधारक जिन्होंने कभी कभी साम्प्रदायिक सम्भावना का परिचय भी दिया, स्वामी श्रद्धानन्द जो प्रारंभ मे मुशीराम नाम से जाने जाते थे, 1856 म जालंधर जिले म तलवान म पदा हुये। अपने बचपन और बाल्यकाल म कभी इस तरह के कार्यो का परिचय उन्होंने नही दिया कि वे भविष्य म एक ऐसे अनुशासित जीवन के पक्षधर हो जायेंगे। 1882 तक उनमें स्वाभाविक यौनाकपण का भाव भी था। इसी समय उनकी स्वामी दयानन्द से भेंट हुई और वे उन्ही के रंग मे रंग गये और एक प्रसिद्ध आयसमाजी हो गये। अपनी प्रारंभिक अवस्था मे उन्होंने नायब तहसीलदार के पद पर काय किया और 1885 स 1902 के बीच उन्होंने वकालत की। 1892 म आय समाज म इस बात पर मतभेद हो गया कि डी० ए० वी० कालेज, लाहौर को किस पद्धति पर चलाया जाय। मतभेद इस बात पर था कि इस संस्था म अंग्रेजी विज्ञान या वेदो मे से किसे अध्ययन विषयो मे सर्वोच्च स्थान प्रदान किया जाय। जिन लोगो ने वेद को प्रथम विषय बनाने को कहा उन्हें प्रतिक्रियावादी कहकर कालेज प्रबंध समिति स हटा दिया गया। स्वामी श्रद्धानन्द इस दल के नेता थे जिन्होंने 1902 म हरिद्वार म प्रसिद्ध गुरुकुल पद्धति का प्रारंभ किया और अपने आदर्श को व्यावहारिक रूप प्रदान किया।

यू० पी० के लेफ्टीनेन्ट गवनर सर जेम्स मेस्टन ने 16 माच 1913 मे अपना मत गुरुकुल के संबंध म व्यक्त करते हुये कहा, "गुरुकुल पद्धति एक अति नवीन और रुचिकर प्रयोग है जो इस प्रान्त मे क्या पूरे भारत मे पहली बार किया जा रहा है।" 1910 मे चिरोल ने अपना विचार रखते हुये कहा कि गुरुकुल मे "5 वष से 10 वष के बीच के शिष्य बालक के रूप मे प्रवेश प्राप्त करते है। इसके बाद से उनका बाहरी विश्व स तब तक संबंध समाप्त कर दिया जाता है जब तक व अध्ययन करते है। यह काल 16 वष का होता है अर्थात 10 वष निचली कक्षा मे तथा 6 वष उच्च कक्षाओ म जिस व ब्रह्मचारी के रूप मे उत्तीण करते है। इस काल मे विद्यार्थी अपने परिवार म नही भेजा जा सकता। पर विशेष परिस्थितियो मे वह परिवार मे जा सकता है। माता पिता अपने बच्चे को गुरुकुल म अनुमति लेकर एक माह में एक बार देखने आ सकते है।"[1]

---

1 चिरोल की इंडियन अनरेस्ट पृ 121, सेंसस रिपोर्ट आफ पंजाब भी देखें, 1911।

स्वामी जी की सुधा इस तरह थी जो उनके दशन और विचारो का परिचय देती है। 1902 से 1917 के बीच वे गुरुकुल के लिये काय करते रहे और धीरे धीरे वे स यासी हो गये और स्वामी श्रद्धानद के नाम से जाना जाने लगे। इसके पूव उ है महात्मा मुशीराम कहा जाता था।

पर स यास धारण करने के बाद स्वामी जी जगल नही गये। वे दिल्ली मे रौलट एक्ट आदोलन म सम्मिलित हुये और उ होने एक जुलूस का नेतृत्व किया जिसे गुरखा सैनिको न चादनी चौक म क्लाक टावर के पास रोक दिया। स्वामी जी ने उनके गोली चलान स पूव अपना सीना उनके सामन खोलते हुये कहा कि वे गोली चलान स पूव उ हे मार डाल। इस पर उनके जुलूस को आगे बढने की अनुमति मिल गई।

रौलट ऐक्ट आदोलन के अवसर पर पुलिस अत्याचारो मे मारे गये मुसलमान परिवार के प्रति उ होन हृदय से सहानुभूति व्यक्त की जिसके फल स्वरूप दिल्ली के मुसलमानो ने उनका जामा मस्जिद म स्वागत किया। 1919 म उ होने काग्रेस को अमतसर म अपना सम्मेलन करने की दावत दी और उसकी सारी व्यवस्था की। दूसरे ही वष उ होंने सिखो के गुरुद्वारा आदोलन के प्रति सहानुभूति व्यक्त की जिसके फलस्वरूप उ हे मा टगोमरी जेल जाना पडा। वे गाधी के असहयोग आदोलन मे भी सम्मिलित हुये पर बाद म उ होने सत्याग्रह समिति से उस समय स्तीफा द दिया जब गाधी ने कुछ अनुत्तरदायी लोगो की हिसा के कारण इस आदोलन को रोक दिया। स्वामी जी का कहना था कि किसी और की गलती के लिए सत्याग्रहियो को दडित नही करना चाहिये था। इसके बाद जो साम्प्रदायिक दगे हुये और जिसमे मुसलमानो के हाथो हि दुओ की बडी हानि हुई उसके फलस्वरूप स्वामी जी प्रतिक्रियावादी हो गये। वे इस परिस्थिति से निबटने के लिए हि दू सगठन आदोलन चलाने लगे। दिल्ली मे उ होने अछूतो के सुधार के लिये दिल्ली सुधार सभा का आयोजन किया। उ होने भारत शुद्धि सभा का भी प्रारभ किया। उनकी इन कायवाहियो न उ हे मुसलमानो का शत्रु बना दिया और अतत 1926 मे वे एक मुस्लिम हत्यारे की गोली के शिकार हो गये।

श्रीमती एनी बेसेंट

कु० वुड (बाद मे श्रीमती एनी बेसेन्ट) का ज म 1847 मे हुआ। पाच वष की आयु की जब वे थी तभी उनके पिता की मत्यु हो गई। उनका बचपन और कौमाय हर तरह की कठिनाइयो से भरा हुआ था। 1867 म जब उ होने एक धार्मिक व्यक्ति से विवाह किया तो उनका भाग्य बेहतर होने की

जगह पर कुछ और बिगडा ही। उनके पति धमपरायण व्यक्ति थे, पर उनमे अधविश्वास अधिक था और सत्य की अनुभूति कम। एनी बेसट का अपना अलग ढग का रहन सहन था पर वह भी धार्मिक ही था। तत्कालीन समाज मे वे ईश्वरवादी लगती थी। इस विवाह से एक कया का जम हुआ, पर जीवन म नैराश्य और क्रोध न उनका पल्ला नही छोडा। अतत उहोने यह निश्चय किया कि इस जीवन से हट ही क्या न जाया जाय। उहनि सारी तैयारी कर ली और जब व आत्महत्या करने ही वाली थी तभी उनके मन मे आया और उहोने यह निश्चय किया कि वे अपन पति का साथ छोडकर शेष जीवन सम्पूण मानव की सेवा म लगा देंगी। 25 वप की असहाय और निधन ईश्वरवादी इस महिला ने भौतिकी जगत मे प्रवश किया जो उसके विश्वासा से घृणा करता था। नियमित रूप से नौकरी की प्राप्ति सरल बात न थी। पर वह भाग्यशाली थी कि उनके एक लेख ने उ हे एक पत्रिका से कुछ पारिश्रमिक प्राप्त करा दिया और उहोने नये जीवन का प्रारभ कर दिया। बाद मे उनका सपक ग्र डला से हुआ जो विचारो से एक सज्जन व्यक्ति थे। उनके साथ पत्रकारिता और सामाजिक कार्यों मे सहभागी होते हुए उहनि समाज सुधार का काय प्रारभ किया। उ हनि माचिस फक्ट्रियो मे काम करने वाली अग्रेज लडकियो के लिये जो सघप किया उससे पता चलता है कि उनमे सगठन की ओर सदेश देने की कितनी क्षमता थी।

कुछ दिनो के बाद ही वे मैडम ब्लावटस्की और कनल ऑल्काट द्वारा प्रारभ की गई थियोसोफिकल सोसाइटी' म सम्मिलित हो गइ। मडम ब्लावटस्की का उन पर बहुत प्रभाव था जिहोन उह गुप्तज्ञान भी प्रदान किया। इसी के फलस्वरूप 1803 मे व भारत आइ और 20 वर्षों की अवधि तक उहोने देश मे धार्मिक और सामाजिक सुधारो के क्षेत्र मे काय किया। श्रीमती बेसेट ने भारत के गौरवपूण भूतकाल का अध्ययन किया और उसका साहित्य पढा और वे ्स निष्कष पर पहुँची कि भारत कितना महान था और कितना महान हो सकता है। पर वे इस बात से बडी दु खी थीं कि देश मे अज्ञान की छाया है और लोग आपसी झगडो म फसे हैं। उहोने भारतीयो को अपनी शक्तिशाली भाषा म बताया, मा के बच्चा, एक ईश्वर उपासको अपूव शक्ति वालो, तुम धार्मिक और राजनतिक सघप मे फसकर विश्व के समक्ष आने म क्यो लज्जित हो रहे हो ? क्या तुम्हारा देश तुम्हार दल से बडा नही है ? क्या तुम्हारे धर्मो स धम बडा नही है ?"[1] सी० वाई० चिन्तामणि ने उनके विपय म लिखा है "उनमे दढ इच्छा शक्ति महान, बुद्धि और अपार

---

1 बसेण्ट एनी द इडिया दट शल बी (1914) प 1।

ज्ञान भरा पडा था। उनमे केन्द्रीकृत सोद्देश्यता, अत्यधिक साहस, अति उत्साह और सदा काय करत रहन की भावना थी जब तक कि वह पूण न हो जाय और इन सब के साथ सोने मे सुहागा थी उनकी भाषण शक्ति।"[1] भारत मे घूम घूमकर वह लोगो को उनके पूवजो के विषय म बताती रही और यह भी कि आज भी देश म उनकी भूमिका हो सकती है। प्राचीन हि दू साहित्य का उनको इतना ज्ञान था कि उनके भाषण के समय भारत के बडे बडे पडित भी माथा झुका देते थ। उ होन भगवदगीता का अग्रेजी म अनुवाद किया और बनारस म सेण्ट्रल हि दू स्कूल तथा कालेज प्रारभ किया जो बाद मे हि दू विश्वविद्यालय के रूप म परिवर्तित हो गया। उनके अनुसार भारत पश्चिमी भौतिकी प्रवत्ति की चकाचौध म खोता जा रहा था। श्रीमती बेसे ट ने शिक्षा दी कि भारत का अपना व्यक्तित्व अलग था जिससे पश्चिम आज भी बहुत कुछ सीख सकता था। उ होने भारतीय सकोच का शमन किया उनमे साहस भरा और इच्छाशक्ति को ज म दिया। उ होने उस भारत का तयार किया जिसे आने वाले दिनो म विश्व राजनीति म महत्वपूण भूमिका अदा करनी थी।

बाद म वे थियोसोफिकल सोसाइटी की अध्यक्ष हो गइ और इस हैसियत से वह 1908 से 1913 के बीच कइ बार इग्लड गइ। उ होन रेडमा ड के 'आइरिश होमरूल आदोलन' का अध्ययन किया, वह उससे प्रभावित हुइ और भारत वापस होने पर उ होने यहा भी उसी तरह का आ दोलन प्रारभ करने का निश्चय किया। 1914 म वे भारतीय राजनीति म प्रविष्ट हुइ। 'उ होने घास को अपने पैरो के नीचे नही उगने दिया। स्वभाव से वे केवल 'साधारण' से सतुष्ट नही थी। उ होन जल्दी ही बहुत से पुरान राजनीतिज्ञो को दौड मे पीछे छोड दिया और "यग स उ ह कल के आदमी' कहा। उ होने एक 'होम रूल लीग' बनाया और इसी के अतगत पूरे देश म सगठन का जाल बिछाया, तत्सबध म प्रचार के लिये बहुत से पर्चे बटवाये जिसम सारे विवरण दिये गये और घूम घूमकर आशा जगाने वाले और प्रतिबध से मुक्ति दिलाने वाले भाषण दिय।"[2] 1916 म होम रूल लीग का प्रारभ किया। इसी वष इ होने काग्रेस के उदारवादियो और अतिवादियो म समझौता कराया। इसके पूव उ होने 'कामनवील' नामक एक साप्ताहिक पत्रिका निकाली और बाद म उ होने 'निव इडिया' नामक एक दनिक समाचार पत्र निकाला। इनके माध्यम से उ होन देश मे अपने उदारवादी विचारो का प्रचार किया।

1 चि तामणि सी वाइ इडियन पालिटिक्स सि स म्यटिनी प 102।
2 वही प 101 103।

उनकी इन कायवाहियो ने 1917 मे उन्हे वाडिया और अरुण्डेल सहित बंदी बनवा दिया । इससे उनकी प्रसिद्धि और बढ गई और जब तीन माह बाद उन्हे जेल से छोडा गया तो उन्हे 1917 मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष चुनकर प्रतिष्ठा प्रदान की गई ।

श्रीमती बेसेन्ट ने गाधी के असहयोग आदोलन तथा सविनय अवज्ञा आदोलन को पसद नही किया । उनके अनुसार इससे भारतीयो को अव्यवस्था की शिक्षा मिलती थी तथा इस अवसर पर अपराधियो और गलत काय करने वालो की बन आती थी । वह इसकी अवहेलना इस जोरदार तक के आधार पर करती थी कि यह दशन हिंसा को माध्यम बनाकर अहिंसा को प्रोत्साहित करता था । गाधी के विषय मे उन्होने लिखा, वे एक राजनीतिज्ञ नही हैं, वे अस्पष्ट स्वप्नवत गुह्य तथा साधारण मानव स्वभाव से भिन्न नही हैं ।" इसी कारण सभवत गाधी की कायवाहिया का फल वह होता जो उनका उद्देश्य न होता । श्रीमती बेसेन्ट ने लिखा, "भारत आने के बाद स गाधी का राजनीतिक प्रभाव सदा विनाशात्मक रहा है । मुझे स्मरण है कि जब गाधी के भारत आने से पूव मैंने गोखले से उनके आगमन के सबध मे प्रसन्नता व्यक्त की और यह आशा व्यक्त की कि वे भारत के लिये स्वतत्रता अर्जित करने मे बहुत सहायक होगे तो उस बुद्धिमान और भविष्यदृष्टा राजनयज्ञ ने उत्तर दिया नही आपको भ्रम है, गाधी हमारे आदोलन के लिये अडचनें ही उत्पन्न करेगे ।' उनकी वाणी चिन्तापूण ढग से कितनी सच सिद्ध हुई । असहयोग एव सविनय अवज्ञा के जोखिम भरे आदोलनो ने राजनैतिक क्षेत्र को बर्बाद कर दिया अच्छा ही हुआ कि गोखले अपने जीवन के कार्यों की बोई हुई फसल बर्बाद होते देखने से पहले ही चल बसे ।'[1]

1919 के सुधारो के अतगत स्वराजियो द्वारा सदन मे प्रवेश की भी श्रीमती बेसेन्ट ने आलोचना की और कहा 'चुने जाने के पूव व शेरो की तरह दहाडते थे, पर अब पडकी की तरह टुटरु टू करके सज्जन दिख रहे हैं । सभाओ मे उन्होने कहा कि चुने जाने पर व कौन कौन से आश्चय प्रस्तुत कर देंगे । पर सदन म प्रवेश करने के बाद वे सारे वादे भूल गये ।'[2]

श्रीमती बेसेन्ट भारत के लिये पूण स्वतत्रता की पक्षधर थी, पर वे इग्लैंड से सभी सबधो के तोडे जाने के पक्ष मे नही थी । उनका उद्देश्य ब्रिटिश कामनवेल्थ राष्ट्र बनाने का था जिसके माध्यम से उनके अनुसार आने वाले दिनो म विश्व की राजनीति म इग्लैंड और भारत प्रमुख भूमिका अदा कर

1 वही प 102 103 ।
2 बसेण्ट एनी पूर्वोद्धृत प 103 ।

सकते थे। कामनवेल्थ राष्ट्रो की स्थापना हो चुकी है और हम आशा करते हैं कि श्रीमती बेसेंट की भविष्यवाणी सही साबित होगी और इग्लण्ड तथा भारत भविष्य मे आशानुकूल भूमिका अदा करेंगे।[1]

गोपाल कृष्ण गोखले

1866 मे कोल्हापुर मे उनका जन्म हुआ। 18 वष की आयु मे वे स्नातक हो गये जिसके बाद वे अध्यापक हो गय। शीघ्र ही वे फग्युसन कालेज, पूना के प्रिंसिपल हो गये। गोखले को तिलक "भारत का हीरा, महाराष्ट्र का जवाहर और कमठता का राजा"[2] पुकारा करते थे। 22 वष की आयु म ही बम्बई की विधायिका के वे सदस्य हो गये। ह्वायलण्ड ने गोखले के विषय मे कहा कि, "वे सभावनाओ पर काय करने म माहिर, प्रथम श्रेणी के रचनात्मक दृष्टि से राजनीतिज्ञ, जरूरतमदो की सावजनिक सेवा हेतु पूव और पश्चिम को एकत्रित करने वाले, एक आदशवादी, भविष्यद्रष्टा, मिली-जुली जातियो म सदेच्छा और सहयोग स्थापित कर नवयुग स्थापक एव पैगम्बर'[3] थे जिनका राजनतिक क्षेत्र मे उत्थान एकाएक हुआ। 29 वष की आयु मे वे बनारस काग्रेस के अध्यक्ष बना दिये गये। देश की अथ राजनीति के विषय मे उनका ज्ञान तथा इस देश की सामान्य समस्याओ के सबध मे उनकी जानकारी इतनी विशाल थी कि 31 वष की आयु म ही उन्हे इग्लण्ड मे इस बात के लिये आमत्रित किया गया कि वे वेल्बी कमीशन के समक्ष भारतीय व्यय के सबध मे प्रमाण प्रस्तुत करें।

गोखले का राजनतिक दशन तथ्यपरक था। उनकी समझ से ब्रिटिश भारत मे दैवी उद्देश्य की पूर्ति हेतु आय थे और वे यहा तब तक बने रहेंगे जब तक उनका यह उद्देश्य पूरा नही हो जाता। इस तरह जहा वे सरकार की प्राय उसके दोषो के लिय आलोचना करते थे, वहा वे यह पसद नहीं करते थे कि सरकार को हिंसात्मक रीति से हटा दिया जाय और देश म स्वाधीनता लाई जाय। वह सरकार और जनता दोनो को सदा सावधानी बरतने को कहते थे। सरकार से वे कहते थे कि वे जनहित को हानि न पहुँचने दे और जनता से वे कहते थे कि वे आदोलन न करें। दूसरे शब्दो मे वे एक उदारवादी थे

---

1 देखें पाल बी सी श्रीमती एनी बसेण्ट।

2 विस्तत अध्ययन के लिये देखें तिलक राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज।

3 ह्वायलण्ड ज एस गोपाल कृष्ण गोखले (ट्रिज लाइफ एण्ड स्पीचेज) कलकत्ता 1930 प 235।

जो दोनो पराकाष्ठाओ को नापसद करता था। गाधी ने उनके विषय मे कहा, "सर फीरोजशाह मुझे अपराजेय हिमालय जैसा दिखते थे और लोकमान्य एक समुद्र की भाति। पर गोखले तो गगा थे जो अपनी गोद म सबको आमत्रित करती है।"[1]

गोखले ने नमक कर का विरोध किया जिसे वे गरीब आदमी की रोटी पर एक प्रहार मानते थे। उन्होने सरकार की इस बात के लिये निन्दा की जिसने सिविल सेवाओ मे तथा उच्च सरकारी सेवाओ मे भारतीयो को उचित स्थान नही दिलवाया है। 1902 मे इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल मे नामित एक सदस्य के रूप मे उन्होंने लार्ड कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीतियो की आलोचना की और बगभग के लिये उसकी भर्त्सना की। पर कर्जन जो हृदय से साम्राज्यवादी था, और जो भारतीयो को उनकी दुर्बुद्धि के कारण घृणा करता था, गोखले के विषय मे यह कहने को बाध्य हुआ, 'ईश्वर ने आपको असाधारण योग्यता प्रदान की है और उसे आपने अपने देश के लिये पूर्णरूपेण सौंप दिया है।"

1905 मे गोखले भारतीय लोगो की लोकप्रिय इच्छाओ को इग्लड के विचारको के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये गये। उसी वर्ष उन्होंने 'सरवेन्टस ऑफ इण्डिया सोसाइटी' की स्थापना की जिसका उद्देश्य "मातृभूमि की सेवा के लिये लोगो को अल्प वेतन पर काम करने के लिये प्रशिक्षित करना था जिन्हे कठोर अनुशासन मे रहना होता था और ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति स्वामिभक्त होना था।' 1909 के मार्ले मिण्टो सुधारो को लागू कराने मे उनकी प्रमुख भूमिका थी जिसे वे भारत के स्वाधीनता की ओर बढते हुए कदम की एक ठोस कडी मानते थे। उन्होंने प० मदन मोहन मालवीय की 1909 के ऐक्ट की उस आलोचना का उत्तर देते हुये, जिसम उन्होने इसे साम्प्रदायिक बताते हुय मुसलमानो को अधिक सीट देने की आलोचना की थी, मूक व आश्चर्यचकित कर दिया था, "महोदय, हमे सकुचित भाव से चीजो को नही देखना चाहिये। आखिर इसकी क्या महत्ता है कि इस सदन मे कितने मुसलमान बैठते हैं और कितने हिन्दू स्थान पाते हैं? अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि हममे से कितने लोग काम करते हैं और किस भाव से काम करते हैं?' गोखले न 1912 मे दक्षिणी अफ्रीका की यात्रा की और गाधी को उनके जातिभेद स सघर्ष मे उनकी सहायता की। जब 1919 के सुधारो की रूपरेखा तैयार हो रही थी तो उन्हे भी एक विशेषज्ञ के रूप म इग्लण्ड अपना विचार प्रस्तुत करने के लिय आमत्रित किया गया था। गोखले ने सुधार की अपनी

1 गांधी माई एक्सपेरीमेण्ट्स विद ट्रुथ प 236।

योजना प्रस्तुत की जिसे 'पालिटिकल टस्टामण्ट आफ गोखले' के नाम से जाना जाता है। 1915 में प्रस्तुत इस योजना में प्रान्तों में पूर्ण स्वायत्तता की माग की गई। और इम्पीरियल लजिस्लेचर में सेना और नवसेना के सबध मे भी अन्य विषय की तरह प्रश्न करने और वादविवाद करने "प्रभाव बढाने का अवसर प्राप्त हो गया।" उसी वर्ष गोखले की मृत्यु हो गई।

गोखले को "भूखी नंगी सिकुड़ी जनता" को देखकर बडा कष्ट होता था और इसीलिये वे विलासी जीवन के निकट तब तक नही गये जब तक कि दुर्भाग्यशाली जनता का भाग्य बेहतर करने में उन्होंने कुछ सहयोग नही कर दिया। 20 वर्षों तक जब तक वे फर्गुसन कालेज मे प्रिंसिपल थे उन्होंने कभी भी 70 रुपये से अधिक वेतन नहीं लिया। उनके मन में इस देश की जनता के प्रति असीम प्रेम था। वे चाहते थे कि उन्हें राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त होनी चाहिये जिससे कि एक दिन विश्व की सप्रभु शक्तियों में उनकी भी गिनती हो। पर वे उन्हें पेटू नही बनाना चाहते थे। उनका कहना था कि वे उतना ही खायें जितना की पचा सकें।[1]

मोतीलाल नेहरू

भारत के महान पुत्र जवाहरलाल नेहरू के महान पिता श्री मोती लाल नेहरू का जन्म मध्य श्रेणी के एक कश्मीरी ब्राह्मण परिवार में हुआ। अध्ययन मे तो वे बड़े सफल नही थे कालेज मे स्नातक का अध्ययन ही छोडकर वे भाग खडे हुये पर बाद में कानून की डिग्री प्राप्त कर वे इलाहाबाद में वकालत का पेशा करने लगे। इस पेशे में उन्हान इतनी सफलता प्राप्त की कि उनकी मासिक आय लाखो रुपये थी। वह शीघ्र अति सम्पन्न हो गये और वैभवशाली जीवन व्यतीत करने लगे। उन्होने अपने एकमात्र पुत्र जवाहरलाल को इगलण्ड अध्ययन करने के लिये प्रारम्भ से ही भेजा। पुत्र की अध्ययन से वापसी पर और उसके प्रभाव के फलस्वरूप पिता भी 1917 में राजनीति मे कूद पडे।

भारत के लिये मोती लाल के बलिदान भी महान थे। वे प्रारभ में उदारवादी थे। पर 1916 में श्रीमती एनी बेसेन्ट की गिरफ्तारी और 1919 के जलियावाला बाग के हत्याकाड ने उन्हें अनुदार बना दिया। 1919 मे वे अमृतसर काग्रेस के अध्यक्ष चुने गये गाधी के असहयोग आदोलन मे जेल गये पर वे सतुष्ट नही थे और इसीलिये सी० आर० दास के साथ मिलकर उन्होंने स्वराज दल की स्थापना की जिसने 1919 के चुनावो

---

1 देखें शास्त्री, टी आर गोपाल कृष्ण गोखले बम्बई 1929।

मे भाग लिया और केन्द्रीय सभा मे प्रवेश किया। विधायिका मे उनकी सख्या आशा के अनुरूप तो नही थी, पर उन्होने अपने भरसक बहुत किया। 1926 27 मे बजट अस्वीकृत कर दिया गया, 1919 के ऐक्ट के सशोधन का प्रस्ताव पारित किया गया तथा एक गोलमेज सम्मेलन प्रस्तावित किया गया जिसकी सभा भी बाद मे हुई। श्री नेहरू ने साइमन कमीशन को चुनौती दी तथा नेहरू रिपोर्ट के नाम से प्रतिवेदन तैयार किया जिसमे भारत के सभावित सविधान का विवरण था जो उसे प्राप्त करना था। यह सचमुच एक विस्तृत दस्तावेज था। जिसे सरकार ने अस्वीकार कर दिया जिसके फलस्वरूप काग्रेस ने 1929 के अधिवेशन मे स्वाधीनता का प्रस्ताव पारित किया।

सविनय अवज्ञा आदोलन मे श्री मोतीलाल 1930 मे पुन जेल गये। पर अब अपनी बढती उम्र के कारण कष्ट और थकान वे नही झेल पाते थे। इसी कारण गिरते स्वास्थ्य के आधार पर उन्हे जेल से रिहा कर दिया गया। 1931 म 70 वष की आयु मे उनकी मृत्यु हो गई।

सरदार वल्लभभाई पटेल

1857 के विद्रोह मे ब्रिटिशो से लोहा लेने वाले झावेर भाई के पुत्र, वल्लभ भाई पटेल का जन्म 31 दिसबर 1875 मे हुआ। भारत मे शिक्षा पूरी करने के बाद वे इग्लैण्ड गये जहा से 1913 म उन्होने बैरिस्टर एट ला की डिग्री प्राप्त की और वहा से वापस आकर अहमदाबाद मे वकालत करना प्रारभ किया जहा उन्हे बडी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। 1916 मे उन्होने गाधी का आह्वान सुना और अपना आयपूर्ण काय छोडकर राजनीति के दगल मे कूद पडे। प्रारभ मे उन्ह गाधी का रास्ता पसद नही आया, पर बाद म वे उनके इतने विश्वासपात्र समथक हो गये कि व महात्मा जी को अपना आध्यात्मिक गुरु मानने लगे। उन्होने अपने सारे स्वतत्र विचार उनके कदमो पर न्यौछावर कर दिये और उनके निर्देश पर अघो की तरह काय करने लगे। 1918 म उन्होने प्रसिद्ध अहमदाबाद मजदूरो की हडताल का नेतृत्व किया और गाधी के निर्देशो के अतगत 1928 मे उन्होने बार्दोली किसान आदोलन का नेतत्व किया। उन्ह किसानो के हित के प्रति बडा प्रेम था जिसके विषय मे बार्दोली मे उन्होने कहा, "यदि इस पथ्वी पर कर सीधा करके चलने म कोई समथ है तो वह किसान ही है। वह उत्पादक है और अन्य तो उसे खाने वाले हैं।" बार्दोली किसान आदोलन को सफलतापूवक सगठित करने के कारण गाधी न उन्ह सरदार की उपाधि प्रदान की।

सरदार पटेल दृढ इच्छा और लौह निश्चयी व्यक्ति थे। उन्होंने कांग्रेस दल मे अपनी संगठनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया और 1931 म काग्रस के अध्यक्ष चुने गय। इस पद पर व 1934 तक बन रह। जान गथर न उनके विषय म कहा 'व अति उच्च कोटि के दलीय अध्यक्ष थे। वे जिम पार्टी की तरह कठोर रूप स दल की कायवाही करत और उस सगठित करत है।"[1] 1935 म कांग्रेस न सरकार म सम्मिलित होन का निश्चय किया उस समय पटेल का काग्रस ससदीय उपसमिति का चेयरमैन पद प्रदान किया और व इस पद पर 1940 तक काय करत रहे। इस काल म वे प्रान्तो के मत्रिमडलो का निर्देश दत रह और यह सिद्ध किया कि किस तरह स लौहानुशासन लागू किया जाता है। मत्री उन्ही क निर्देश पर काय करत रह।

1941 म उन्होंन व्यक्तिगत रूप स सविनय अवज्ञा की और जेल गय। उन्हे जेल भेज दिया गया जहा स स्वास्थ्य के आधार पर 1941 म उन्ह रिहा कर दिया गया। 1942 म उन्ह पुन बन्द कर लिया गया और अहमदनगर किल म भेज दिया गया जहा स उन्ह 1946 म ही छोडा गया। 1946 म जवाहरलाल नहरू की अतरिम सरकार म उन्ह गह मत्री नियुक्त किया गया। वे इस देश के विभाजन क पक्ष म नही थ, पर मौलाना अबुल कलाम को तब बडा आश्चय हुआ जब उन्होंन लाड माउण्टबटन के प्रभाव म अपना मत बदल दिया और चुपचाप इस सबध म अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी।[2] गहमत्री के रूप म उन्ह मुस्लिम लीग का क्रूर साम्प्रदायिक रूप देखना पडा जो अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिय देश की शांति और व्यवस्था को बर्बाद करने पर आमादा थी। सभवत इसी कारण ही उन्होंने यह सोचा कि मुस्लिम लीग की मागो को मान बिना देश की शातिपूर्ण पुनरचना सभव नहीं है।

स्वाधीनता के बाद 1947 म नहरू मत्रिमडल म सरदार को उपप्रधान मत्री बनाया गया। उनके कारण ही भारत के राजाओ के राज्यो का सफलतापूर्ण ढग से विलीनीकरण सभव हुआ क्योकि उनके ऊपर से ब्रिटिश सप्रभुता समाप्त होते ही उनम देश स अलग होन की प्रवत्ति जोरो से काय कर रही थी। पुराना पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट' समाप्त कर दिया गया और उनके परामश पर एक राज्य मत्रालय की स्थापना की गई जिसका नेतत्व उनके हाथ म सौंपा गया। इस पद पर रहकर उन्होंन राजाओ को फुसलाया भी और धमकाया भी। यह उनके लिय गौरव की बात है कि बिना बदूक की एक

---

1 ग थर जान इनसाइड एशिया।
2 आजाद मौलाना ए के इण्डिया विस फ्रीडम प 179 81।

गोली चलाये भारत के राजाओ को उन्होने भारत मे सम्मिलित कर लिया। हैदराबाद और जूनागढ ही ऐसे दो राज्य थे जहा की स्थिति भिन्न होने के कारण वहा कडी कार्यवाही करनी पडी।

जब उनका उद्देश्य पूरा हो गया और भारत मे एकता व सगठन की स्थापना हो गई तो भारत का यह बिस्माक 1950 मे इस भौतिक जगत को छोडकर चल बसा। सरदार पटेल की मृत्यु से भारत ने अति विश्वस्त सेवक खो दिया जिसने भारत की लाखो करोडो जनता के लिये कोई भी बलिदान बडा नही समझा।

मौलाना अबुल कलाम आजाद

1888 मे मक्का मे एक शरणार्थी परिवार मे एक अरब महिला ने उन्ह जन्म दिया। 1898 मे वे अपने पिता के साथ कलकत्ता आये। यहा उन्होने शिक्षा प्राप्त की और 1905 म कैरो के अजरा विश्वविद्यालय मे उच्च शिक्षा के लिये भेज दिये गये। वे शीघ्र ही भारत वापस लौट आये और 1908 मे राजनीति म कूद पडे। वे अरबी भाषा के उच्च कोटि के विद्वान थे। एक नि स्वार्थ कार्यकर्त्ता आजीवन सकुचित मुस्लिम साम्प्रदायिकता के विरोधी आजाद ने 1912 मे अलहिलाल साप्ताहिक प्रारभ किया जिसके माध्यम से लोगो को उन्होन अपने विद्वतापूर्ण और परिपक्व राजनतिक विचारो से प्रभावित किया। पर विदेशी सरकार उनसे क्रुद्ध ही हुई। 1915 मे उन्ह राची भेज दिया गया और वहा व 1920 तक जेल म पडे रह।

मौलाना आजाद गाधी के विश्वस्त समथक तो थे पर अध समथक नही। 1920 म वे असहयोग आदोलन मे सम्मिलित हुये और जेल गये। बाद मे जब यह आदोलन वापस ले लिया गया तो काग्रेस के दो दलो मे समझौता कराने म उन्होन प्रमुख भूमिका अदा की। इसमे से एक दल कौंसिल मे प्रवेश के पक्ष मे था और दूसरा इसके विपक्ष मे। उन्होने महात्मा की जिन्ना को अत्यधिक महत्ता देने के लिये आलोचना की क्योकि उनकी दृष्टि मे मुस्लिम साम्प्रदायिकता के बढने का यही कारण था। वे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के बार बार अध्यक्ष चुने गये। वे द्वितीय विश्वयुद्ध काल म इसके अध्यक्ष रह और इसी कारण उन्होने क्रिप्स और कबिनेट मिशन से बातचीत की। वे सदा पाकिस्तान की रचना के विरोधी बने रहे। उन्ह तब बडा कष्ट हुआ जब अपनी लाश पर पाकिस्तान बनन की बात करन वाले गाधी भी बदल गये। अपनी पुस्तक 'इडिया विंस फ्रीडम' म उन्होने आश्चर्य व्यक्त किया है कि किस तरह देश के नेता अपन स्वतत्र विचारो से उस समय

महरूम हो जाते थे जैसे ही उनका सपर्क गाधी से हो जाता था। अतरिम मत्रिमडल म उन्हे शिक्षा मत्री बनाया गया। इस पद पर वे अपने मत्यु के समय 1958 तक बन रहे।

सुभाष चन्द्र बोस

उनका जन्म 1897 मे हुआ। वे पढ़ने लिखने मे बडे तीव्र थे। सुभाषचन्द्र बोस पढाई समाप्ति के बाद इडियन सिविल सर्विस मे चुन लिये गय। पर सेवाकाल मे जब उनसे ब्रिटिश ताज के प्रति शपथ लेने को कहा गया तो उन्होने ऐसा करने से इकार कर दिया और 1921 म नौकरी छोड दी। कालेज काल मे ही उन्होने दिखा दिया था कि वे क्या होन जा रहे हैं जब उन्होने भारतीय सस्कृति को बुरा भला कहने के लिये एक अग्रेज को पीटना प्रारभ कर दिया। नौकरी छोडकर सुभाष ने असहयोग आदोलन मे भाग लिया। पर वे गाधी के पथ से सतुष्ट नही हुये और उन्हान मोतीलाल और सी० आर० दास का समथन उनकी स्वराज पार्टी म करना प्रारभ कर दिया। सी० आर० उन्हे बहुत स्नेह करत थे और जब वे कलकत्ता के मेयर हुये तो उन्होने सुभाष को अपने अधीन मुख्य कायपालिका अधिकारी नियुक्त किया। पर सुभाष की प्रगतिशील कार्यवाहियो ने उन्हे सरकार का कोपभाजन बना दिया, उन्हे माडले भेज दिया गया, पर उनके देशवासियो ने उनके उपकार को ध्यान मे रखकर उनकी अनुपस्थिति म ही उन्हे बगाल विधायिका के लिये चुन लिया।

सुभाष काग्रेस मे युवा और अनुदारवादी तत्वो का प्रतिनिधित्व करते थे। वे 1938 मे काग्रेस के अध्यक्ष चुने गये और फिर 1939 म भी। जब वे गाधी और अन्य लोगो के साथ ठीक स अपने विचारो को नही ढाल सके, तो उन्होने अध्यक्ष पद से स्तीफा दे दिया और प्रसिद्ध फावड ब्लाक को सगठित किया। सुभाष का विश्वास गाधी की अहिसावादी नीतियो म नही था और उन्होने भी गाधी की आलोचना श्रीमती एनी बेसेन्ट की तरह करते हुए कहा कि वे भारत की राजनैतिक प्रगति के लिये एक अडचन थे। उन्होंने 1931 मे गाधी के द्वितीय गोलमेज सम्मलन म भाग लेने के तरीके की आलोचना की। उनका कहना था कि गाधी यदि प्रथम गोल मेज सम्मलन मे सम्मिलित होते तो एक शक्ति होते, पर दूसरे गोल मेज सम्मेलन म तो उनका अनुपस्थित रहना ही उत्तम रहता। व दढता से यह मानते थे कि भारत को स्वतत्रता बिना बाह्य सहायता के नही प्राप्त हो सकती थी। द्वितीय विश्व युद्धकाल म उन्हे उनके घर म नजरबद कर दिया गया था जहा स व वेष निकले और

अफगानिस्तान इटली और जर्मनी होते हुये वे जापान पहुँचे जहा पर उन्होंने भारतीय युद्धबंदियो तथा अन्य लोगो को सगठित कर इण्डियन नेशनल आर्मी की स्थापना की भारत की पूर्वी सीमा पर आक्रमण किया पर पराजित हो गये। वे 1945 म एक हवाई दुघटना म मारे गये। भारत मे बहुत स लोगो का विश्वास है कि हवाई दुघटना से वे बच निकले और अब भी योगी के वेष म कही रह रहे हैं।

मोहनदास कमचद गाधी

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने उनके विषय म लिखा 'एक राजनीतिज्ञ सगठन-कर्त्ता, लोगो के नेता तथा एक नतिक सुधारक के रूप म गाधी महान थे, पर इन सबसे बढकर एक व्यक्ति के रूप मे वे और महान थे।" मोहनदास कमचद गाधी जिनका नाम महात्मा गाधी के रूप मे लोकप्रिय है, एक वैश्य परिवार म 1869 म काठियावाड के पोरबदर नामक स्थान पर पदा हुये। 12 वष की आयु म ही उनका विवाह हो गया। पर इसके कारण उनके जीवन काय म कोई रुकावट नही आई और 19 वष की आयु मे अपन कट्टर पटटीदारो के विरोध के बावजूद जो समुद्र पार जाना पाप समझते थे, वे इग्लण्ड बैरिस्टर एट लॉ की उपाधि प्राप्त करने के लिये गये। वे 1893 म भारत वापस लौट आय और राजकोट मे वकालत प्रारभ कर दी। बाद मे वे बम्बई चले आये। इसके थोडे दिनो ही बाद वे एक भारतीय फम के मुकदमे के सबध मे दक्षिणी अफ्रीका गये। थोडे ही काल मे वहा एक बैरिस्टर के रूप मे प्रसिद्ध हो गय। इस तरह की प्रसिद्धि वे भारत मे पाने म सफल नही रहे थे। वहा वे खूब धन कमा रहे थ कि तभी कुछ ऐसी घटनाये घटी जिन्होने उन्हें एक अहिंसक आदोलनकारी बना दिया और वे दबे लोगो की रक्षा के लिये लडने लगे। यह घटना 1906 मे घटी जब एशियाटिक रजिस्ट्रेशन ऐक्ट पारित हुआ। इसके अतगत अफ्रीका मे बसने वाले सभी एशियाइयो को अपन नाम का रजिस्ट्रेशन कराना पडता था और ऐसा करते समय पढे लिखे होने के बावजूद उन्ह अगूठा लगाना पडता था। गाधी ने अफ्रीका म बसे हुये भारतीयो से आह्वान किया कि वे इस अपमानजनक ऐक्ट के अतगत आज्ञाओ का पालन न करें। गाधी एक प्रतिनिधिमडल लेकर, इग्लैण्ड गये जिससे वहा की सरकार को कुछ बुद्धि आ सके। पर उन्ह अपने उद्देश्य मे सफलता नही मिली और उन्होने दक्षिणी अफ्रीका लौटकर सविनय अवज्ञा आदोलन प्रारभ किया। यह एकदम नये तरह का आदोलन था जिसके अतगत भारतीय इस एक्ट का विरोध करते थे और अपने को कैद कराते थे।

शीघ्र ही .न भारतीयो के द्वारा जेलें भरन लगी। गाधी को स्वय 2 महीन जेल की सजा हुई। पर सरकार इस तरह की कूटनीति जारी नही रख सकी और उसे गाधी से समझौता करने का बाध्य होना पडा। गाधी ने इसी तरह का आदोलन दक्षिणी अफ्रीका म कुछ जातिभेद के अधिनियमो के विरुद्ध भी चलाया जिसमे उ ह पर्याप्त सफलता मिली।

इस तरह अवज्ञा के अस्त्र का आविष्कार कर तथा सरकार की बुराइयो के विरुद्ध असहयोग का डडा लेकर गाधी 1914 म भारत लौट क्योकि उनके ही अनुसार, मै भारत को भी वह विधि बताना चाहता था जिसका प्रयोग मैंने दक्षिणी अफ्रीका म किया था और मेरी इच्छा थी कि मैं इनकी परीक्षा भारत मे करू कि आखिर इन्ह किस सीमा तक सफलता प्राप्त होती है।[1] 1915 मे इसके योग्य सुअवसर उन्ह प्राप्त हुआ वसे यह छोटा अवसर था जब वीरगाम के लोगो न उनके नतृत्व मे यह चेतावनी दी कि नयी चुगी का घरा समाप्त कर दिया जाय। चतावनी ने असर डाला और उनकी इच्छा के अनुरूप कायवाही हो गई। 1917 मे उन्होने इस प्रयोग का दूसरा परीक्षण किया जब उन्हाने इस देश के प्रतिज्ञाबद्ध मजदूरो को विदेश जाने से रोका। तीसरा प्रयोग चम्पारन के लोगो के कृषि कष्टो की छानबीन से जुडा था। चौथी परीक्षा इसकी अहमदाबाद म हुई जहा उन्हान मिल मजदूरो को उचित अधिकार दिलाय। और पाचवी परीक्षा उन्होने उस समय की जब गुजरात म खेदा क किसानो के लिय फसल खराब हो जान के कारण कर म कमी कराने की उनकी माग मान ली गई। इस तरह 1915 से 1920 के बीच इन्होंने इस अस्त्र का प्रयोग पाच अवसरो पर किया जिसका विवरण ऊपर आ चुका है और इस सब मे उन्ह सफलता प्राप्त हुई। इस तरह से प्रोत्साहित होकर उन्होने अपने इस अस्त्र को 1920 म पूरे राष्ट्र के समक्ष पश कर दिया जिसका उद्देश्य सरकार स स्वतन्त्रता की प्राप्ति करना था। इसके द्वारा बहुसख्य भारतीयो स अपील की गई और इस तरह 1920 के बाद का आगे का इतिहास गाधी के अहिंसक आदोलन की सफलता और असफलता का इतिहास हो गया जिसका वणन विस्तार मे हम पहले ही कर आय हैं। गाधी 1948 म शहीद हो गये। यह काय एक कट्टर हिन्दू हत्यारे नाथूराम गोडसे की पिस्तौल से हुआ।

चूकि 28 वर्षो तक (1920 1948) गाधी जी ही इस देश के राजनतिक आदोलन के निदेशक थे, इसी के कारण उन्ह राष्ट्रपिता भी स्वीकार किया गया। यहा यह समीचीन लगता है कि हम उनके दशन 'गाधीवाद' के विषय मे कुछ जानकारी प्राप्त करें।

1 विस्तार के लिये देखें गाधी एम क माई एक्सपरीमटस विद ट्रुथ (हिज आटोबाईग्राफी)।

गांधी का दर्शन

राजनैतिक दृष्टि से अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनों में वे ब्रिटिशों की सदाशयता और सदिच्छा में विश्वास करते थे। इसीलिये उन्होंने कहा, "मैंने देखा कि ब्रिटिश साम्राज्य के कुछ आदर्श थे जिनसे मैं आकर्षित हो गया हूँ और उन आदर्शों में से एक यह है कि ब्रिटिश साम्राज्य का प्रत्येक निवासी अपनी शक्ति अर्जन और प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिये पूर्ण स्वतन्त्र है और वह जो कुछ भी सोचता है अपने विवेक से सोचता है और मैंने यह पाया है कि ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन कम से कम तो रहा ही जा सकता है।" पर बाद में रौलट एक्ट आंदोलन, जलियांवाला बाग की घटना और खिलाफत आंदोलन ने ब्रिटिशों के प्रति उनके विश्वास को डिगा दिया, वे आश्वस्त हो गये कि ब्रिटिश भी 'बेईमान, अनैतिक और अन्यायी' हो सकते हैं, और वायसराय को लिखे एक पत्र में उन्होंने घोषणा की, "ऐसी सरकार के प्रति मेरे मन में न तो आदर है और न स्नेह।"

पर इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके मन में ब्रिटिशों के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई। उन्होंने घोषणा की कि यदि ब्रिटिश भारत में कुछ गलतियां करते हैं तो उनमें परिवर्तन लाने के लिये प्रेम और सत्य का ही मार्ग है। गांधी का विश्वास था कि "अच्छे उद्देश्य की प्राप्ति के लिये अच्छे साधन भी होने चाहिये," जिसका अर्थ था कि यदि भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त करनी थी जो एक अच्छा काम है तो इसे प्राप्ति के साधन के रूप में अच्छे पथ को ही अपनाना चाहिये। गांधी ने ऐसे जिन सत्पथों की चर्चा की वे थे—सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा और असहयोग। इस प्रोग्राम का आधार था अहिंसा, आत्म बलिदान और सत्य, और यदि किसी आंदोलन में ये चीजें न होतीं तो उस आंदोलन को वे तुरंत समाप्त कर देते थे चाहे इस आंदोलन ने उन्हें गन्तव्य के कितने ही निकट क्यों न पहुंचा दिया हो। आत्मबलिदान व व्रत के माध्यम से किया गया आंदोलन ही सत्याग्रह है जिसका अर्थ है कि सत्य के आधार पर चलने वाला आंदोलन जिसका उद्देश्य विरोधी को सत्य के रास्ते पर लाना हो। अवज्ञा के लिये भी साहसपूर्ण आत्मबलिदान की आवश्यकता होती है क्योंकि जो नियम तोड़ता है उसे शांतिपूर्वक उसका फल भोगने के लिये भी तैयार रहना चाहिये। "असहयोग का विचार यह है कि अन्याय और निरंकुशता को भोगने वाला व्यक्ति निरंकुशता और निरंकुश शासक से सहयोग का अपना हाथ खींच ले। यदि वह गलत कार्य को बर्दाश्त करता है और उससे असहयोग नहीं करता तो वह भी गलत कार्य होने देने में भागी है।" स्पष्टतया जिन विधियों को उन्होंने अपनाने को कहा वे कमजोरों और कायरों की विधियां नहीं थीं। बल्कि इसमें अत्यधिक साहस और

जानी बूझी आत्म बलिदान की भावना का समावेश होता था। लोगों को यह जानते हुए भी सत्याग्रह जारी रखना पड़ता था कि जो लोग ऐसा कर चुके हैं उन्हें तमाम अमानवीय और बर्बर अत्याचारों का सामना करना पड़ रहा है।

गांधी का विश्वास था कि ब्रिटिशों के बनाये हुए कानूनों का उल्लंघन कर, और सरकार से असहयोग कर, जिसमें अंतर्गत ब्रिटिश मालों का परित्याग, उनके द्वारा चलाये जा रहे विद्यालयों का त्याग तथा उन सारी सुविधाओं का त्याग जो उन्होंने सुलभ कर रखे थे आदि बातें सम्मिलित थी, पूरी सरकारी मशीनरी को एक दिन में ठप्प किया जा सकता था और ब्रिटिशों को इस तरह तुरन्त देश छोड़ने को बाध्य किया जा सकता था। गांधी के इसी दर्शन से स्वदेशी आंदोलन का जन्म हुआ जिसका अर्थ था भारतीय वस्तुओं का ही प्रयोग किया जाय। उनके अनुयायियों के लिये खादी पहनना अनिवार्य कर दिया गया। खादी टोपी गांधी टोपी के नाम से प्रसिद्ध हो गई, जो लोग अपने सरों पर लगाते थे। चूंकि यह खादी कुटीर उद्योगों में तैयार होती थी इसी-लिये चरखे का पहिया इस आंदोलन का चिह्न बन गया।

गांधी युग में राष्ट्रवाद पहले से एक दृष्टि से अलग हो गया। इसमें उदारवादियों के उस प्रशंसा की यह भावना निहित नहीं थी जो पश्चिम के प्रति उनके मन में थी और न ही इसमें राष्ट्रवादियों की साम्प्रदायिकता के प्रति इनमें प्रशंसाभाव ही था।" "महात्मा गांधी का राष्ट्रवाद केवल संकुचित अर्थ में राष्ट्रीय आजादी का सिद्धान्त नहीं था। उनकी दृष्टि में यह एक जीवनधारा थी जिसे इस प्राचीन देश को ऐसे पूरे विश्व के सामने प्रस्तुत करना था जो हिंसा व रुधिरपात से ग्रस्त था तथा जहां निरंकुश व शत्रुभाव वालों का बोलबाला था।"

'महात्मा गांधी का मानव स्वभाव की अच्छाइयों में अत्यधिक विश्वास था।'[1] *गांधी के अनुसार लोगों का एक दूसरे से मतभेद अपने व्यक्तिगत* दृष्टिकोण, झुकाव और सीमाओं के कारण था। इसी कारण वे स्वतंत्र भारत में व्यक्ति को स्वतंत्रता देने के अधिक पक्ष में थे और अधिकार के केन्द्रीय-करण के पक्ष में नहीं थे। उनका कहना था कि वह सरकार उतनी ही उत्तम है जो सबसे कम प्रशासन का कार्य अपने हाथों करती है। वर्तमान राज्य को वे संगठित और एकीकृत हिंसा का स्वरूप मानते थे। उनके अनुसार यह एक आत्मारहित मशीन थी, 'जो हिंसा से अलग नहीं की जा सकती थी क्योंकि उसका जीवन ही उसी पर आश्रित था। गांधी ने मशीनीकरण के आकर्षण को

---

1 रघुवंशी डा वी पी एस इंडियन नेशनलिस्ट मूवमेन्ट एण्ड थाट प 309 310।

व्यक्तित्व के हनन का कारण बताते हुये उसकी भत्सना की । उनके अनुसार वैसे तो मशीनीकरण को समाप्त करना सभव नही है, पर कुटीर उद्योग धधो को समाप्त नही किया जाना चाहिए । उनके अनुसार भारत की मुक्ति कुटीर उद्योग धधो और भूमि से ही सभव है ।

गाधी की दृष्टि म व्यक्ति महान है, इसी कारण वे विज्ञान के शानदार उत्थान से प्रभावित नही होत थे । इसीलिये जहा तक सभव हो वे चीजा के स्वाभाविक प्रयोग म विश्वास करते थ और विज्ञानप्रदत्त सहायता व विलासिता को नही स्वीकारत थे । "उनके अनुसार भारत की समस्या का समाधान इसमे है कि पिछले 50 वर्षो मे जो इसन सीखा है वह इसे भूल जाय। रेलवे, तार, अस्पताल, वकील, डाक्टर और ऐसी तमाम चीज परित्याग कर दी जाय और तथाकथित उच्च वग ईमानदारी धार्मिकता और साधारण किसानो की तरह रहना सीखे और इसे ही अपन आनद का साधन समझे ।"[1]

गाधी हिन्दू मुस्लिम एकता की अच्छाइयो म विश्वास ही नही करते थे बल्कि दृढ मत थे कि इसे स्थापित किया जा सकता है । उन्होने पानइस्लाम-वाद उद्देश्य वाले मुसलमाना के खिलाफत आदोलन का समर्थन ही नही किया और टर्की के लिये प्रथम विश्व युद्ध के बाद एक उचित सधि की बात ही नही की, बल्कि इसका नेतृत्व भी किया ।

सामाजिक क्षेत्र मे गाधी न जाति प्रथा बाल विवाह और नारियो की खराब स्थिति की आलोचना की । पर यह कहना गलत होगा कि वे हिन्दू सामाजिक व्यवस्था मे क्रातिकारी परिवतन करने के इच्छुक थे क्योकि उनका विश्वास था कि समाज मे पुरातनता का अपना मूल्य था जो किन्ही कारणो से गलत रास्ते पर चला गया था । जाति के विषय मे उन्होने कहा, 'मेरी दृष्टि मे हम जो कुछ आज हो गये हैं वह जाति के कारण नही है । हमारी लालच और अच्छाई के प्रति आख मूद लेने की प्रवत्ति ने हम दास बना दिया है । मेरा विश्वास है कि जाति न हिन्दुओ को अनेक हीन से बचाया । पर अन्य सस्थाओ की तरह इसम भी बुराइया आ गइ । मेरी समझ से समाज का चार भागो मे विभाजन मूलभूत, स्वाभाविक और आवश्यक ह । कभी कभी तो असख्य उपजातिया भी सुविधाजनक हो जाती हैं, पर कभी-कभी कठिनाई भी पैदा कर देती हैं । जितनी जल्दी ये मिल जाय उतना ही बेहतर होगा ।'

गाधी हरिजनो के उद्धार के समथक थे । वे शिक्षा को और उपयोगितावादी बनाना चाहते थे । अपनी शिक्षा की वर्धा योजना मे उन्होने बताया कि बच्चे को प्रारभ से ही स्थानीय क्राफ्ट आदि की शिक्षा दी जानी चाहिये । और

1 वही प 315 316।

उन्होंने शराबबंदी का भी पक्ष लिया चाहे इसके लिए राजस्व का कितना भी बलिदान क्यों न करना पड़े।

एक समय था जब गांधी के दर्शन की कल्पना लोगों का तीव्रता में ग्राह्य थी। पर गांधी आलोचकों के अनुसार उनके दर्शन ने भारत की आजादी को कम से कम 20 साल के लिए टाल दिया और कम से कम कुछ काल के लिए 'इसने आधुनिक भारत में जांच पड़ताल और आलोचना की शक्ति पर भी रोक लगा दी।'[1]

गांधी के अधिकतर राजनैतिक प्रोग्राम सत्य से कोसों दूर थे। उनका अहिंसात्मक सत्याग्रह का दर्शन तभी सफल हो सकता था जब इस आंदोलन वाले लोग पूर्ण मानवीय गुणों वाले हों। पर चूंकि ऐसा नहीं था इस कारण उन्होंने इस सदी के दूसरे और तीसरे दशक में जब इसका जोर शोर से प्रयोग किया तो यह पूर्णतया असफल रहा। लोग अपने हृदय में हिंसा की अग्नि लिए अहिंसात्मक आंदोलन नहीं कर सकते थे। अमृतसर में भीड़ का अनुत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार जिसने जलियांवाला बाग कांड की सृष्टि की, इसका एक अच्छा उदाहरण है। गांधी के ऐसे दर्शन की भी प्रशंसा कैसे की जाती जो कानून को तोड़ देते थे और देश में अव्यवस्था ला देते थे। इससे अपढ़ और अपराधियों में गैर जिम्मेदारी और कानून के प्रति घृणा की भावना को ही प्रोत्साहन मिलता था। श्रीमती एनी बेसेंट ने उन्हें, 'एक अस्पष्ट स्वप्न देखने वाले रहस्यवादी और साधारण जन के स्वभाव से कोसों दूर रहने वाले व्यक्ति की संज्ञा दी।'[2] श्रीमती बेसेंट के अनुसार भारत की राजनैतिक आजादी का सबसे उत्तम रास्ता अहिंसात्मक क्रियाहीनता में लगे रहने से, जिससे हिंसा भड़कने की पूरी संभावना थी [3] बेहतर तेजी से सुधार की ओर आगे बढ़ना था।

सर सी० वाई० चिंतामणि ने लिखा है कि 'यदि महात्मा गांधी वर्तमान सुधार (1919) की पूर्व संध्या पर असहयोग का रामबाण लेकर हाजिर न हो गये होते तो पिछले 15 वर्षों की राजनीति कुछ भिन्न ही होती। भारतीय राष्ट्रवादी संगठित बन रह गये होते और कार्यालयों, विधायिकाओं और सार्वजनिक जीवन में ऐसा कुछ करते कि उसका दबाव ब्रिटिश सरकार अनुभव करती जिसके परिणामस्वरूप मेरे मतानुसार उससे सब बातें भिन्न होतीं जो सार्वजनिक जीवन में भेदभाव के कारण देखने में आ रहा है और जिसके लिये

---

1 करुणाकरण के० पी० माडर्न इंडियन पॉलिटिकल ट्रेडीशन प० 26।
2 बसंट एनी द इंडिया दैट शैल बी प० 194।
3 वही प० 221।

गाधी की नीतिया ही उत्तरदायी थी।"[1]

गाधी हिन्दू-मुस्लिम एकता म विश्वास करते थे और यह एक अच्छी बात थी। पर आश्चय ही होता है कि इतने बडे मस्तिष्क मे यह बात कैसे आई कि उसने एकता के नाम पर सम्प्रदायवाद का समथन करने की भूलभरी नीति अपनाई। यह सभी लोग जानते थे कि खिलाफत आदोलन पूणतया एक सम्प्रदायवादी आदोलन है जिसका आधार भारतीय राष्ट्रवाद न होकर पान इस्लामवाद और उससे भी कुछ ऊपर है।

अपने जीवनकाल म गाधी का बडा प्रभाव था। पर के० एम० पाणिक्कर का कहना है कि, "प्रश्न इसका नही है कि गाधी का उनके जीवनकाल म कितना प्रभाव था बल्कि स्वाधीन भारत म अब उसकी क्या स्थिति है।"[2] और यदि हम इस दृष्टि से विचार करे तो लगेगा कि गाधी का अधिक सफलता नही मिली। खादी जो गाधी के दशन का एक प्रमुख आदश था इस देश म ही पूणता से प्रयोग म नही है। महात्मा गाधी की नीति के स्थान पर भारत ने हथियार एकत्रित करना और बनाना प्रारभ कर दिया है। राजनैतिक उद्देश्यो के लिये सत्याग्रह का अस्त्र अब बकार सिद्ध हो चुका है क्योकि मास्टर तारासिंह को राजनैतिक भूख हडताल के बदले कुछ नहीं मिला। भारत म कही भी उनकी उपयोगितावादी शिक्षा को उन्नति करते हुये नही देखा जा सकता।

यहाँ तक कि उनके जीवनकाल म ही महात्मा का दशन कई क्षेत्रो मे असफल होने लगा। उनके अहिंसात्मक आदोलन के फलस्वरूप हर जगह अमानवीय हिंसा भडक उठी। और उनके हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रयास को देश के विभाजन से असह्य चोट लगी। मौलाना आजाद का विश्वास था कि गाधी के तरीके ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता को हतोत्साहित करने के स्थान पर प्रोत्साहित ही किया। यह गाधी ही थे जिन्होने मुस्लिम राजनीति के द्वार पर एम०ए० जिन्ना को लाकर खडा ही नही कर दिया बल्कि उन्हे कायदे आजम की उपाधि प्रदान कर दी।[3]

पर जब यह सब कहा जाता है तो डा० रघुवशी के ये कटु वाक्य हमारे समझ मे नही आते कि, "उनकी बाते इस इच्छा से लगी हैं जिसमे जगलो व बबर सादे जीवन की बू आती है क्या एक व्यवस्था चाहे वह पूजीवादी हो

---

1 चिन्तामणि सर सी वाई इडियन पालिटिक्स सिन्स म्यूटिनी प 1871

2 पाणिक्कर के एम ए सर्वे आफ इडियन हिस्ट्री।

3 आजाद, पूर्वोद्धत, प 112 15।

या साम्राज्यवादी, का परिवतन अहिंसा द्वारा सभव है ?"[1] यह भी कहना न्यायसगत नही होगा कि उनका सपूण दशन स्वतन्त्र भारत ने अस्वीकार कर दिया है। अब भी सरकार छुआछूत की समाप्ति, पचायतो का विकास आदि क्षत्रो म जो गाधी को बहुत प्रिय थे, व्यावहारिक रूप म काय कर रही है। अपने जीवनकाल में भी वे गाधी ही थे जिन्होने देश की स्वाधीनता आदोलन को मध्यवर्गीय दायरे स निकालकर इसे जन आदोलन का रूप प्रदान किया। भारत म जो जन जागरण उन्होने उत्पन्न किया वह अकथनीय था। उनके सादगी के दशन मे भी कोई बुराई नही थी, क्योकि आज भी शातिपूण जीवन के लिये इसकी महत्ता है। हम उनके अहिंसावादी नीति की भी बिना आधार के आलोचना नही कर सकते। यदि यह नीति असफल हो गई तो इसमे नीति का कोई दोष नही था बल्कि उस अपढ जनता का दोष था जो इसके तत्व को नही समझ सकी। गाधी की इस सबध मे इतनी ही आलोचना की जा सकती है कि उन्होने बीमारी के लिये एक ऐसी औषधि की सस्तुति की, जो ठीक तो थी पर तत्कालीन परिस्थितियो मे जिसका प्रयोग सरल नही था। और यह दुखपूण ही है कि एक ऐसे व्यक्ति को जिसने हिंसा से इतनी घृणा की, उसे अपनी कायवाहियो द्वारा उत्पन्न उसी हिंसा म रहना पडा और अतत उसी हिंसा ने उसकी जान ले ली।

नेहरू जी ने लिखा है, 'अधिकतर उन्होने इस देश को पिछले 30 या इससे अधिक वर्षो मे बलिदान की ऐसी बुलदियो पर पहुचा दिया कि उस क्षेत्र मे कोई और देश तुलना मे नही आ सकते। उन्हे उस काय मे सफलता मिली। पर अतत ऐसी घटनाये घटी जिन्होने निसदेह उन्हे अत्यधिक तकलीफ दी। पर फिर भी वे अपने मासूम चेहरे पर मुस्कराहट कायम किये रहे और किसी के प्रति भी कटु शब्द का प्रयोग नही किया। पर उन्हे शायद इस बात का कष्ट हुआ हो कि इस पीढी ने जिसे उन्होने प्रशिक्षित किया वह असफल हो गई। ऐसा इसलिये हुआ कि हम उस रास्ते से भटक गय जो उन्होने हमे दिखाया था"।

---

1 रघवशी पूर्वोद्धत प 311।

2 इण्डिपेण्ड स एण्ड आफ्टर ए कलेक्शन आफ ज एन नहरूज स्पीचेज, प 21। और विस्तार के लिए देखें तन्दुलकर महात्मा 8 भागो मे प्यारेलाल महात्मा गाधी, 2 भागों मे।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

डॉ० राजेंद्र प्रसाद का जन्म 1884 में हुआ। वे पढ़ने में इतने अच्छे थे कि उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के सारे रिकार्ड तोड़ दिये। उन्हें इंग्लैंड में शिक्षा प्राप्ति हेतु राज्य छात्रवृत्ति प्रदान की गई। पर उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया बल्कि उसके स्थान पर वे वकालत करने लगे और शीघ्र ही इस पेशे में प्रसिद्धि भी प्राप्त की और धन भी। वे ऐसे लोगों में से थे जिन्होंने अपना सब कुछ होम कर दिया। जब गांधी का आह्वान उन्होंने सुना तो वे अपनी वकालत छोड़कर भारत के स्वाधीनता संग्राम में सम्मिलित हो गये। वे गांधी के सविनय अवज्ञा आंदोलन और असहयोग आंदोलन में सम्मिलित ही नहीं हुए बल्कि प्राणपण से इसमें निहित दर्शन को अंगीकार किया। उन्होंने बिहार में भूचाल से तबाही के अवसर पर सामाजिक सेवा का अभूतपूर्व कार्य किया। वे बाद में कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये और जब 1946 में संविधान सभा की बैठक हुई तो उन्हें इस सभा के अध्यक्ष पद पर निर्विरोध चुन लिया गया जिससे कि वे भारत के संविधान रचना में सहायता कर सकें। नेहरू मंत्रिमंडल में कुछ काल के लिये उन्होंने खाद्य और कृषि मंत्री की हैसियत से भी कार्य किया और जनवरी 1950 में जब वर्तमान संविधान भारत पर लागू किया गया तो वे भारत के प्रथम राष्ट्रपति बनाये गये। वे हिन्दी के एक महान लेखक थे और उन्होंने तत्संबंधी कई प्रतिष्ठा भी प्राप्त की। राष्ट्रपति की हैसियत से उन्होंने अपने कार्यालय पर सादगी की छाप डाली। उन्होंने अपने आप अपने वेतन और भत्तों में कटौती कराई। 1960 तक दो बार वे देश के राष्ट्रपति के पद पर आरूढ़ रहे। 1962 में उनका देहावसान हो गया।

कर्णसिंह, डॉ० प्राफेट आफ इंडियन नेशनलिज्म स्टडी आफ अरविन्दो घोष, लदन 1963 ।
करुणाकरण, के० पी० रिलीजन एण्ड पालिटिक्ल अवेकनिंग इन इंडिया, कलकत्ता, 1965 ।
माडर्न इंडियन पालिटिक्ल ट्रेडीशन ।
कौशिक, पी० डी० द कांग्रेस आइडियालाजी एण्ड प्रोग्राम, बम्बई 1964 ।
कीर, धनंजय वीर सावरकर, बम्बई, 1966 ।
कीथ, ए० बी० ए कांस्टीच्युशनल हिस्ट्री आफ इंडिया इलाहाबाद 1961 ।
स्पीचेज एण्ड डाकुमेण्टस आन इंडियन पालिसी, भाग 1 2 ।
केरल पुत्र वर्किंग आफ डयारकी इन इंडिया, 1919 29 ।
कोचानेक, स्टेनले ए० द कांग्रेस पार्टी आफ इंडिया, 1968 ।
कृष्णा, के० बी० द प्राब्लम आफ माइनारिटीज ।
कुलकर्णी, वी० बी० ब्रिटिश डामिनियन इन इंडिया एण्ड आफ्टर, बम्बई, 1964 ।
ब्रिटिश स्टेटसमैन इन इंडिया बम्बई, 1961 ।
कुमार, कृष्ण डिमोक्रेसी एण्ड नान वायलेंस नई दिल्ली ।
कुंजरु पब्लिक सर्विसेज इन इंडिया ।
कासवेल, डब्लू० ए० इंडिया इंडेप डेन्ट लदन, 1968 ।
कोटमन, जे० इंडियन रिडिल 1932 ।
कोटमन द रोड टु सेल्फ गवनमेण्ट ।
कोमिंग, सर जान पालिटिक्ल इंडिया दिल्ली 1968 ।
कोनेल, जान वावेल स्कालर एण्ड साल्जर, इंडिया, 1964 ।
काटन, सर हेनरी इंडिया ओल्ड एण्ड निव ।
इंडिया एण्ड होम मेमायस ।
निव इंडिया इंडिया इन ट्रांजिसन ।
कूपलन्ड, आर० इंडिया ए रिस्टेटमण्ट ।
द इंडियन प्राब्लम, 1833 1935, 1945 ।
कावेल, हबट हिस्ट्री एण्ड कांस्टीच्युशन आफ द कोट स एण्ड लेजिस्लेटिव अथार्टीज इन इंडिया, 1936 ।
क्रेडक, रेजीनाल्ड डेलिमा इन इंडिया ।
कटिस, एल० डयारकी ।

कर्जन, जार्ज नथानियल ब्रिटिश गवनमेण्ट इन इंडिया, भाग 1 व 2।
रसा इन सेण्ट्रल एशिया।
हिज स्पीचेज।
कस्ट, रॉबट लिंग्विस्टिक एण्ड ओरियण्टल यसेज।
खान, आगा, एच० एच० इंडिया इन ट्रांजीशन, 1918।
खेडा, एस० एस० इण्डियज डिफेंस प्राब्लम, बम्बई, 1968।
खुशवत सिंह हिस्ट्री आफ द सिक्स भाग 2।
गांधी, एम० के० सोशलिज्म आफ माई कान्सेप्सन, बम्बई, 1966।
मन एण्ड मशीन बम्बई, 1966।
द विलेज रिकन्स्ट्रक्शन बम्बई, 1966।
मेसेज आफ जीसस क्राइस्ट, बम्बई 1966।
आल मेन आर ब्रदस, अहमदाबाद, 1960।
द साइंस आफ सत्याग्रह, बम्बई 1962।
गास्पेल आफ स्वदेशी, बम्बई 1967।
सेल्फ रिस्ट्रेण्ट वर्सेज इंडलजेन्स, अहमदाबाद, 1956।
टू एजूकेशन अहमदाबाद, 1962।
द कलेक्टेड वक्स आफ महात्मा गांधी, अहमदाबाद, 1968, भिन्न भिन्न जिल्दें।
इंडिया आफ माई ड्रीम्स, अहमदाबाद, 1962।
बापूज लेटस टू मीरा अहमदाबाद, 1959।
माई गाड, अहमदाबाद 1962।
टु द स्टडेण्ट्स, अहमदाबाद, 1965।
माई एक्सपेरीमेण्टस विद ट्रुथ।
फ्रीडम्स बटिल, 1921।
इंडियाज स्ट्रगल फार स्वराज।
गायकवाड़, बी० आर० द ऐंग्लो इंडियन्स, लंदन, 1967।
गरट, जी० टी० लीगेसी आफ इंडिया।
गिब, एच० ए० आर० मोहम्डनिज्म ऐन हिस्टोरिकल सर्वे, लंदन, 1949।
ग्लेडहिल, अलेन द रिपब्लिक आफ इण्डिया।
गोपाल, एस० द वायसरायल्टी आफ लार्ड इर्विन, लंदन, 1967।
ब्रिटिश पालिसी इन इंडिया कैम्ब्रिज, 1965।
गोड, हरि सिंह गवनमण्ट आफ इंडिया ऐक्ट, 1935।
ग्रेहम, पोल, मेजर डी० एण्ड शिवराम, बी० द प्राब्लम आफ इंडिया।

ग्रिफिटस, परसीवल द ब्रिटिश इम्पैक्ट आन इंडिया लदन, 1952।
गुप्ता, सुभाष चन्द्र अग्रेरियन रिलेशन्स एण्ड अर्ली ब्रिटिश रूल इन इंडिया, कलकत्ता, 1963।
ग्वेर, मारिस एण्ड अप्पादोराई, ए० स्पीचेज एण्ड डाकुमेण्टस आन द इंडियन कान्स्टीच्युशन, 2 भाग।
घोष, शकर द वेस्टन इम्पैक्ट आन इंडियन पालिटिक्स, बम्बई, 1967।
घोष, दिलीप कुमार इग्लैंड एण्ड अफगानिस्तान, कलकत्ता, 1960।
घोष, शकर द रिनेशा टू मिलीटेन्ट नेशनलिज्म इन इंडिया, बम्बई, 1969।
घोष, के० के० द इंडियन नेशनल आर्मी, मेरठ, 1969।
घोष, पी० सी० द डेवलपमण्ट आफ इंडियन नेशनल काग्रेस, कलकत्ता, 1960।
घोष प्रेस एण्ड प्रेस लाज इन इंडिया।
घोषाल यू० एन० ए हिस्ट्री आफ इंडियन पब्लिक लाइफ, लदन, 1966।
चलपतिराव द प्रेस इन इंडिया, लन्न, 1968।
चमन लाल द वैनिशिग इम्पायर, नई दिल्ली, 1969।
चन्द्र, जगप्रवेश देल्ही, ए पालिटिकल स्टडी दिल्ली, 1969।
चैटर्जी, अमिय द कान्स्टीच्युशनल डेवलपमेण्ट आफ इंडिया, 1937-1947, कलकत्ता, 1958।
चटर्जी, अतुलचन्द्र द निव इंडिया, लदन, 1948।
चटर्जी, ए० सी० इंडिया स्ट्रगल फार फ्रीडम, 1947।
चैटर्जी, बी० सी० द हार्ट आफ आर्यावत।
चक्रवर्ती, अतलानद हि दूज एण्ड मुस्लिम्स आफ इंडिया।
चले, जे० ऐडमिनिस्टेटिव प्राब्लम्स आफ ब्रिटिश इंडिया।
चौधरी, रामनारायण नेहरू—इन हिज ओन वड स, अहमदाबाद, 1959।
चिन्तामणि, सी० वाई० इंडियन पालिटिक्स सिंस म्युटिनी।
चेस्ने, जी० एम० इंडिया अडर एक्सपेरीमेण्ट, 1918।
चेस्ने, सर जाज द इंडियन पालिटी।
चिरोल, वालेन्टाइन इंडियन अनरेस्ट।
इंडिया, ओल्ड एण्ड निव, लदन, 1921।
चौधरी, बी० एस० पी० इम्पीरियल पालिसी आफ ब्रिटिश इन इंडिया, कलकत्ता, 1968।

चौधरी राधाकृष्ण , हिस्ट्री आफ विहार, पटना, 1958।
जगदीसन, जे० एन० लेटस आफ श्रीनिवास शास्त्री, बम्बई, 1963।
जमनीदास, दीवान महाराजा, बम्बई, 1969।
जयकर, एम० आर० द स्टडी आफ माई लाइफ।
जानसन, एलेन कम्पबेल मिशन विद माउंटबेटन, बम्बई, 1951।
जकारिया, एच० रिनेसेन्ट इंडिया, 1933।
जेटलण्ड, लार्ड स्टेप्स टुवार्ड्स इंडियन होम रूल।
झा, जगदीश चन्द्र भूमिज रिवोल्ट, दिल्ली, 1967।
टगोर, सर रवीन्द्रनाथ नेशनलिज्म, 1921।
टेरेन, जॉन द लाइफ एण्ड टाइम्स आफ लार्ड माउंटबेटन, लंदन, 1968।
टामस, एफ० डब्लू० ब्रिटिश एजूकेशन इन इंडिया।
टाम्सन ई० द अदर साइड आफ द मेडल, 1925।
टाम्सन, ई० सी० एम० इंडिया आफ टुडे, 1913।
टिंकर, ह्यू रीओरियन्टेशन्स, 1965।
द फाउन्डेशन्स आफ द लोकल सेल्फ गवर्नमेण्ट इन इंडिया, पाकिस्तान एण्ड बर्मा, बम्बई, 1967।
टाइटस इंडियन इस्लाम, 1930।
टोपा, आई० एन० द ग्रोथ एण्ड डेवलपमेण्ट आफ नेशनलिस्ट थाट आफ इंडिया, 1930।
टायनबी, आनल्ड वन वर्ल्ड एण्ड इंडिया।
ठाकोर, बी० के० इण्डियन ऐडमिनिस्ट्रेशन टू द डॉन आफ रिसपान्सिबल गवर्नमेण्ट।
डेवीस द प्राब्लेम आफ नार्थ वेस्ट फ्रण्टियस 1932।
डाडवेल, एच० एच० (संस्करण) द कम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 5 व 6, दिल्ली, 1964।
डीक, जोसेफ जे० एम० के० गांधी, 1959।
डोंजरकेरी, एस० आर० मेमायर्स आफ द युनीवर्सिटीज बम्बई, 1966।
ढेबर, यू० एन० गांधीजी—ए प्रक्टिकल आइडियलिस्ट, बम्बई, 1964।
ताराचंद हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेण्ट इन इंडिया भाग 1 व 2।
तेन्दुलकर, डी० जी० अब्दुल गफ्फार खाँ बम्बई 1967।
महात्मा 4, भाग बम्बई, 1960।
दास, सी० आर० इंडिया फार इंडियन्स 1918।

दास, एम० एन० द इकोनामिक एण्ड सोशल डेवलपमेंट आफ माडन इंडिया, कलकत्ता, 1959।
इंडिया अंडर मार्ले एण्ड मिण्टो, लंदन, 1969।
द पालिटिकल फिलासफी आफ जवाहरलाल नेहरू, लंदन, 1959।
दत्ता, वी० एन० जलियावाला बाग, लुधियाना, 1969।
देसाई, ए० आर० सोशल बैकग्राउण्ड आफ इंडियन नेशनलिज्म, 1948।
डिग्बी प्रास्परस ब्रिटिश इंडिया।
दिवाकर, आर० आर० महायोगी श्री अरबिंदो, बम्बई, 1967।
दुर्गादास इंडिया फाम कर्जन टु नेहरू एण्ड आफ्टर, 1969।
दुर्रानी, एफ० के० खान द मौर्निंग आफ पाकिस्तान।
दत्त, आर० पाम० इंडिया टुडे, दिल्ली, 1955।
द्वारकादास कणजी इंडियाज फाइट फार फ्रीडम, बम्बई, 1966।
धम कुमार लैंड एण्ड कास्ट इन साउथ इंडिया, लंदन 1966।
नारायण, जयप्रकाश माई लाइफ एण्ड स्ट्रगल, दिल्ली, 1969।
नटराजन, एस० ऐ सेंचुरी आफ सोशल रिफार्म्स इन इंडिया, 1959।
ए हिस्ट्री आफ द प्रेस इन इंडिया, लंदन, 1962।
नेहरू, जवाहरलाल डिस्कवरी आफ इंडिया।
एन आटोबाईग्राफी, बम्बई, 1962।
इंडिया एण्ड द वर्ल्ड।
इंडिपेंडेंस एण्ड आफ्टर, ए कलेक्शन आफ स्पीचेज।
न्यूटन, ए० पी० ए हन्ड्रेड इयर्स आफ द ब्रिटिश इम्पायर, लंदन, 1967।
नामन, मुहम्मद द मुस्लिम इंडिया।
मोरिसन द निव स्पिरिट इन इंडिया।
पलांडे, एम० आर० एन इंट्रोडक्शन टु इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन।
पांडे, बी० एन० द इंट्रोडक्शन आफ इंगलिश लॉ इन टू इंडिया, बम्बई, 1967।
राइज आफ द माडन इंडिया 1967।
पाणिक्कर, के० एम० फाउंडेसन आफ निव इंडिया।
आइडियाज आफ सावरेन्टी एण्ड स्टेट इन इंडियन पालिटिकल थाट, बम्बई, 1963।
द नेटिव स्टेट्स आफ इंडिया।

रिलेशन्स आफ इंडियन स्टेटस ।
पाणिक्कर, के० एम स्टडीज इन इंडियन हिस्टी, 1963 ।
इंट्रोडक्शन टु स्टडी आफ रिलेशन्स आफ इंडियन स्टेटस टु गवनमेण्ट आफ इंडिया ।
इवेलयुशन आफ ब्रिटिश पालसी टुवर्ड्स स्टटस, 1774 1858
पंजाबी, के० एस० द इनडामीटेबुल सरदार, बम्बइ, 1962 ।
सिविल सर्वेण्टस इन इंडिया, बम्बई, 1965 ।
पावर्ते, टी० बी० मेकर्स आफ माडन इंडिया दिल्ली, 1964 ।
पटेल, एम० एस० द एजूकेशनल फिलासफी आफ महात्मा गाधी, अहमदाबाद, 1958 ।
पवार, ए० जी० स्टडीज इन इंडियन हिस्ट्री, कोल्हापुर, 1968 ।
पर्सीवल स्पियर इंडिया एमाडन हिस्ट्री ।
पर्सीवल ग्रिफिथ्स माडन इंडिया ।
द ब्रिटिश इम्पैक्ट आन इंडिया ।
पोल्स, डी० ग्राहम इण्डिया इन ट्रांजिशन, लदन 1932 ।
पावर, पाल एफ० गाधी आन वल्ड अफेयस ।
पावेल प्राइस, जे० सी ए हिस्ट्री आफ इंडिया ।
प्रधान, आर० एस० इण्डियाज स्ट्रगल फार स्वराज ।
प्रसाद, अम्बा द इंडियन रिवोल्ट आफ 1942, दिल्ली, 1958 ।
प्रसाद, बिशेश्वर ओरीजिन्स आफ प्राविन्सियल आटोनामी ।
प्रसाद, बेनी हिंदू मुस्लिम क्वेश्चन, इलाहाबाद 1947 ।
प्रसाद, विश्वनाथ द इंडियन ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस, दिल्ली, 1968 ।
पुन्निया, के० बी० द कान्स्टीच्युशनल हिस्ट्री आफ इंडिया, दिल्ली, 1964 ।
पुरनी, ए० बी० श्री अरविन्दो सम ऐस्पेक्टस आफ हिज विजन, बम्बई, 1966 ।
प्यारे लाल महात्मा गाधी द लास्ट फेज, दो भाग, अहमदाबाद, 1956 ।
पीलो, एम० बी० कान्स्टीच्युशनल गवनमन्टस इन इंडिया, बम्बई 1965 ।
फडनीस, उर्मिला टुवर्ड्स इंटीग्रेशन आफ इंडियन स्टटस बम्बई, 1968 ।

फिलिप्स, सी० एच० सेलेक्ट डाकूमेण्टस आन द हिस्ट्री आफ इंडिया एण्ड पाकिस्तान।

द इवोल्युशन आफ इंडिया ऐण्ड पाकिस्तान—सेलेक्ट डाकूमेण्टस, 1962।

फर्कूहर, जे० एन० माडन रिलीजस मूवमेण्टस इन इंडिया, दिल्ली, 1967।

फिशर, लुई द लाइफ आफ महात्मा गांधी।

फिशर हिस्ट्री आफ यूरोप।

बेंस, जे० एस० इण्डियाज इण्टरनेशनल डिस्प्युट्स, बम्बई, 1962।

बनर्जी, ए० सी० इंडियन कान्स्टीच्युशनल डाकूमेण्टस, तीन भागों मे, (1946)।

बनर्जी, ए० सी० एव बोस, डी० आर० द कैबिनेट मिशन इन इंडिया।

बनर्जी, एस० एन० स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स।

ए नेशन इन मेकिंग।

बाकर, ए० जे० द मार्च आन देहली, लदन 1963।

द नेगलेक्टेड वार मेसोपोटामिया 1914 18, लदन, 1969।

बाकर, ए० टी० (सस्करण) द महात्मा लेटस।

बाटन, सर विलियम द प्रिंसेज आफ इंडिया।

बसु, बी० डी० मेजर राइज आफ क्रिश्चियन पावर इन इंडिया।

बसु, दुर्गादास कान्स्टीच्युशनल डाकूमेन्ट्स, कलकत्ता, 1969।

बत्रा, एच० सी० द रिलेशन्स आफ जयपुर स्टेट विदईस्ट इंडिया कंपनी, दिल्ली, 1958।

बेल, सर चार्ल्स तिब्बत पास्ट ऐण्ड प्रेजेण्ट, लदन, 1968।

द पीपुल आफ तिब्बत, लदन, 1968।

बेलो, एच० डब्लू नार्थ वेस्ट फ्रंटियर ऐण्ड अफगानिस्तान।

बेसेन्ट, एनी बिल्डर्स आफ निव इंडिया, स्पीचेज ऐण्ड राइटिंग्स।

इंडिया ए नेशन, 1930।

इंडिया ऐण्ड द इम्पायर, 1914।

द फ्युचर आफ इंडियन पालिटिक्स।

हाउ इंडिया फाट फार फ्रीडम।

इंडिया टट शल बी।

इंडिया बाउण्ड आर फ्री, 1926।

बडवुड, लेफ्टीनेण्ट कर्नल सी० बी० ए कान्स्टीच्युशनल एक्सपरीमेण्ट।

बिष्णु दयाल, एस ए कन्साइज हिस्ट्री आफ मारीशस, बम्बई, 1965।

याम्बवाल के० आर० द फाउन्डेशनस आफ इडियन फेडरलिज्म, बम्बई, 1967।
बोस, एन० के कल्चर एण्ड सोसाइटी इन इडिया, बम्बई, 1967।
बोस, नेमाई साधन द इण्डियन नशनल मूवमेण्ट, कलकत्ता, 1965।
बोस, सुभाष चन्द्र द इण्डियन स्ट्रगल, कलकत्ता, 1964।
ऐन इण्डियन पिलग्रिम, लदन, 1965।
बोस, सुरेश चद्र डिसटिग्वट रिपोट कलकत्ता, 1961।
बोस, एस० एम० द वकिंग आफ कास्टीच्युशन इन इडिया।
बेल्सफोड, एच० एन० सबजेक्ट इण्डिया।
ब्रीचर, माइकेल नेहरू—ए पालिटिकल बाइग्राफी।
ब्रोकवे, ए० एफ० ए वीक इन इडिया।
ब्रूस, जाज रिट्रीट फाम काबुल, लदन 1967।
बूचान लाड मिण्टो।
बुद्ध प्रकाश इडिया ऐण्ड द वल्ड, होशियारपुर, 1964।
भगत, के० पी० डिकेड आफ इडो ब्रिटिश रिलेश स, बम्बई 1959।
भाटिया, बी० एम० फेमीन्स इन इडिया, बम्बई, 1967।
भाटिया, बी० पी० सिंह हिस्टी आफ इडिया 2 भाग, नई दिल्ली, 1965।
भुट्टो, जुल्फिकार अली द मिथ आफ इडेपडेन्स, लदन, 1969।
मकडानल्ड, जे० आर० गवनमेण्ट आफ इडिया।
मकडानल्ड, रम्जे द अवेकनिंग आफ इडिया।
मकडानल इण्डियाज पास्ट 1927।
मकनिक्ल, एन० द मेकिंग आफ माडन इडिया।
मधोक, बलराज पोरट्रेट आफ ए मारटायर, बम्बई, 1969।
माहेश्वरी, एस० द फिलासफी आफ स्वामी रामतीर्थ, आगरा, 1969।
मजूमदार, ए० के० ऐडवेन्ट आफ इडेपेडन्स, बम्बई, 1963।
मजूमदार, बी० बी० इण्डियन पॉलिटिकल एसोसियेसन्स ऐण्ड रिफाम आफ लेजिस्लेचर, कलकत्ता, 1965।
मजूमदार, बी० पालिटिकल थाट फ्राम राम मोहनराय टू दयानद।
मजूमदार, बी० सी० ऐण्ड अदस एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इडिया 1963।
मजूमदार, आर० सी० हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमण्ट इन इडिया, 3 भाग, कलकत्ता, 1963।
थ्री फेजेज आफ इण्डियाज स्ट्रगल फार फ्रीडम, बम्बई, 1967।

मामुन, ले० ज० सरनाज द इंडियन स्टेटस एण्ड प्रिंसेज, 1936।
मेरी, काउन्टेस आफ मिंटो इंडिया मिण्टो एण्ड मार्ले 1905 19, 1934।
मसालदान, पी० एन० इवोल्युशन आफ प्राविंसियल आटोनामी इन इंडिया।
मसानी, एम० आर० द कम्युनिस्ट पार्टी आफ इंडिया, ए शार्ट हिस्ट्री, बम्बई, 1967।
मसानी, आर० पी० ब्रिटेन इन इंडिया।
मेसन, फिलिप द मेन हू रूल्ड इंडिया।
माथुर, जे० एस० इण्डियन वर्किंग क्लास मूवमेन्ट, इलाहाबाद, 1964।
माथुर एल० पी० हिस्ट्री आफ द अन्डमन एण्ड निकोबार आईलन्डस, दिल्ली 1968।
मार्क्स आन इंडिया।
मेनन, बी० एल० रस्किन एण्ड गांधी, वाराणसी, 1965।
मेनन, बी० पी० मान्टेग्यु चेम्सफोर्ड रिफार्म्स, बम्बई, 1965।
द ट्रांसफर आफ पावर इन इंडिया।
द स्टोरी आफ द इन्टीग्रेशन आफ इंडियन स्टेटस।
मेरसे, विस्काइण्ट द वायसरायज एण्ड गवर्नर जनरलस आफ इंडिया अहमदाबाद, 1949।
मीरा बेन द स्प्रिटस पिलग्रिमेज, लंदन, 1960।
मिश्रा, के० पी० इण्डियाज पालिसी आफ रिकगनीशन आफ स्टेटस एण्ड गवर्नमेण्ट, बम्बई, 1966।
मित्र, शिशिर कुमार रिसर्जेण्ट इंडिया बम्बई, 1963।
मोदी, सर एच० फीरोजशाह मेहता।
मोल्सवर्थ, जी० एन० अफगानिस्तान 1919, लंदन, 1962।
माटेंगु यडविन, एस० ऐन इंडियन डायरी।
मून, पेन्डेरेल डिवाइड एण्ड क्विट।
मोरलंड, डब्लू० एच० ए शार्ट हिस्ट्री आफ इंडिया।
मार्ले, जे० रिक्लेक्शनस, 2 भाग।
स्पीचेज आन इंडिया।
मोस्ले, लियोनार्ड द लास्ट डेज आफ ब्रिटिश राज लंदन, 1951।
मुखर्जी, हीरेन्द्र नाथ इण्डियाज स्ट्रगल फार फ्रीडम।
मुखर्जी, हरिदास श्री अरविंदो एण्ड हिज पार्ट इन इंडियन पालिटिक्स, कलकत्ता, 1969।

सिंह, गुरुमुख एन० लैंडमार्क्स इन इंडियन कांस्टीट्यूशनल ऐण्ड नेशनल डेवलपमेंट 1600 1919, बनारस, 1930।
इंडियन स्टेटस ऐण्ड ब्रिटिश इंडिया।
सिंह, हीरालाल प्रोब्लम्स ऐण्ड पालिटिक्स इन इंडिया, बम्बई, 1963।
सिंह, एस० एन० द सेक्रेट्री आफ स्टेट फार इंडिया एण्ड हिज कौंसिल 1858 1919, दिल्ली, 1962।
सिंह वी० बी० इकोनामिक हिस्ट्री आफ इंडिया बम्बई 1965।
सिंहल, दामोदर पी० नेशनलिज्म इन इंडिया ऐण्ड अदर हिस्टारिकल एसेज, दिल्ली 1961।
सिन्हा, एन० के० ऐण्ड बनर्जी, ए० सी० हिस्ट्री आफ इंडिया, कलकत्ता 1963।
सीतारमय्या, पी० हिस्टी आफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस 2 भाग, दिल्ली, 1969।
स्मिथ, विन्सेन्ट ए० द आक्सफर्ड हिस्टी आफ इंडिया, लदन, 1961।
स्मिथ, डब्लू० आर० नेशलिज्म ऐण्ड रिफार्म इन इंडिया, 1938।
स्पियर, पर्सीवल इंडियन माडन हिस्ट्री 1961।
द आक्सफोड हिस्ट्री आफ माडन इंडिया, लदन, 1965।
सुब्रमनयम, एम० हाइ क्रिप्स फेल्ड ?
सूद, जे० पी० इंडियन कान्स्टीच्युशनल डेवलपमेन्ट ऐण्ड नेशनल मूवमेन्ट।
स्विन्सन, आथर नार्थ वेस्ट फ्रण्टियर, दिल्ली 1967।
सिक्स मिनटस टू सनसेट, लदन, 1964।
शर्मा, डी० एस० रिनेसेन्ट हिन्दूइज्म बम्बई 1966।
शर्मा, बी० एम० फेडरल पालिटी बम्बई 1967।
द रिपब्लिक आफ इंडिया, बम्बई, 1966।
शर्मा बेणीशंकर स्वामी विवेकानन्द, कलकत्ता 1963।
शर्मा, जगदीश शरण इण्डियाज स्ट्रगल फार फ्रीडम, 3 भाग (डाकूमेण्टस) दिल्ली 1962।
शर्मा, एम० पी० लोकल सेल्फ गवनमेन्ट इन इंडिया।
शर्मा, एस० आर० द फार्जिंग आफ मराठा फ्रीडम, बम्बई, 1964।
स्वामी रामतीर्थ बम्बई, 1965।
इवाल्युशन आफ ऐडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, इलाहाबाद, 1965।

श्रीधराणी, कृष्ण लाल वार विदाउट वायलेंस, बम्बई, 1962।
श्रीनिवासन, एन० डिमोक्रेटिक गवनमेंट इन इंडिया, 1954।
श्री प्रकाश पाकिस्तान वथ ऐण्ड अर्ली डेज, कलकत्ता, 1965।
हक्की, एस० ए० एच० (सस्करण) युनियन स्टेट रिलेशंस इन इंडिया, मेरठ, 1967।
हाल, डी० जी० ई० वर्मा, लदन, 1950।
हूजा, आर० एल० हिस्ट्री आफ फ्रीडम स्टगल इन प्रिंसली स्टेट्स, नई दिल्ली, 1968।
हार्डिंज, लार्ड माई इंडियन इयर्स, 1910-16।
हार्डिंज, चार्ल्स विस्काउण्ट विस्काउण्ट हार्डिंज।
हसनन, एस० ई० इण्डियन मुस्लिम्स, चेलेंज एण्ड अपारच्युनिटी, बम्बई, 1968।
हालण्ड, डब्लू० ई० एस० द इंडियन आउटलुक, 1927।
हटर डब्लू० डब्लू० ए हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इंडिया, 2 भाग।
द इंडियन मुसलमान्स।
हुसैन, जाकिर द डायनेमिक युनीवर्सिटी, 1965।
हठीसिंह, कृष्णा नेहरू वी नेहरूज, बम्बई, 1963।
हाइड, एच० एम० लार्ड रीडिंग, लदन, 1967।

9653
18-4-87